Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नया ज्ञानोदय

अंक 43 : सितम्बर 2006
मूल्य : 20 रुपये

भारतीय ज्ञानपीठ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तेजस्वी मन

अगली अर्धशती में भी
उत्कृष्टता की ओर

ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कॉरपोरेशन लिमिटेड

14 अगस्त, 1956 को स्थापित
भारत का सर्वाधिक मूल्यवान कॉरपोरेट

ओएनजीसी
ONGC

equus red cell 269

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

नया

ज्ञानोदय

भारतीय ज्ञानपीठ
की
मासिक साहित्यिक पत्रिका

अंक 43, सितम्बर 2006

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu.
Acc No. 44418
Dated 15.12.2023

संपादक
प्रभाकर श्रोत्रिय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मासिक

नया ज्ञानोदय

अंक 43 , सितम्बर 2006

प्रबन्ध संपादक

अखिलेश जैन

प्रबन्ध न्यासी, भारतीय ज्ञानपीठ

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ

सम्पर्क :

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, पोस्ट बॉक्स नं. 3113

नई दिल्ली-110 003

फोन : 2462 6467, 2465 4196, 2469 8417, 2465 6201

फैक्स : 011-2465 4197; ई-मेल : jnanpith@satyam.net.in

सहायक संपादन : अभिषेक कश्यप

सज्जा : महेश्वर

मूल्य :

एक अंक 20 रुपये

व्यक्तियों के लिए :

वार्षिक : 200 रुपये / त्रैवार्षिक : 550 रुपये /

पंचवार्षिक : 850 रुपये / आजीवन : 3000 रुपये

संस्थाओं के लिए :

वार्षिक : 240 रुपये / त्रैवार्षिक : 700 रुपये /

पंचवार्षिक : 1100 रुपये / आजीवन : 3000 रुपये

विदेशों के लिए :

हवाई डाक : एक अंक 5 डॉलर / वार्षिक 50 डॉलर

जल मार्ग : एक अंक 3 डॉलर / वार्षिक 25 डॉलर

शुल्क 'नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ' के नाम से उपर्युक्त पते पर भेजें :

(केवल मनीआर्डर / चेक / बैंक ड्राफ्ट से)

(दिल्ली से बाहर के चेक में 35 रुपये अधिक जोड़ें)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से भारतीय ज्ञानपीठ का सहमत होना आवश्यक नहीं। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

Nayā Gyānodaya
A Literary Monthly Magazine
Language : Hindi
Published by Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110 003

भारतीय ज्ञानपीठ

संस्थापक

श्रीमती रमा जैन

श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

नया
ज्ञानोदय
आधुनिक भावबोध, कला संचेतना और
नवीनता की प्रतिनिधि मासिक पत्रिका
अंक 43, सितम्बर 2006

पंचायत

9 ब्रिटेन में प्रवासी भारतीयों का जीवन
रामकृष्ण, प्राण शर्मा, शैल अग्रवाल
तितिक्षा शाह, के.के. श्रीवास्तव, उषा महाजन (समन्वयक)

कहानी

17 गंगा प्रसाद विमल : धरती का पेट
22 उमाकान्त खुबालकर : व्यतिक्रम
30 शीला इन्द्र : दामले
40 काशी नायक : एक बात छोटी-सी
50 आरती झा : प्यार (लघुकथा)

नर्मदा पदयात्रा वृत्त

43 अमृतलाल वेगड़ : ऐसे स्नेही साथी कहाँ

कविता

51 सत्यनारायण : दुआ करना, इस त्रासद को
54 कैलाश पचौरी : रमना अपनी गृहस्थी में, ऐसा क्या हुआ कल
56 अम्बिका दत्त : यात्राएँ
58 रंजना श्रीवास्तव : राख के फूल
27 जहीर कुरैशी : सपना बदल दिया
35 रामकुमार आत्रेय : गुरुत्वाकर्षण

साक्षात्कार

59 मेरे लिए दुनिया की सबसे महत्त्वपूर्ण चीज प्रेम है
आस्ट्रियाई लेखक आन्द्रेयास वेबर से प्रेमकुमार की बातचीत

सिनेमा : ओशियन सिनेफैन फिल्म महोत्सव

70 लाल बहादुर ओझा : प्रतिरोध का सिनेमा

जेल से कविता

78 जानकी : सफर जिन्दगी का
79 नमिता : मेरा साहिल कौन
80 शीरीन : सबकुछ अपना खोते देखा
प्रस्तुति : विभा रानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कथा–कोलाज

81 हीरालाल नागर : जंगल में तोप

रम्य–रचना

89 जीवनसिंह ठाकुर : सवा सौ साल के प्रेमचंद

आँगन

पंजाबी लोकगीत

94 विनी तेरी हरी भरी फुलाँ दी चंगेर भरी

प्रस्तुति : सुरजीत

भाषान्तर

रूसी कहानी

95 तात्याना तोलस्ताया : रात

रूपान्तर : पंकज मालवीय

गुजराती कहानी

102 लता हिराणी : जूही

रूपान्तर : मीनाक्षी जोशी

नवान्न (कविता)

109 आरसी चौहान : कठघोड़वा नाच

बाराखड़ी

111 ज्ञान चतुर्वेदी : रात में अँधेरा और कहानी में भी

पुस्तक समीक्षा

115 जयवर्द्धन : रंग जगत पर दुसाध्य प्रलेखन

(जयदेव तनेजा की पुस्तक 'रंगकर्मी कोश')

116 श्याम सुंदर दुबे : मौत के खेल में समीक्षा की हिकमत और हुरमत

(वागीश शुक्ल की आलोचना पुस्तक 'शहंशाह के कपड़े कहाँ हैं')

119 रोहिणी अग्रवाल : हादसों से उपलब्धियों तक

(रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे')

122 अच्युतानंद मिश्र : जीवन को कविता से भरते हुए

(मधु शर्मा का कविता-संग्रह 'जहाँ रात गिरती है')

आवरण चित्र : ओम प्रकाश कादयान; आवरण सज्जा : चन्द्रकांत शर्मा
भीतर के रेखाचित्र : संदीप राशिनकर : पृष्ठ 17, 19, 22, 26;
अमृत लाल वेगड़ : पृष्ठ 51, 52, 54, 55; राजेन्द्र कुमार कनौजिया : पृष्ठ
30, 33, 36, 40, 42, 44, 56, 58, 95, 96, 102, 104,106।

पाठक मंच / 124

लेखकों के पते / 132

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सम्पादकीय

इस जनतंत्र में...

संसार के लिए यह आश्वासन और किसी हद क विस्मयकारी सन्देश है कि एक विकासशील देश ने प्रजातंत्र के साठवें वर्ष में प्रवेश कर लिया है।

इसी के साथ दमनकारी विश्व राजनय, विश्वबाजार, घरेलू माफिया और स्वार्थी राजनीति के लिए भी यह खुशखबर है; भ्रष्टाचार, भोग-तंत्र, खानदानी राजनीति, सेवक-तंत्र, अन्याय, आतंक जाल और ऐसी तमाम ताकतें, लोगों को रूढ़ि की तरह प्रजातंत्र का पालन करते देखकर खुश हैं। सेना, न्याय, व्यवस्था और सामरिक या आणविक संयंत्रों के भीतर घुसी विध्वंसक गुप्तचर एजेंसियाँ जाति, धर्म-क्षेत्र के रक्तकणों में घुसा आतंकवाद, पड़ोसी देशों के नागरिकों और आतंकियों की घुसपैठ इस प्रजातंत्र से खुश है।

यही विडंबना है भारतीय प्रजातंत्र की। जनता की कुंठा यह है कि वह नष्ट होते देखते हुए भी उस चीज को बचाने के लिए बेचैन है जिसे प्रतिपल नष्ट होते देखना उसकी नियति है। यह सपने में भागने जैसी बेकली है।

राजनीति ने कैसी शक्ल ले ली है इसे पूरा देश देख रहा है। त्याग, सत्य, न्याय, सज्जनता, समानता, संयम, कर्तव्यनिष्ठा और सबसे बढ़कर लोक-लाज यहाँ से अगर पूरी तरह विदा नहीं हुई तो होने को है।

एक जमाने में जनसेवा, संघर्ष के लिए तत्परता और स्वार्थ-त्याग की भावना से व्यक्ति राजनीति में आता था। लोकहित के क्षरण और किसी एक दल या संगठन की मनमानी पर अंकुश लगाने के लिए वैचारिक और प्रतिक्रियागत विकल्प के निमित्त दल बनाए गये थे, जो कई बार विरोध की सार्थक और कई बार निरर्थक भूमिका निभाते रहे। परन्तु इधर देखा यह भी गया कि सभी दल किसी सही बात पर भी एकमत नहीं होते, लेकिन पिछली बार एक अजूबा हुआ कि रोज-रोज संसद का बायकाट करने और शोर मचाकर उसे स्थगित कराने वाले सभी मतों के, आदर्शवादी और लड़ाकू सांसद भी अपना वेतनभत्ता बढ़ाने के मसले पर एकमत थे, और यह प्रस्ताव तुरत-फुरत पास हो गया। ऐसी एकजुटता तो सिर्फ कर्मचारी यूनियनों में ही देखी जाती है, भले वे और किसी मामले में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक दूसरे की शत्रु हों। पिछले दिनों फिर यही नजारा देखने को मिला जब सांसदों का वेतन दो गुना करने का प्रस्ताव आया। उन्हें एक बड़ी औद्योगिक फर्म के मुखिया जैसी सुविधाएँ भी दी गईं। किसी भी व्यक्ति या दल ने नहीं कहा कि अभी देश के 40 प्रतिशत लोग गरीबी-रेखा के नीचे हैं, भुखमरी और कुपोषण का शिकार हैं; साधारण आदमी का जीना मुहाल है, देश का अन्नदाता किसान आत्महत्या करने पर विवश है—ऐसे में अपना वेतन बढ़ाने का हमें कोई हक नहीं है, क्योंकि यह उन्हीं से आता है जिनके भरण-पोषण का उत्तरदायित्व हम पर है। उल्टे वे तर्क देते हैं कि सब अपनी-अपनी तनखा बढ़ाने के लिए शोर मचाते हैं तब अगर एम.पी. की तनखा बढ़ती है तो उनके पेट में दर्द क्यों होता है? इसपर क्या टिप्पणी की जाए?

विधायकों और सांसदों को अपना वेतन बढ़ाने का अधिकार शायद इसलिए दिया गया होगा कि वे स्वयं न्यूनतम वेतन-सुविधा लेकर जनता के बीच त्याग का आदर्श रखेंगे। परन्तु हो सकता है कि संविधान निर्माताओं को यह पता न हो कि एक जमाने में 'आदर्श' शब्द प्रजातांत्रिक संस्थाओं में भी अप्रासंगिक हो जाएगा। पिछले दिनों तो बढ़ी वेतन पर भी शिकायतें रहीं। सांसदों ने कहा कि विधायकों को हमसे अधिक वेतन-सुविधा मिलती है और विधायकों ने कहा कि बड़ी-बड़ी कंपनियों के कार्यकारी अधिकारियों का वेतन हमसे ज्यादा है। हैरत है कि गरीब देश के प्रजातंत्र में सांसद और विधायक अपनी वेतन-सुविधा की तुलना पूँजीपति, नौकरशाह या कम्पनी के बड़े नौकर से करना चाहता है!

इस देश में तो कई राजा ऋषि तुल्य हुए हैं और ऐसे बादशाह भी जो अपने भरण-पोषण के लिए खुद मेहनत करते थे, लेकिन हमारे वक्त में कोई नेता ऐसे उदाहरणों का क्या करे? क्योंकि अब उद्देश्य बदल चुके हैं। अब तो लाभ के पद पर जमने और जमे रहने के लिए 'लाभ' की परिभाषा ही बदल दी जाती है, क्योंकि ऐसा करने का कानूनी अधिकार संसद को है। विडम्बना देखिए एक नेता की पद-त्याग के लिए प्रशंसा होती है, जबकि प्रशंसा करने वाले स्वयं पद के लिए लालायित होते हैं। प्रश्न यह है कि सांसद होना क्या कम लाभकारी है? तमाम समितियाँ, देश-विदेश की मुफ्त यात्राएँ, बिजली, पानी, आवास मुफ्त, श्रेष्ठतम चीजें किफायती दामों पर और दबदबा, अधिकार, अलग से। 'और कौन-सा स्वर्ग चाहिए इस धरती पर?'

एक ओर तो हाल यह है कि पिछले कई सालों से खासकर कुछ महीनों से बिजली की बेहद किल्लत है। भयानक गर्मी, ऊमस, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई और तमाम जरूरतों के बीच कई प्रदेशों में, यहाँ तक कि देश की राजधानी में बारह-सोलह घण्टे बिजली गुल रहती है। लेकिन जनप्रतिनिधियों पर इसका कोई असर नहीं; जबकि वे जनता के हित को प्राथमिकता देने का वादा करके सत्ता में आये हैं। पत्रकार सूर्यकान्त द्विवेदी बताते हैं कि मात्र यू.पी. के सांसद 'ओबरा ऊर्जा संयत्र' के पाँच दिन के उत्पादन के बराबर बिजली का उपभोग करते हैं। अगर इनमें एम.एल.ए. भी जोड़ दें तो उत्तर प्रदेश की ढाई दिन की बिजली चंद सांसदों और विधायकों के उपभोग में अर्पित हो जाती है। उनका कहना है कि यू.पी. के 80 सांसद औसतन 336 मेगावाट यानी कुल 2 करोड़ 71 लाख 50 हजार यूनिट

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुफ्त बिजली भोगते हैं। दिल्ली में इन्हें आधी बिजली मुफ्त मिलती है। इस तरह पूरे देश के आँकड़े जोड़ें तो वे किस कदर भयावह होंगे यह समझा जा सकता है। फिर भी यह बिजली हमारे प्रजातंत्र के कर्णधारों के दिल रोशन करने में नाकाफी है।

तरह-तरह के उपदेशों, आदर्शों, संकल्पों से आम जनता को जो लोग लबालब भरते हैं, वे भीतर से शायद काफी खाली हैं! इस खालीपन का एक बार कितना 'तहलका' मचा था, परन्तु दो-एक लोगों की बलि लेने के अलावा उसका कोई प्रभाव राजनीति पर पड़ा हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। क्योंकि पिछले दिनों ही धन लेकर संसद में सवाल पूछने का प्रकरण फिर सामने आया। प्रजातंत्र में सांसदों की गरिमा और अधिकार का यह कितना घटिया सौदा था? आज अनेक अपराधी रिकार्ड के व्यक्ति हमारी विधानसभाओं और संसद में बैठते हैं। वे वहाँ तक जिस प्रणाली से पहुँचते हैं, उसमें कैसे-कैसे लोग और प्रपंच शामिल होते होंगे और चुनाव प्रणाली को कितना घिनौना बनाते होंगे इसका हिसाब भी नहीं लगाया जा सकता। कभी-कभी चुनाव आयोग में कुछ दबंग लोग आते हैं जो ऐसी घटनाओं पर अंकुश लगा देते हैं, इससे जन-विश्वास थोड़ा लौटता है।

सवाल यह है कि तमाम विकृतियों और विसंगतियों के बावजूद हमारा गणतंत्र क्यों टिका है? यह किस पर टिका हुआ है? इसका एक ही उत्तर है—हमारी साधारण जनता और हमारे सामाजिक, मानवीय सांस्कृतिक पारंपरिक मूल्यों पर। हमारे समाज का बुनियादी ढाँचा, जिसमें मुख्य रूप से वंचित लोग हैं, सामान्यतः आदर्शवादी और मूल्यों का समर्थक है। हमारी संस्कृति और समाज के भीतर कला और साहित्य के, पारंपरिक शिक्षा और श्रेष्ठता के तत्त्व समाये हैं जो समाज को थामे हैं। शायद इसीलिए समाज के भीतर कभी-कभी ऐसा नेतृत्व किसी गैर-राजनैतिक क्षेत्र से उभर आता है जो विकृतियों पर अंकुश का काम करता है। पिछले दिनों नर्मदा बाँध से विस्थापितों की समस्या को लेकर अंततः जो राजनीतिक झूठ में दरार पैदा हुई उसके मूल में मेधा पाटकर जैसी गैर राजनीतिक शक्ति थी। ऐसी ही शक्तियाँ समाज में जागृति पैदा करती हैं। हर तरह के कष्ट और अभाव सहते और उत्सर्ग करते इन सत्ताहीन लोगों पर समाज, राजनेताओं से अधिक विश्वास करता है और अपनी समस्याओं के लिए भी निर्भर रहता है।

ऐसी ही बात पिछले दिनों 'सूचना-अधिकार-कानून' को लेकर हुई। भारतीय प्रजातंत्र में यह एक सकारात्मक घटना थी। परन्तु बाद में नौकरशाहों और नेताओं को लगा होगा कि 'फाइल पर नोटिंग' उनकी ऐसी दुःखती रग है, जिन पर जनता अगर उँगली रखती है तो यह लालफीताशाही के साथ ही तमाम नेताओं के छिपे अभिप्रायों को भी प्रकट कर देगी। इसलिए सूचना के अधिकार से इसे अलग करना चाहिए। फर्ज कीजिए कि यह संशोधन यदि हो जाता तो एक तरह से इस कानून का सत् ही निकल जाता। तब क्या बताया जाता? यही कि फाइल चली और यह निर्णय हुआ, जिसकी जानकारी तो आवेदक को होती ही है। ऐसे कठिन समय में वयोवृद्ध समाजसेवी अन्ना हजारे ने आंदोलन किया और भूख हड़ताल की तो सरकार को अपना यह कदम वापस लेना पड़ा। उन्हें जमकर जन सहयोग भी मिला और जैसा उन्हें विश्वास था, 'परिवर्तन' नामक एक संस्था के निस्वार्थ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

युवकों का उत्साही दल उनके समर्थन में सड़क पर उतर आया, जो गाँव-गाँव में अद्भुत जन जागृति पैदा कर रहा है।

ऐसा ही एक बड़ा कदम देश के राष्ट्रपति जी ने उठाया। लाभ के पद का बिल उन्होंने कानूनविदों से सलाह-मशविरा कर अपने सुझावों के साथ संसद को वापस कर दिया। सुझाव बहुत न्याय संगत थे और समान आचार संहिता का आग्रह उनमें था। परन्तु सांसदों की सर्वोच्च सत्ता क़ी अहम्मन्यता को यह दखलंदाजी कैसे मंजूर होती! लिहाजा बिना किसी संशोधन या सौजन्य टिप्पणी के वह ज्यों का त्यों राष्ट्रपति के पास भेज दिया गया; क्योंकि संवैधानिक प्रावधान के अनुसार दूसरी बार भेजने पर हस्ताक्षर करना राष्ट्रपति की बाध्यता होती है। यह एक तरह से सुझावों को अमान्य करना था। राष्ट्रपति जी इससे आहत हुए होंगे—व्यक्तिगत रूप में नहीं, न्यायिक सलाह की अवहेलना के कारण। उन्होंने हस्ताक्षर विलंबित कर दिए। जब चुनाव आयोग की कार्रवाई का समय आ गया तो राष्ट्रपति जी की मनुहार शुरू हुई और लाभ के कानून की व्याख्या करने और शायद उसमें निहित विषमता दूर करने के लिए 15 सांसदों की समिति बनी। सवाल यह है कि यदि संसद का ज्यों का त्यों भेजना न्याय संगत था तो फिर समिति क्यों बनाई गई? और अगर समिति बनाना एक उचित कदम था तो पहले बिना पुनर्विचार के मसौदा राष्ट्रपति के पास हस्ताक्षर के लिए क्यों भेजा गया?

उपर्युक्त सभी मामलों में राजनीति का एक ऐसा पक्ष उजागर होता है जिसके कारण प्रजातंत्र की रक्षा और दीर्घ जीवन के प्रति आशंका पैदा होती है। क्योंकि संसद और विधायिका प्रजातंत्र का आधार है और यदि यही खोखला हो जाए तो पूरा तंत्र भरभरा कर गिर पड़ता है। इसीलिए इन प्रकरणों पर इतना जोर देते हैं।

ऐसी विषम स्थिति में भी निराश होने की जरूरत नहीं है। राजनीति में राजनीति से ऊपर उठी महाशक्तियाँ हैं और राजनीति के बाहर रहकर बड़े काम करने वाली महाशक्तियाँ भी हैं (जो भले ही छोटी दिखाई देती हों) और सबसे बढ़कर भारत की आम जनता है जो मूल्यों की धारक है। कवि हरीशचन्द्र पाण्डे की एक कविता है 'अभी बहुत कुछ बचा है' इसमें आम जीवन में बच गए मूल्यों के बारे में लेखक ने सटीक बात कही है :

> किसी औरत को स्कूटर में पीछे बैठी देख/ आप यहाँ से सोचना शुरू नहीं करते/ कि ये पटाई हुई औरत है/
> किसी बच्चे को आदमी के साथ घूमते देख/ आप यह नहीं सोचते/ कि यह उसकी रखैल का बेटा है/
> अभी बहुत कुछ बचा है/ जिसे और बिगड़ने से बचाया जा सकता है।

जब तक यह थोड़ा-सा भी बचा रहेगा, तब तक हम नई शक्ति जुटाने का अवसर पाते रहेंगे जो इस देश को भी बचाएगा और प्रजातंत्र को भी।

— प्रभाकर श्रोत्रिय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पंचायत

ब्रिटेन (मिडलैण्ड) से

आजादी के बाद से ही जीविकोपार्जन के लिए भारतीयों का ब्रिटेन जाने का सिलसिला शुरू हो गया। उन दिनों देशांतरण के नियम-कानून सरल थे। लोगों को वहाँ जाने के लिए दोनों तरफ की सरकारों से प्रोत्साहन मिल रहा था। 'प्रायॉरिटी वाउचर' बाँटे जा रहे थे। पासपोर्ट जल्दी बन जाते थे। अशिक्षित, अकुशल लोगों के साथ-साथ ज्यादा पैसा कमाने की धुन में, पढ़े-लिखे लोग भी अपने घर-बार, परिवारों को चार-पाँच सालों के लिए अलविदा कह, ब्रिटेन की राह ले रहे थे। वहाँ पहुँच उन्होंने क्या पाया, क्या खोया, वतन की यादों की टीस के साथ वे वहाँ कैसे बसे और आज कैसा है उनका सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनैतिक जीवन; इन्हीं सब मुद्दों पर चर्चा के लिए महान ब्रिटिश नाटककार शेक्सपियर की जन्मभूमि और कार्यस्थली 'स्ट्रैटफोर्ड अपॉन एवन' में 'रायल शेक्सपियर कंपनी' थियेटर के ठीक सामने 'एवन' नदी के तट पर इंगलैण्ड के मिडलैण्ड क्षेत्र-कावेंटरी बर्मिंघम में रहने वाले हिन्दी प्रेमियों और लेखकों के साथ 'नया ज्ञानोदय' की एक विशेष पंचायत आयोजित हुई। इस परिचर्चा में शामिल हैं वरिष्ठ लेखक व हिन्दी प्रेमी रामकृष्ण, ग़ज़ल मास्टर प्राण शर्मा, कवयित्री शैल अग्रवाल, हिन्दी-गुजराती की कवयित्री तितिक्षा शाह और चुटकुलों के बादशाह डॉ. के.के. श्रीवास्तव। परिचर्चा का समन्वयन कर रही हैं सुपरिचित कथाकार उषा महाजन।

ब्रिटेन में प्रवासी भारतीयों का जीवन

उषा महाजन : साठ के दशक में हमारे एक परिचित इंजीनियर काम के सिलसिले में मैनचेस्टर और लंदन गए थे। लौटकर उन्होंने बताया कि प्रवासी भारतीयों की वहाँ बहुत बुरी हालत है। अच्छे घरों से नौकरी के लिए गए लोग वहाँ बस-कंडक्टरी और गाड़ियाँ साफ करने जैसे छोटे-मोटे काम कर रहे थे। रामकृष्ण जी, आप तो पचास के दशक में ही इंगलैण्ड चले आए थे। आपके क्या अनुभव रहे?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऊषा महाजन

रामकृष्ण : मैं भारत से यहाँ 1954 में आया था। मैं बी.ए. पास था और एम.ए. करना चाहता था। इसी बीच मेरे एक दोस्त ने कहा कि उसके साथ इंगलैण्ड चलूँ, उसके कुछ रिश्तेदार इंगलैण्ड में हैं और बेशुमार पैसा कमा रहे हैं। मैंने सोचा, पढ़-लिख कर पैसा ही कमाना है, सो मैं राजी हो गया। लेकिन जब यहाँ आया तो हैरान रह गया। स्थिति इतनी भयानक थी कि बताया नहीं जा सकता। कोई भी हिन्दुस्तानी खाना नहीं मिलता था। लोगों को कोई काम नहीं मिलता था। मिलता भी था तो बड़ी मुश्किल से। मैंने सोचा कि जर्नलिज्म कर लेता हूँ। 'लंदन स्कूल ऑफ जर्नलिज्म' को खत लिखा। पता चला उसकी तो फीस ही 350 पौंड थी, जबकि मैं भारत से सिर्फ 3 पौंड लेकर आाया था। उन दिनों वहाँ से सिर्फ 3 ही पौंड लेकर आने की इजाजत थी।

सोचा वापस लौट जाऊँ। पर लौटूँ कैसे? लोग क्या कहेंगे? अब तो चारा यही था कि जो भी काम मिलता है, करो। 'रेसिज्म' का उन दिनों जबरदस्त जोर था। किसी अँग्रेज के घर पेइंग गेस्ट बनकर रहने का तो सवाल ही नहीं था। 'एल्फ्रेड हर्बर्ट लिमिटेड' नाम की एक मशीन-टूल कंपनी में काम मिला। पैसे कुछ खास नहीं मिलते थे। हफ्ते के दस पौंड। धीरे-धीरे महसूस हुआ कि यहाँ जितने भी लोग आए हुए थे, सभी दुःखी थे। सोचते थे कि सिर्फ पाँच साल यहाँ काम करना है और पैसा कमा कर वापस वतन लौट जाना है। आप हैरान होंगी यह जानकर कि उस वक्त एक-एक कमरे में आठ-आठ लोग रहते थे। घरों में शौचालय नहीं होते थे। हफ्ते में एक दिन नहाते थे 'पब्लिक बाथ' में जाकर। एक आदमी आता था, आटा वगैरह दे जाता था। 10 पौंड में से 3-4 खाने-पीने में निकल जाते। एक पाउंड कमरे के किराए में। कमरे का मालिक जरूर पैसा बना लेता। आठ लोगों से हफ्ते में एक कमरे के आठ पौंड लेकर।

दो-तीन साल बाद हम कुछ पंजाबियों ने एक संस्था बनाई 'इण्डियन कल्चरल एण्ड वेल्फेयर सोसायटी।' इतवार वाले दिन हम पढ़े-लिखे लोग बेपढ़े भाइयों के लिए हिन्दी-उर्दू में खत वगैरह लिख देते, पासपोर्ट वगैरह की उनकी कुछ तकलीफें हल कर देते। लोगों को बाँधने और मनोरंजन के लिए इतवार को हिन्दुस्तानी फिल्में दिखाने का सिलसिला भी शुरू हुआ। लंदन में एक मि. कोची हुआ करते थे, उनसे हम फिल्में मँगवाते। फिर भारत से सिनेमा के कलाकार भी आते। सोहराब मोदी आए, वैजयंती माला आईं और भी कलाकार आए। बाद में जब रोजी-रोटी की समस्याएँ कुछ कम हुईं तो हमने एक पुस्तकालय बनाया जिसमें उर्दू और हिन्दी की किताबें रखनी शुरू की। भारत से उर्दू का 'प्रताप' और हिन्दी का 'आज' मँगवाया करते थे। हिन्दी के प्रचार-प्रसार की शुरूआत हमने मंदिरों से की। वहीं हिन्दी की कक्षाएँ लगानी शुरू कीं। बहरहाल ये सब बहुत बाद की बातें हैं। शुरू में तो हमारी जिन्दगी रोज की रोटी जुटाने के प्रयास में ही कट गई। हर दिन वापस लौटने का सोचते, पर फिर 'वापस लौटे तो लोग क्या कहेंगे' की शर्मिंदगी हमें रोके रहती।

प्राण शर्मा : मेरे अनुभव भी कुछ ऐसे ही रहे। यहाँ आकर पहले हफ्ते मैं लंदन में रहा। मैंने देखा लंदन में भागमभाग बहुत थी। एक मित्र मुझे मिल गए, जो मुझे लेस्टर ले आए। बड़ी बुरी हालत थी वहाँ। एक कमरे में चार-पाँच लोग रहते। घरों में टॉयलेट नहीं थे। कमरे में ही लोटे में पेशाब किया और बाहर फेंक आए। लेस्टर में या कॉवेन्टरी में उन दिनों कहीं घरों में मैंने टॉयलेट नहीं देखे। काउंसिल के 'पब्लिक बाथ' होते थे, जहाँ लोग हफ्ते में एक बार जाकर नहा आते। मैं पहली बार नहाने गया तो मुझे जुकाम हो गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यहाँ आकर मैंने जिन्दगी के कई उतार-चढ़ाव देखे। जब मैंने दिल्ली छोड़ी तो पत्नी को बोलकर आया था कि यहाँ बड़े ठाठ होंगे। यहाँ आने के तीनेक महीने बाद पत्नी को जब बुलाया तो यहाँ के हालत देख उसने अपना माथा पीट लिया। दिल्ली में मैं टीचर की नौकरी करता था। यहाँ कॉवेन्टरी में आकर मैंने टीचर की नौकरी के लिए आवेदन दिया, लेकिन मेरी अँग्रेजी की 'एक्सेंट' इतनी खराब थी कि नौकरी कहाँ मिलनी थी! तो, जहाँ मेरा एक दोस्त काम करता था, वहीं मैंने भी करना शुरू किया। 'बस-कंडक्टरी।' नौकरी तो बस-कंडक्टरी की थी, पर पैसे बहुत मिलते थे। कुछ ही सालों में मेरे पास काफी पैसे हो गए। हर साल मैं नई कार बदलने लगा। काफी समय तक मैं 'बस-कंडक्टरी' का काम करता रहा। फिर, एक दिन बॉम्बे से मेरे एक रिश्तेदार के यहाँ आने की खबर मिली। मेरी तो सिट्टी-पिट्टी गुम! अगर मेरे पिताजी को मालूम चल जाता कि मैं यहाँ 'बस-कंडक्टरी' कर रहा हूँ, तो शायद उनका हार्ट-फेल ही हो जाता। उन रिश्तेदार के आने से पहले ही मैंने वह नौकरी छोड़ दी और अपना एक छोटा-मोटा बिजनेस शुरू किया। एक गिफ्ट-शॉप खोली—घड़ियों, रेडियो वगैरह की। खैर, यह सब गुजरी बातें हैं। जब से मैं 'ओल्ड-एज' पेंशनर हुआ हूँ, तब से 'लाइफ' अच्छी हो गई है।

रामकृष्ण : अब तो सचमुच 'लाइफ' बहुत अच्छी हो गई है। आज के हालात और तब के हालात में जमीन-आसमान का अन्तर है। तब तो बड़ी बुरी हालत थी। अँग्रेजों के इलाके में आपको घर नहीं मिल सकता था। पहली बार जब मैं घर खरीदने गया तो एजेन्ट ने कहा, 'सॉरी जेन्टलमैन, आई कैनॉट सेल द हाउस टु यू।' मैंने पूछा, 'क्यों?' वह बोला, 'ओनर ऑफ द हाउस सेज़ द हाउस शुड नॉट बी सोल्ड टु ए ब्लैक मैन।'

प्राण शर्मा : यहाँ आकर मुझे 'पब' जाने का शौक हो गया है। लेकिन 'पब' में बैठकर मैं अपनी 'जबान' नहीं बोल सकता, क्योंकि वहाँ जो गोरे बैठे होंगे, वे आपको टोक देंगे। यह आज की सच्चाई है। गोरे आज भी एतराज करते हैं कि आप 'पबों' में अपनी भाषा नहीं बोल सकते। बसों में अपनी भाषा में बात नहीं कर सकते। पीछे बैठे गोरे एतराज करते हैं, 'वाई डोंट यू स्पीक इन इंग्लिश।'

"यहाँ आकर मुझे 'पब' जाने का शौक हो गया है। लेकिन 'पब' में बैठकर मैं अपनी 'जबान' नहीं बोल सकता, क्योंकि वहाँ जो गोरे बैठे होंगे, वे आपको टोक देंगे। यह आज की सच्चाई है। गोरे आज भी एतराज करते हैं कि आप 'पबों' में अपनी भाषा नहीं बोल सकते। बसों में अपनी भाषा में बात नहीं कर सकते। पीछे बैठे गोरे एतराज करते हैं, 'वाई डोंट यू स्पीक इन इंग्लिश।' मेरी पत्नी पर तो आक्रमण भी हुए हैं। लड़कों ने किए हैं, क्योंकि हमारी चमड़ी काली है। हमारे घरों में रोज ईंट-पत्थर फेंके जाते हैं। यह समस्या आज भी है। यह नहीं कि यहाँ के सभी लोग ऐसे हैं, लेकिन 99 प्रतिशत लोगों के दिलों में गुस्सा है कि भारतीयों ने यहाँ इतना पैसा कैसे कमाया? इनके घर तीन-तीन गाड़ियाँ क्यों हैं? ये यह नहीं समझते कि भारतीय लोग मेहनती हैं। ये लोग खुद तो काम करने को राजी नहीं। पिछले दो हफ्तों के अखबार पढ़ कर देखिए कि यहाँ की पुलिस फोर्स के लिए समस्या बनी हुई है कि उनके पुलिस वाले इतने 'रेसिस्ट' क्यों हैं।"

प्राण शर्मा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के.के. श्रीवास्तव

"मैंने जीवन में 'ह्यूमरस' पक्ष की ओर ही ज्यादा देखा है। हम लोगों की बीमारी देखते हैं, दुःख देखते हैं। तो मैंने मरीजों के साथ और आम जीवन में भी विनोदप्रियता को अपनाने की कोशिश की है। अँग्रेजों में अच्छी बातें भी हैं, बुरी बातें भी हैं। अच्छी बातें हैं, मसलन आप उनकी आलोचना करें, तो वे नाराज नहीं होंगे, मुस्कराते हुए लेंगे उसे। उनकी विनोदप्रियता भी अनोखी है। हम लोग बीवियों से मजाक करते भी डरते हैं और इन्होंने बीवियों और मदर-इन-लॉ पर ही सारे चुटकुले बना रखे हैं। मेरे मन में अँग्रेजों के प्रति कोई 'क्षोभ' नहीं है। हमारी फिलासॉफी तो यह रही कि जो भी करो हँसते-हँसते करो, नहीं तो मत करो। हम यहाँ खुश हैं, तो रह रहे हैं। कुछ हमारे दोस्त हैं जिन्हें यहाँ आए 35 साल हो गए, आज की तारीख तक खुश नहीं। जिन्दगी यहाँ गुजर गई, बच्चे यहाँ पैदा हुए, बड़े हुए, उनके भी बच्चे हो गए, वे अभी भी सेटल नहीं हुए। अभी तक निर्णय नहीं ले पाए कि भारत लौटें या नहीं।"

मेरी पत्नी पर तो आक्रमण भी हुए हैं। लड़कों ने किए हैं, क्योंकि हमारी चमड़ी काली है। हमारे घरों में रोज ईंट-पत्थर फेंके जाते हैं। यह समस्या आज भी है। यह नहीं कि यहाँ के सभी लोग ऐसे हैं, लेकिन 99 प्रतिशत लोगों के दिलों में गुस्सा है कि भारतीयों ने यहाँ इतना पैसा कैसे कमाया? इनके घर तीन-तीन गाड़ियाँ क्यों हैं? ये यह नहीं समझते कि भारतीय लोग मेहनती हैं। ये लोग खुद तो काम करने को राजी नहीं। पिछले दो हफ्तों के अखबार पढ़ कर देखिए कि यहाँ की पुलिस फोर्स के लिए समस्या बनी हुई है कि उनके पुलिस वाले इतने 'रेसिस्ट' क्यों हैं।

तितिक्षा शाह : मेरे खयाल से यह इसलिए कि पिछले साल जुलाई में जो 'टेररिस्ट अटैक' यहाँ हुआ, तब से यह रेसिज्म फिर से बढ़ा है। वे फर्क नहीं कर पाते कि कौन भारतीय है और कौन पाकिस्तानी। अगर आप 'ब्राउन' हैं तो पाकी हैं।

उषा महाजन : यह जो 'रेसिस्ट' (नस्लवादी) भावना है, यह सिर्फ पब्लिक में है या सरकारी स्तर पर भी?

तितिक्षा शाह : सब कहीं है। नौकरियों में भी है। देयर इज़ ए 'ग्लास सीलिंग' इन एवरी जॉब। हर नौकरी में एक सीमा के बाद एक अदृश्य रुकावट है। कुछ साल पहले तक एक डॉक्टर को 'कन्सल्टेंट' का पद दिए जाने के लिए जरूरी था कि उसकी पत्नी अँग्रेज हो। आप एक सीमा तक ही आगे बढ़ सकते हैं, उसके बाद तो 'ग्लास सीलिंग' सब जगह है।

रामकृष्ण : टोनी ब्लेयर ने कमलेश बहल को 'इक्वेलिटी' का सबसे बड़ा पद दिया था। उसके साथ इतना भयानक सलूक हुआ। उसे अपमानित, लांछित करके नौकरी से निकाल दिया गया। यहाँ तक कि उसे यह अधिकार भी नहीं दिया गया कि वह कोर्ट जा सके।

उषा महाजन : बिना किसी कारण के?

रामकृष्ण : कारण बना लिए गए। कारण बनाते क्या देर लगती है? उनको भी पता है कि कारण झूठे हैं। अभी मामला चल रहा है।

शैल अग्रवाल : मैं यहाँ कहना चाहूँगी कि यहाँ के समाज में दोनों तरह के लोग हैं। ऐसे भी हैं जो बहुत अच्छे हैं, जैसे सब जगह होते हैं। यहाँ की सरकार में भी ऐसे लोग हैं जो चाहते हैं कि चीजें बदलें। अगर आप किसी योगदान के काबिल हैं तो वे आपसे खुद संपर्क करते हैं। वे आपको अपने समुदाय की पुलिसिंग के लिए निमंत्रित करेंगे, मैजिस्ट्रेट बनाएँगे, संसद के सभा में आमंत्रित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करेंगे। मुझे अँग्रेजों से बहुत सहयोग मिला। हम ज्यादातर अँग्रेजों के बीच रहे। मेरे पति डॉक्टर हैं। मैं बीस साल की थी जब यहाँ आई थी। आज तीन दशक हो गए, मुझे तो ऐसा कोई बुरा अनुभव नहीं हुआ।

उषा महाजन : डा. श्रीवास्तव। आपका क्या विचार है? आप प्राण जी से सहमत हैं या श्रीमती शैल अग्रवाल से?

के.के. श्रीवास्तव : देखिए, हमारी स्थिति इन सबसे अलग है, क्योंकि हम जब यहाँ आए थे तो हमने डॉक्टरी के अलावा, भारत में क्रिकेट कमेंट्री करनी भी शुरू की थी। तो, यहाँ आकर मेडिसिन में प्रैक्टिस करने से ज्यादा हमारी इच्छा थी कि हम 'लाड्र्स क्रिकेट ग्राउंड' से क्रिकेट-कमेंट्री करें। यहाँ आने के बाद डॉक्टर की नौकरी के लिए आवेदन देने से पहले हमने क्रिकेट-कमेंट्री के लिए कोशिश की। बी.बी.सी. में जाकर उनसे बात की और क्रिकेट-कमेंट्री पहले शुरू की, नौकरी बाद में। वैसे भी मैंने जीवन में 'ह्यमरस' पक्ष की ओर ही ज्यादा देखा है। हम लोगों की बीमारी देखते हैं, दु:ख देखते हैं। तो मैंने मरीजों के साथ और आम जीवन में भी विनोदप्रियता को अपनाने की कोशिश की है। अँग्रेजों में अच्छी बातें भी हैं, बुरी बातें भी हैं। अच्छी बातें हैं, मसलन आप उनकी आलोचना करें, तो वे नाराज नहीं होंगे, मुस्कराते हुए लेंगे उसे। उनकी विनोदप्रियता भी अनोखी है। हम लोग बीवियों से मजाक करते भी डरते हैं और इन्होंने बीवियों और मदर-इन-लॉ पर ही सारे चुटकुले बना रखे हैं। मेरे मन में अँग्रेजों के प्रति कोई 'क्षोभ' नहीं है। हमारी फिलासॉफी तो यह रही कि जो भी करो हँसते-हँसते करो, नहीं तो मत करो। हम यहाँ खुश हैं, तो रह रहे हैं। कुछ हमारे दोस्त हैं जिन्हें यहाँ आए 35 साल हो गए, आज की तारीख तक खुश नहीं। जिन्दगी यहाँ गुजर गई, बच्चे यहाँ पैदा हुए, बड़े हुए, उनके भी बच्चे हो गए, वे अभी भी सेटल नहीं हुए। अभी तक निर्णय नहीं ले पाए कि भारत लौटें या नहीं।

उषा महाजन : मैंने सुना है कि यहाँ भारत से आए बहुत-से डॉक्टर बेरोजगारी की हालत में, मारे-मारे फिर रहे हैं। गुरुद्वारों में जाकर खाना खाकर गुजर-बसर कर रहे हैं?

के.के. श्रीवास्तव : आपने ठीक सुना है। मुश्किल यह है कि इन्होंने यहाँ इतने ज्यादा मेडिकल कॉलेज खोल दिए हैं कि इनके अपने यहाँ पढ़े डॉक्टरों के लिए भी नौकरियाँ नहीं हैं। पहले ये अपने डॉक्टरों को नौकरियाँ देंगे। दूसरा मौका यूरोपियन यूनियन के देशों से पढ़कर आए डॉक्टरों को देंगे, यह इनकी आपस में 'अंडरस्टैंडिग' है।

"मुझे लगता है कि हम हिन्दुस्तानी खुद में एक हीन भावना से घिरे रहते हैं। अपने को 'होल्ड बैक' करके रखते हैं। अगर आप जरा-सा भी आगे बढ़ते हैं, तो अँग्रेज चार कदम बढ़कर आपका स्वागत करते हैं। इसका एक उदाहरण मैं देना चाहूँगी। आज से कोई 20-22 साल पहले मैं 'मार्क्स एण्ड स्पैंसर्स' दुकान में कुछ खरीदारी कर बाहर निकली तो देखा कि एक 'पंक' अँग्रेज लड़के ने एक पंजाबी बुढ़िया के ऊपर थूक दिया। मैंने लड़के की शर्ट पकड़ी और कहा कि 'तुम ऐसा नहीं कर सकते, तुम्हें इनसे माफी माँगनी होगी।' मुझे तब यह अहसास नहीं हुआ था कि वह लड़का मेरे ऊपर भी थूक कर निकल सकता था। लेकिन आप मानेंगी नहीं कि वह शर्मिंदा हुआ और बोला, 'ओ.के, सॉरी।'"

शैल अग्रवाल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तितिक्षा शाह

"पहले की पीढ़ी के काफी लोगों ने, ज्यादातर मर्दों ने अँग्रेज महिलाओं से शादियाँ कीं। आजकल हमारी लड़कियाँ भी अँग्रेज लड़कों से शादी कर रही हैं, खासकर उन घरों की, जहाँ वे लड़की और लड़के के बीच माता-पिता को भेदभाव करते पाती हैं। लड़कियों से जहाँ घर के काम कराए जाते हैं, लड़कों से नहीं। तो वे ऐसे लड़कों से शादी करना चाहती हैं, जो घर के कामकाज में उनका हाथ बँटाने वाले हों, क्योंकि उन्हें भी नौकरी करनी है। तो हमारे बच्चे 'वेस्टर्न कल्चर' की कुछ चीजें अपना भी रहे हैं, पर मुझे नहीं लगता कि वे कहीं भी 'कन्फ़्यूज्ड' हैं।"

उषा महाजन : तितिक्षा जी, आपकी एक कविता 'दार्जिलिंग की चाय का प्याला' के बारे में बहुत सुना है। इसका सन्दर्भ?

तितिक्षा शाह : तीन-चार साल पहले जब यहाँ के एक मंत्री डेविड ब्लैंकेट ने प्रवासियों से कहा कि आप लोग अपना रहन-सहन छोड़कर हमारा रहन-सहन अपनाइये, तब तक मैं प्रेम, विरह की ही कविताएँ लिखती थी। लेकिन यह सुनकर मेरी कविताओं के तेवर में बदलाव आया और मैं 'इशू बेस्ड' लिखने लगी। डेविड ब्लैंकेट के स्टेटमेंट से बहुत लोग उनके खिलाफ हो गए थे।

उषा महाजन : शैलजी, आपको क्या लगता है कि ऐसे में यहाँ खुद्दारी के साथ रहा जा सकता है?

शैल अग्रवाल : मुझे लगता है कि हम हिन्दुस्तानी खुद में एक हीन भावना से घिरे रहते हैं। अपने को 'होल्ड बैक' करके रखते हैं। अगर आप जरा-सा भी आगे बढ़ते हैं, तो अँग्रेज चार कदम बढ़कर आपका स्वागत करते हैं। इसका एक उदाहरण मैं देना चाहूँगी। आज से कोई 20-22 साल पहले मैं 'मार्क्स एण्ड स्पैंसर्स' दुकान में कुछ खरीदारी कर बाहर निकली तो देखा कि एक 'पंक' अँग्रेज लड़के ने एक पंजाबी बुढ़िया के ऊपर थूक दिया। मैंने लड़के की शर्ट पकड़ी और कहा कि 'तुम ऐसा नहीं कर सकते, तुम्हें इनसे माफी माँगनी होगी।' मुझे तब यह अहसास नहीं हुआ था कि वह लड़का मेरे ऊपर भी थूक कर निकल सकता था। लेकिन आप मानेंगी नहीं कि वह शर्मिंदा हुआ और बोला, 'ओ.के, सॉरी।'

रामकृष्ण : यह सही है कि यहाँ कुछ चीजें खराब हैं, लेकिन तस्वीर बिल्कुल ही 'ब्लैक' नहीं है। हमारे प्रति सद्भावना भी दिखाई जाती है। पिछले दो सालों से 'हाउस ऑफ कॉमन्स' में कृष्ण-जन्माष्टमी मनाई जा रही है। बड़ी जल्दी ही हमारे भारतीय त्योहारों पर छुट्टियाँ भी दी जाने वाली हैं। मैं ग्यारह साल बाद भारत गया तो मुझे भारत भी पहले-सा नजर नहीं आया। पहले सबके घरों में 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' वगैरह नजर आते थे। अब तो किसी के घर में हिन्दी की कोई पत्र-पत्रिका दिखती ही नहीं। भारत जिस तरह बदला है, वह हमारे लिए बहुत हैरानी की बात है।

उषा महाजन : क्या भारत की बुराइयाँ, मसलन दहेज, अपनी जाति में शादियाँ करना, शादियों में तड़क-भड़क, भेदभाव वगैरह यहाँ भी दिखती हैं?

रामकृष्ण : बिल्कुल। दहेज की समस्या यहाँ भी है। शादियों में आडंबर, दिखावा बहुत होते हैं। जात-पात की समस्या तो वहाँ से भी ज्यादा है। उदाहरण के लिए सिखों में जाट का लड़का रामगड़िया की लड़की से शादी नहीं करेगा।

शैल अग्रवाल : मैंने एक लेख लिखा था 'नये घरों में पुराना सामान', यानी जो भारतीय यहाँ आए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं, अपने साथ बुराइयों की पोटली भी साथ लेते आए हैं। जो सुलझे हुए परिवार हैं, वे भारत में भी इन बुराइयों से दूर हैं और यहाँ भी।

उषा महाजन : क्या आपने अपनी बेटी को वही आजादी दे रखी है जो यहाँ लड़कियों को दी जाती है?

शैल अग्रवाल : मैंने दी है। मेरी बेटी ने क्रिश्चियन लड़के से प्रेम-विवाह किया है।

रामकृष्ण : मेरी व्यक्तिगत राय है कि दहेज और शादियों में बेतहाशा खर्च आदि की समस्या का एक हल है—अंतर्जातीय शादियों को बढ़ावा देना। मेरी दोनों लड़कियों ने यहीं के लड़कों से शादियाँ की हैं। एक ने 'आयरिश' लड़के से, दूसरी ने 'स्कॉटिश' से। सात-आठ साल हो गए। दोनों बहुत सुखी हैं। सन-इन-लॉ आते हैं, बर्तन साफ करने शुरू कर देते हैं। हमें कहना पड़ता है कि "भई, यह मत करो, तुम जवाई हो।"

तितिक्षा शाह : पहले की पीढ़ी के काफी लोगों ने, ज्यादातर मर्दों ने अँग्रेज महिलाओं से शादियाँ कीं। आजकल हमारी लड़कियाँ भी अँग्रेज लड़कों से शादी कर रही हैं, खासकर उन घरों की, जहाँ वे लड़की और लड़के के बीच माता-पिता को भेदभाव करते पाती हैं। लड़कियों से जहाँ घर के काम कराए जाते हैं, लड़कों से नहीं। तो वे ऐसे लड़कों से शादी करना चाहती हैं, जो घर के कामकाज में उनका हाथ बँटाने वाले हों, क्योंकि उन्हें भी नौकरी करनी है। तो हमारे बच्चे 'वेस्टर्न कल्चर' की कुछ चीजें अपना भी रहे हैं, पर मुझे नहीं लगता कि वे कहीं भी 'कन्फ़्यूज्ड' हैं।

उषा महाजन : आप लोग यहाँ पैसा कमाने के उद्देश्य से आए थे और धीरे-धीरे यहीं बस गए। अब आपके पास पैसा है और भारत में स्थितियाँ ऐसी हो गई हैं कि आप वहाँ यहाँ से कई गुना बेहतर जीवन जी सकते हैं। दिल्ली, मुंबई, बंगलौर जैसे महानगरों में साहित्य, संगीत और कला की भी बहार है। अगर मैं आपसे पूछूँ कि आप लोग जिन्दगी के इस मुकाम पर क्या भारत वापस लौटना चाहेंगे?

तितिक्षा शाह : मेरे बच्चे जाएँगे। हमारी पीढ़ी, जो 50 सालों से यहाँ रहते हुए भी यह कहती रही है कि हम तो वापस लौट जाएँगे। वे भले लौटें या न लौटें, लेकिन हमारे बाद की पीढ़ी यहाँ से उठकर भारत जाएगी, कमाने के लिए और 'डिफरेंट एवेन्यूज' खोजने के लिए। और इस तरह एक चक्कर पूरा होगा।

"मैं यह कहना चाहता हूँ कि 'देश वहीं, जहाँ जीविका।' जहाँ आपको रोजी-रोटी मिलती है, आपका जीवन-स्तर बढ़ जाता है, आप वहीं रहना चाहते हैं। अब हमें यहाँ किसी चीज की कमी महसूस नहीं होती। बल्कि अच्छा ही लगता है। यहाँ मसालों में मिलावट नहीं है, दफ्तरों में आपका काम अच्छी तरह हो जाता है, कहीं कोई घूस नहीं देना पड़ता, भारत में लोग अभी तक बच्चों को पीटते हैं, यहाँ बच्चों को डाँटते हुए माँ भी डरती है कि फौरन पुलिस आ जाएगी। यहाँ कानून का पालन होता है। आम आदमी अपना काम ठीक से करता है। जो यहाँ अनपढ़, गँवार आए थे, आज उनके बच्चे चार्टर्ड एकाउंटेंट, डॉक्टर, इंजीनियर हैं। यह इस समाज की अच्छाई है। मैं तो कहता हूँ, हमें यहाँ की अच्छी बातें सीखनी चाहिए। आमतौर पर इस समाज में 'फेयरनैस' है। बूढ़ों को रिटायर होने के बाद 200 पौंड हर महीने मिलते हैं कि वे चैन से जी सकें।"

प्राण शर्मा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शैल अग्रवाल : आज दुनिया का हर देश लोगों की पहुँच में है। हम लोग हर साल भारत जाते हैं। काफी लोगों ने भारत में भी घर बना रखे हैं। तो कभी यह महसूस ही नहीं होता कि हमने भारत छोड़ा है। भारत के धनाढ्य और अच्छे खाते-पीते परिवार भी अपने बच्चों की शादियाँ हमारे बच्चों से कर रहे हैं, क्योंकि उन्हें यहाँ भी एक भारत ही बना मिल रहा है। भारतीय जहाँ भी रहे, उन्होंने वहीं अपना एक भारत बना लिया। तो हम भारत से अलग हैं ही कहाँ, चाहे जहाँ भी रहें।

रामकृष्ण : मैं यह कहना चाहता हूँ कि 'देश वहीं, जहाँ जीविका।' जहाँ आपको रोजी-रोटी मिलती है, आपका जीवन-स्तर बढ़ जाता है, आप वहीं रहना चाहते हैं। अब हमें यहाँ किसी चीज की कमी महसूस नहीं होती। बल्कि अच्छा ही लगता है। यहाँ मसालों में मिलावट नहीं है, दफ्तरों में आपका काम अच्छी तरह हो जाता है, कहीं कोई घूस नहीं देना पड़ता, भारत में लोग अभी तक बच्चों को पीटते हैं, यहाँ बच्चों को डाँटते हुए माँ भी डरती है कि फौरन पुलिस आ जाएगी। यहाँ कानून का पालन होता है। आम आदमी अपना काम ठीक से करता है। जो यहाँ अनपढ़, गँवार आए थे, आज उनके बच्चे चार्टर्ड एकाउंटेंट, डॉक्टर, इंजीनियर हैं। यह इस समाज की अच्छाई है। मैं तो कहता हूँ, हमें यहाँ की अच्छी बातें सीखनी चाहिए। आमतौर पर इस समाज में 'फेयरनैस' है। बूढ़ों को रिटायर होने के बाद 200 पौंड हर महीने मिलते हैं कि वे चैन से जी सकें।

प्राण शर्मा : अच्छाइयाँ भारत में भी हैं, यहाँ भी हैं। दोष भी हर जगह के निकाले जा सकते हैं। लेकिन जहाँ आप सुखी हैं, वहीं रहना चाहिए। हर व्यक्ति यहाँ पैसा कमाने के लिए पाँच साल के लिए आया था, पर लौटा कोई नहीं।

के.के. श्रीवास्तव : पाँच से पचास हो गए। जो भारत हमने यहाँ बसा लिया है, अब उसमें और इसमें कोई अन्तर नहीं रहा। चाहे वहाँ रह लें या यहाँ रह लें।

उषा महाजन : आज, इतने खुशगवार मौसम में, इस ऐतिहासिक स्थल पर हुई महत्त्वपूर्ण परिचर्चा में आप सबने भाग लिया, इसके लिए मैं 'नया ज्ञानोदय' की ओर से आपको हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। ◻

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

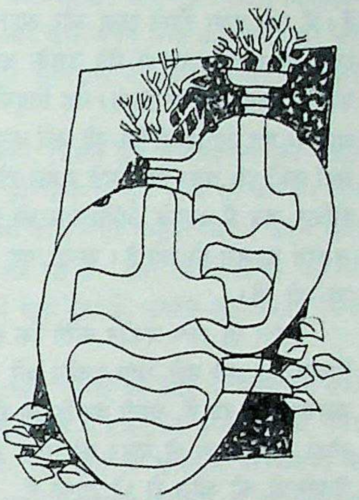

गंगा प्रसाद विमल

धरती का पेट

पार्क में सुस्ताते कान के सहारे धरती पर कुछ पल के लिए टिका ही था कि मुझे कुछ अजीबोगरीब आवाज़ें सुनाई देने लगीं। ऐसा अन्दाजा ही नहीं था कि धरती के भीतर भी कुछ गड़बड़झाला है। शायद मेरे कान में ही कोई खामी होगी, सो मैं हड़बड़ी में तिरछे ही उठा और मैंने उस जगह अपना हाथ टिका दिया।

पर यह क्या? अब मेरे हाथ भीतर की एक ऐसी कम्पन महसूस कर रहे थे कि मुझे लगा मैं ज्यादा देर उसे बर्दाश्त नहीं कर पाऊँगा। वह कल्पनाओं से भी परे की कम्पन थी। बताने के लिए मेरे पास भाषा ही नहीं थी—क्या बताऊँ...परन्तु हाँ, उस कम्पन से मैं कुछ सुन सकता था। संगीत जैसा। संगीत जैसा कहने की मुराद यह कि वह संगीत जैसी आसान चीज नहीं थी। कह सकते हैं कुछ-कुछ मुश्किल, न समझ में आनेवाली संगीत लहरी जैसी। मैंने घबराकर अपने हाथ वहाँ से हटा लिए। हाथ हटाए तो हटाये, पर अब मेरे पाँव धरती से टिके थे। मैं पाँवों के जरिए उस हलचल से वाकिफ होने लगा। मुझ तक उस हलचल की खबर इस तरह साफ पहुँच रही थी कि मैं खुद हैरान था।

मैं इतना ही कह सकता कि जो मैं आपको भाषा में नहीं बता सकता वह मुझे स्वाभाविक रूप से पता चल रहा था। मैं इस बिन्दु पर थोड़ा खुश भी था कि मैं किसी ऐसी चीज से परिचित हो रहा था जो भाषा से भी ज्यादा शक्तिशाली थी।

इसे आप कुछ भी कहें, मैं आपको कैसे रोक सकता हूँ। आप कह सकते हैं—मियाँ तुम राँची में पैदा हुए, बरेली में पढ़े-लिखे, बरसों से शाहदरा में रहते हो...जरूर एक दिन तुम अमृतसर पहुँचोगे। कितनी भी गालियाँ दें आप, अपने उस अविश्वास की पलक भर छुअन को अपनी भाषा में उतार नहीं सकते प्रभु! धरती के पेट की जो स्थिति है उससे मैं धीरे-धीरे ही सही मुकम्मिल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तौर पर परिचित हो रहा हूँ। मेरा दुर्भाग्य उसे मैं अपने अर्जित भाषा में, जिसमें मैं शेखी बघारता था कि मैं पूरी तरह विज्ञ हूँ, उसमें पूरी तरह बता नहीं सकता। एक ही वाक्य कह सकता हूँ कि भाषा सचमुच एक लचर चीज है।

आप कह सकते हैं कि यह एक अनुभव है। मैं ऐसा नहीं मानता। आप कह सकते हैं तुम वहमी हो, मैं ऐसा नहीं मानता। एक औरत से मैं परिचित हूँ। वह कहती है मेरे भीतर कैमरे लगे हैं। मैं उस वक्त हँसने लगा और आपकी तरह ही उसके वक्तव्य पर न सिर्फ अविश्वास करने लगा बल्कि हिकारत में मैंने उसके वक्तव्य को फालतू माना। वह खूबसूरत थी इसीलिए मैंने उससे संवाद स्थापित किया। वह विदुषी थी। भाषाएँ जानती थी। मैं एक वक्त तो उससे प्रभावित था। पर वह अविश्वसनीय-सी बातें करने लगी। मैं चौकन्ना हो गया। कहीं वह पहुँच तो नहीं गई वहीं जहाँ इस वक्त आप मुझे समझ रहे हैं। परन्तु मैं आपके अविश्वास को अस्वीकार करता हूँ। लेकिन जब मैं आपके अविश्वास को झुठला रहा हूं तभी मुझे उस औरत पर दुबारा सोचने की जरूरत महसूस हो रही है। परन्तु...यह क्या! धरती की हलचल मुझे बुरी तरह अपनी ओर खींचे जा रही थी।

इसपर तो आप यकीन करेंगे कि हम धरती के ऊपर या बाहर रहनेवाले लोग धरती का ही हिस्सा हैं। इसी नाते आप यकीन करें कि मैं इस वक्त, जब मेरे पाँव धरती से टिक धरती की हलचल सुन रहे हैं, धरती का हिस्सा हूँ—हम बाहर से धरती देख सकते हैं, थोड़ा बहुत खोदकर थोड़ा बहुत भीतर से बाहर की तरफ उगने वाले पेड़ों, फलों, फूलों के रूप में, थोड़ा-बहुत हम वैज्ञानिकों की खोज से भी जानते हैं...।

पर मैं तो बयान न कर पाने वाली हलचल का हिस्सा हो गया हूँ।

चलो आपको बताता हूँ कि वह हलचल किस किस्म की है। धरती के भीतर, नीचे की ओर, अतल नीचे की ओर बहुतेरी चीजें गिर रही थीं। हाँ—भीतर गिर रही थीं। लुढ़क नहीं रही थी। आपने देखा होगा किसी ऊँची चोटी से नीचे घाटियों की ओर, खाईयों की तरफ भरपूर तेजी से, कभी निःशब्द तो कभी हवा को चीरते हुए पत्थर गिरते हैं। वे हवा में ही आवाज निकालते हैं। उनके गिरने की और हवा की सांय-सांय आवाज अनुगूँज बनकर चारों तरफ फैल जाती है। भीतर धरती के विशाल पेट में ऊपर से नीचे, नीचे की ओर उड़ उड़ कर बह रही है। शायद यही कहना उचित होगा।

आप कह सकते हैं इसमें क्या खासियत है? गिरने दो अगर कुछ गिरता है।

बस पेंच यहीं पर है। न जाने कौन-सी ताकत है जो मुझे उन आवाजों की मार्फत बाकायदा कुछ दृश्य दिखा रही है।

मेरे इस वक्तव्य पर जरा भी यकीन न करें। यह नामुमकिन-सी बात है। आवाजों की मार्फत दृश्य देखना यानी हम कोई धुन बजाएँ और दूसरा कोई कहे कि उसे सायप्रस का बाजार दीख रहा है और बाजार में एक अरब और एक यूनानी आपस में झगड़ रहे हैं। न...न...। अटकल की भी कोई हद होती है। देखिए अपने खुद की मुख़ालिफत की तरफ आपको भड़काने का मेरा मकसद यही है कि आप मेरी बातों पर चाहें यकीन न करें, मेरी बातें सुन जरूर लें।

अब जरा सुनें। कोई ताकत धरती के पेट के शाश्वत अँधेरे से वह चीजें आलोकित कर रही थीं जिनकी मेरी दुनिया को, बाहर की दुनिया को जरूरत है। पर कौन यकीन करेगा, एक नामुमकिन-सी बात। ठगों और कुचक्रियों और खराब माल की तारीफ करने वालों लालाओं जैसी हरकत... कि मैं कहूँ मुझे आवाज की मार्फत दिखाई दे रहा है। सचमुच आप यकीन न करें। सुन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लें। मैं पछता रहा हूँ कि जो औरत अपने भीतर के कैमरों की बात कर रही थी उससे मैंने पीछा छुड़ा लिया था। लेकिन उसने मेरे सुनने न सुनने की परवाह किये बगैर मुझे बताया था कि जिस्म के भीतर का यंत्र एक ऐसी चीज है जिससे हम इंसानी हकीकत के रहस्य जान सकते हैं। बाहर से हुई न यह एकदम अर्थहीन-सी बात। उसने बहुत प्यार जताते हुए कहा—यह प्यार-व्यार भी कोई मतलब की चीज नहीं है। सब 'केमिस्ट्री' है। उस वक्त उसकी बातें मुझे एकदम किताबी-सी लगती थीं। मैं सोचता था वह एक आश्रम बनायेगी और वहाँ अपने लिए दास भर्ती कर मजे से अपना जीवन बितायेगी या ऐसी ही रही तो किसी ऐसे अस्पताल में चीखती-चिल्लाती रहेगी जहाँ दिमागी मरीज रहते हैं।

ठीक वैसी ही बात हुई न बचपन में सुनी कहानी जैसी, जिसमें झूठे ने कहा तुम झूठ कबूल कर लो और नाचने लगो तो सारी दुनिया तुम्हारे पीछे हो जाएगी। तुम सच्चे हो जाओगे और अमेरिका, संयुक्त राज्य अमेरिका से बेहतर उदाहरण क्या होगा—पर तमाम प्रवचन करने वाले झूठे लोग, प्रपंची और खुद को देवत्व में लपेटे यही कर रहे हैं—यही तो धरती के पेट की हलचल से उभरने वाली गाथा है। और आप को मैं ही कह रहा हूँ, यकीन मत करना, सिर्फ सुनभर लेना।

अभी तो मैंने पत्थरों के बहने का बयान किया है। अतल गहराई की ओर वे पत्थर इस तेजी से गिर रहे हैं कि लगता है कि वे भीतरी हिस्से के आखिरी तल से टकराकर धरती का पेट फोड़ कर बाहर निकल अंतरिक्ष की कक्षाओं में पहुँच जाएँगे। यह बात तो खासतौर पर यकीन के काबिल नहीं है। आप तुरन्त वैज्ञानिकों की किताबें उठा लाएँगे। कल्पना की हद भी टाप ली इस वक्तव्य ने कि धरती का पेट फोड़ गिरने वाले पत्थर अंतरिक्ष में फैल जाएँगे। कैसे?...धरती के भीतर तो पदार्थ ही पदार्थ है। अँधेरा है। धातु, द्रव्य, गैस सब एक दूसरे से दबे हैं। धरती के गोल घेरे के भीतर खालीपन नहीं है। ज्यादा से ज्यादा सच यह है कि धरती के बाहर खालीपन है। वहाँ कितने ही प्रकाश वर्षों की दूरी तक खालीपन है।

जरा इसी पर बहस हो जाय। जिसे अपना सटा हुआ भरापन कह रहे हैं उसके भीतर आपकी निगाह में कोई चीज प्रवेश नहीं कर सकती, अरे! एक्सरे किरण मोटे घने लोहे को भेदकर दुनिया की दूसरी तरफ देख सकती है। लाओ एक शक्तिशाली चुम्बक...और हिलाओ दुनिया। आप मेरी बात पर यकीन न करें सुन तो लें—धरती के भीतर विप्लवी हलचल मची हुई है। मेरा समर्थन करने के लिए आप भूकम्पों का उदाहरण देंगे, वे भी तो धरती की किसी सतह को फोड़कर बाहर आते हैं। और यह सुनामी लहर—फिलहाल ऐसे मुआमले छोड़ देते हैं, यहाँ कहता हूँ कि उस विप्लवी हलचल का असर धरती के ऊपर पड़ता है। अब आप 'माओवादियों' का उदाहरण देने लगें। परन्तु असर पड़ता है। हम पर भी। यह तय है सौ फीसदी।

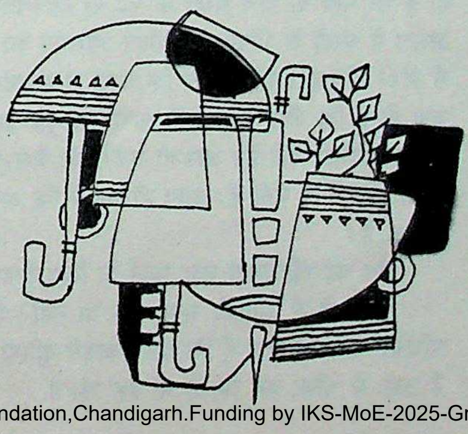

मैं उन जोड़ों के बारे में सोचता हूँ तो घबरा जाता हूँ। धरती के पेट से ख़बर आती है तो ज्यादा ही घबरा जाता हूँ। वे युवा जोड़े जो कल तक एक-दूसरे को ललक से देखते थे, धीरे से पास आते हैं, एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दूसरे का हाथ थमाते हैं। वे एक-दूसरे को परखते हैं। यकबयक उनके होंठ एक-दूसरे से मिलेंगे, वे आनंद की दुनिया में पहुँच जाएँगे। पर सिर्फ पलभर के लिए। बस केमिस्ट्री के संसार की यह त्रासदी है। एक पल के बाद बोध होता है कि यह कार्य है। बोध भी पल भर ही रहता है चाहे। पर एक पल का भी संशय, एक पल का भी अविश्वास, एक पल का भी सच इस बात से विस्तृत होता है कि उसके लिए सारे वृक्षों की कलम और सारी धरती को कागज बनाकर लिखूँ तो वह भी कम है।

वे लोग जो मिलते हैं, युवा लोगों की तरह, राजनेताओं की तरह, अभिनेताओं की तरह; वे सच का सामना होते ही हम्माम के बंदे हो जाते हैं। उनके नाखून छुरों की तरह बढ़ आते हैं, बाल बर्छियों की तरह, जबड़े मगरमच्छों की तरह फैल जाते हैं। वे अपने प्राकृतिक स्वरूप में आ जाते हैं। धरती के भीतर जैसे खतरनाक जहरीले, साँप, कीड़े, बिच्छू और दूसरे जीव सतत प्रतिहिंसा में जागृत रहते हैं । अँधेरे और बियावान में सतत जाग्रत—ठीक वैसे ही धरती के ऊपर का हाल है। और तो और ...मर्दों में, भैंस और भैंसों में होड़ लगी है, आक्रामक और हिंसक बनने की...तो बस इस पल भी प्रतीक्षा करें और देखें कि प्रतिहिंसा क्या नाटक खेलती है? और देखना ही है तो सुबह का अखबर देखें। दरिन्दगी से भरे खौफनाक दृश्यों को टेलीविजन परोसता है। सुनी गई गाथाओं को राष्ट्रीय मंच हासिल है...

सदियों नहीं, युगों से—युगों-युगों से धरती के नीचे अँधेरा सोया है। सघन अँधेरा, इतना घना कि वह अपने घनेपन के कारण एक अन्तर्ज्योति है और हमें दिखाई देता है...यहीं गड़बड़ है न...इस वाक्य में सघन अँधेरा और अँधेरा ही अन्तज्योति बिखेर रहा है। आइए इस पूरे मामले की तहकीकात करें। सरकारी स्तर पर एक आदमी पकड़ा जाता है ठीक लाल किले के सामने बस स्टैंड पर...अखबार में छपता है संगीन अपराधी पकड़ा गया, सरकारी दस्तावेज दूसरे मुल्क को देता हुआ। हुई न सघन अँधेरे जैसी बात और पकड़ने में ही वह अन्तर्ज्योति का सिए आलोक बिखेरेगा। आप भी कहेंगे यह लेखक न कहानी कह रहा है न सच कह रहा है। बस अटकल लगा रहा है और कभी-कभार ऐसे वाक्य बोल पड़ता है जिसमें कोई अन्तरंग संगति नहीं बल्कि वाक्य में दो विरोधी ध्रुवों की स्थिति दिखाई देती है। घपला यह कि दो ध्रुव चाहे एक-दूसरे से अलग रहते हैं, कभी मिलते नहीं, लेकिन वैज्ञानिक रूप से उन्हीं के बीच हमारा नक्षत्र, हमारी दुनिया अस्तित्व में है।

छोड़िए, मैं सीधे प्रयोजन पर आता हूँ। यह मुश्किल हिन्दी शब्द प्रयोजन, जिसका मतलब ही है मेरे पाँव के नीचे धरती के पेट पर आनेवाले अबोल से शब्दों के खुलासे पर सीमित हैं—असल में धरती के भीतर डोलायमान अस्तित्व का असली चेहरा तो बाहर ही है...हुआ यह है कि मैं अपने पाँव हटा नहीं सकता कि धरती से संवादरत न होऊँ...यह मेरी दिली इच्छा है कि आपको बता ही दूँ कि जैसे-जैसे धरती के रहस्य मुझे ज्ञात होते जाते हैं बाहर की दुनिया के नरकों की बढ़ोत्तरी दिखाई देती है। आप ही कहेंगे कि जैसे-जैसे हम धरती को खल्वाट कर रहे हैं वैसे-वैसे धरती विलाप में रोती है। आप ही कहेंगे कि अब अतिवृत्ति से त्रास मिलेगा...यह आप का ही सोचना है।

अब यह खौफनाक बात सुनने के लिए तैयार हो जाएँ।

तब चाहे मैं आपको सुना पाऊँ या नहीं? मैं आपको धरती के भीतर के सच से इसलिए परिचित कराना चाहता हूँ कि उससे बाहरी दुनिया का गहरा रिश्ता है। यानी जो भी बाहर घट रहा है उसी से भीतर बन रहा है या ढह रहा है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह नहीं कहूँगा कि आप भी अन्दर की आवाजें सुनें। बहुत से लोग मिट्टी का तिलक लगाने लगेंगे...।

लेकिन ध्यान से सोचें जरूर कि जितना हम वर्तमान को जल्दी से अतीत बनायेंगे उतनी जल्दी भविष्य भी व्यतीत की ओर खिंचा आएगा...।

उस खौफनाक सच से अभी तक पर्दा हटा ही नहीं है जिसका मैंने जिक्र किया था। असल में वह मैं आपके भीतर जनमाने की कोशिश में हूँ।

हाँ, आप अपने इर्द-गिर्द देखें कि कहीं घास में लेटने की आपकी इच्छा तो नहीं हो रही...कहीं पड़ोसी की प्रेम गाथाओं के सचित्र विवरण तो आप नहीं देखना चाहते, कहीं आप अपने दुश्मन की मौत की कामना तो नहीं कर रहे, कहीं आप खुद को सर्वोच्च जगह पर अकेले बैठे तो नहीं देखना चाहते? आपके कान जरूर धरती पर टिकेंगे और फिर आप ही मुझे उस खौफ से, उन वारदातों से, उस गल्प से परिचित करायेंगे...आप ही...

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

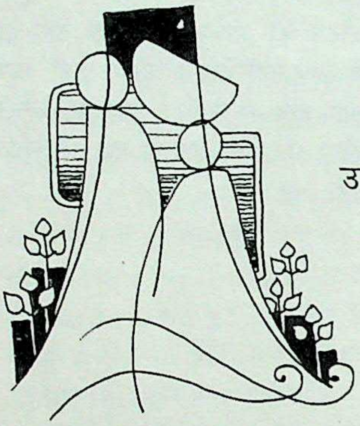

उमाकांत खुबालकर

व्यतिक्रम

"आपको साहब बुला रहे हैं।"

सुमेध ने चौंककर चपरासी की ओर देखा जो बड़े आदर के साथ सर झुकाकर सीट के पास खड़ा था। पास बैठे सहकर्मियों ने उपेक्षित-सी दृष्टि डाली कि इस जैसे निखट्टू आदमी को निदेशक ने भला क्यों बुलाया? दरबार में साहब से दिन-रात साये की तरह चिपके रहनेवाले चाटुकारों की क्या कोई कमी आ गई है! आमतौर पर किसी भी जरूरी काम के लिए वे सेक्शन अफसरों को बुला लिया करते थे। अधीनस्थों को निदेशक कभी नहीं बुलाते थे। इधर कक्ष का काम अचानक ठप हो गया। सभी सहकर्मी पास-पास खिसक गए। कानाफूसी शुरू हो गई। चपरासी अब तक खड़ा सुमेध का मुँह ताक रहा था। सहकर्मियों में से एक ने टिप्पणी की।

"क्यों बे टायलेट भी नहीं जाने देगा क्या उसे?"

चपरासी अचकचा गया। बड़े लोगों की बिना वजह उपहास उड़ानेवाली शैली से वह भली-भाँति परिचित था। बड़े साहब के सामने किसी की जुबान नहीं खुलती।

"नहीं, साहब ने तुरन्त बुलाया है।"

फाइलें एक ओर खिसकाकर सुमेध तुरन्त खड़ा हो गया। माथे पर चुहचुहा आया पसीना पोंछा, फिर यंत्रवत वह चपरासी के साथ चल पड़ा। कुछ ही क्षण में वह निदेशक के सामने पालतू जानवरों की तरह खड़ा था। निदेशक फोन पर व्यस्त थे। सुमेध को उचटती-सी नजरों से देखते हुए बैठने का इशारा किया।

सुमेध सीट पर आतंकित होकर उकडूँ -सा बैठा था। फोन पर अपनी बात खत्म करके निदेशक ने आदेशात्मक स्वर में कहा—"अगले हफ्ते गुवाहाटी में आफिस का एक सेमीनार कंडक्ट करना है आपको?"

मिमियाते हुए स्वर में सुमेध के मुँह से 'जी' निकल सका था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'बीस साल की नौकरी में आफिस की ओर से कभी चाँदनी चौक तक नहीं भेजा गया है। अचानक गुवाहाटी भेजने के पीछे क्या मंशा हो सकती है?' अन्दर ही अन्दर चिंतन चलता रहा।

''लेकिन ट्रेन का रिजर्वेशन, एडवांस वगैरह?''

''टिकट के पैसे आप मुझसे ले लीजिए। हाँ, अगले सोमवार को हर हालत में गुवाहाटी पहुँचना है।''

सुमेध के चेहरे पर प्रश्नवाचक रेखाएँ देखकर निदेशक ने फाइल पकड़ाते हुए कहा—''ये लीजिए फाइल, मंत्रालय के उच्च अधिकारी भी उद्घाटन के लिए पहुँच रहे हैं। उनकी स्पीच भी बना लीजिए, साथ में अपनी भी''...साहब एक पल के लिए चुप हुए, फिर बोले, ''क्या बात है, आप इतने टेन्स क्यों हो रहे हैं?''

''अनुमति हो तो एक बात कहूँ सर...कार्यालय में एक से एक धुरंधर और धाड़क पड़े हुए है। बोलने में माहिर। मैं तो एकदम अनाड़ी हूँ। उन्हें भेज देते तो...।''

''नो-नो, मैंने रिकार्ड चेक किया। आप लिखने-पढ़नेवाले हैं। केवल अनुवाद कार्य में जिन्दगी खपा रहे हैं। जाइए, यात्रा की तैयारी कीजिए। आल द बेस्ट।''

''एनी डाउट?'' साहब ने गहरी नजरों से उसे देखा।

''सर, इस समय गुवाहाटी में स्थानीय लोग दूसरे प्रांतों के लोगों से हिंसा पर उतारू हैं। आइ मीन, आशांति का वातावरण है। जान का खतरा बना हुआ है।''

''सो व्हाट? राजधानी में भी बम फट रहे हैं, आतंकवादी गतिविधियाँ चल रही हैं, तो क्या सरकारी काम बन्द हो गया है?''

''लेकिन यह अपना शहर है। गली-मुहल्ले के सभी रास्ते हम जानते हैं। गुवाहाटी तो...।''

''नो मोर आरग्युमेंट? आप नहीं जाएँगे तो मुझे आप पर अनुशासनात्मक कार्रवाई करनी पड़ेगी। डोन्ट वेस्ट माय टाइम। आप जा सकते हैं।''

जैसे कोई झंझावात आ गया हो। विचारों में उलझा हुआ सुमेध कब सीट पर आकर बैठ गया, पता ही नहीं चला। पड़ोस में बैठे प्यारेलाल ने जब उसे झंझोड़ा ते उसे गुमान हुआ कि वह आफिस में बैठा हुआ है। मेज पर रखी फाइल को पढ़कर प्यारेलाल चौंक गया।

''क्या तू गुवाहाटी जा रहा है?''

सुमेध की खामोशी को देखकर प्यारेलाल को तरस आ गया। गऊ जैसे आदमी को कहाँ फँसा दिया निदेशक ने!

''रिजर्वेशन तो करवा ले...रिजर्वेशन काउंटर में इस समय बड़ी भीड़ होगी। चपरासी को पचास का नोट और पैसे देकर रिजर्वेशन करवा ले। फिर मैं साहब से कहकर तेरा टिकट इमरजेन्सी कोटे से कन्फर्म करवा दूँगा।''

अभिभूत होकर सुमेध ने प्यारेलाल के हाथ पकड़ लिए। ऐसे कठिन समय में सहायता के लिए कोई आगे नहीं बढ़ता। शब्द भी नहीं खरचता, जबकि यह इतनी आत्मीयता से मेरी हिम्मत बढ़ा रहा है।

''पार्टी देनी पड़ेगी? ऐसे सूखे-सूखे काम नहीं चलेगा।'' गंजे चश्मीश पाण्डे ने फरमाइश की।

''हाँ, तुझे माँ कामाख्या का प्रसाद खिलवा दूँगा।'' भरे तनाव में भी सुमेध हँस पड़ा।

''इससे उम्मीद ही क्या की जा सकती है। अबे तू एक बार हाँ बोल दे। पार्टी हम दे देंगे।'' प्यारेलाल ने बात पूरी की।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''पैसे कौन से भागे जा रहे हैं, बाद में दे देना।'' पाण्डे ने ऐसा कहते हुए श्रीमती रश्मि के गदराए बदन पर नजर गड़ा दी। फाइल पर लिखते-लिखते रश्मि का हाथ रुक गया।

''चिंता क्यों करते हैं सुमेध जी। पार्टी का सामान मैं ले आऊँगी।''

सुमेध सहकर्मियों की इस मजाकबाजी का आदी हो चुका था। उसने भी फिकरा कस दिया, ''पहले दूल्हे को घोड़ी पर चढ़ने तो दीजिए।''

पूरा सेक्शन हँसी के सैलाब में डूब गया।

सुमेध स्वयं को हल्का महसूस कर रहा था। कैन्टीन में फोन करके उसने सभी के लिए चाय और समोसे मंगवा लिए। सभी ने आँखें फाड़कर उसे प्रशंसात्मक नजरों से देखा कि वह भी उनके रंग में रंगता जा रहा है, चूँकि बरसों से सभी उसे निर्लिप्त ही देखते रहे थे।

दफ्तर बंद होने के पहले ही गुवाहाटी का स्लीपर क्लास का कन्फर्म टिकट आ चुका था। सुमेध मानो हवा में उड़ता हुआ घर पहुँचा। खुशी और दु:ख छिपाए नहीं छिपते। पत्नी दीपाली ने सुमेध के चेहरे पर इतनी खुशी कभी नहीं देखी थी। चूँकि सुमेध रोजाना पिटा-पिटाया, बुझा-सा चेहरा लेकर घर पहुँचता था। हमेशा यही रोना लेकर बैठ जाता कि दफ्तर में मुझे कोई नहीं पूछता। कोई महत्त्व नहीं देता, जबकि इतना बढ़िया अनुवाद और ड्राफ्टिंग करता हूँ। प्रमोशन तो दूर, अधिकारी सी.आर. में बढ़िया रिमार्क्स तक नहीं देते। यही उल्टा-सीटा सोचकर मुँह लटकाए रहता था।

धीरे-धीरे सुमेध अन्तर्मुखी होता चला गया था। एकदम चुप और निर्विकार हो गया था। हमेशा दूसरों की तुलना में स्वयं को बौना समझता। दीपाली समझा-समझाकर थक गई कि लोगों से खुद आगे बढ़कर मिलने पर मन का सन्नाटा टूटता है, सामाजिकता बढ़ती है, अपनी कमियों का पता चलता है। पर उसकी कौन सुनता? पति अगर उसकी कोई बात मान ले तो हेठी नहीं हो जाएगी उसकी। मुहल्ले में जितने लोग दीपाली को जानते थे, उसकी तुलना में सुमेध को जाननेवाले दस प्रतिशत भी नहीं होंगे।

दीपाली के परिचय का दायरा बढ़ता ही जा रहा था। वह आज पति को यह खुशखबरी देनेवाली थी कि युवा पाटील दंपत्ति से मुलाकात हुई है। कल ही वे खाने पर आमंत्रित हैं। सुनयना पाटील के पति नागरिक उड्डयन विभाग में 'सहायक निदेशक' हैं। पायलटों के लाइसेन्स जारी करने का काम करते हैं। खूब जान-पहचान है उनकी। रेल मंत्री का पी.ए. उनका खास दोस्त है। रात को सोते वक्त दीपाली ने सुमेध को यह सब बताया। सुमेध दूसरी तरफ मुँह फेरकर सो गया। दूसरे दिन तक सुमेध का चिंतन चलता रहा। ...'बड़े-बड़े लोगों से मुलाकात करके क्या फायदा? अपन तो साधारण लोग हैं। जितनी अपनी चादर है उतना ही पैर पसारना चाहिए।' पाटील परिवार के भोजन निमंत्रण के चक्कर में सुमेध को छुट्टी करके घर आना पड़ा, जबकि सुमेध तो बुखार में भी आफिस चला जाता था, घर के काम के लिए छुट्टी नहीं लेता था।

घर आकर सुमेध बरस पड़ा, ''क्या जरूरत थी मुझसे बिना पूछे ऐसे बड़े लोगों को घर पर बुलाने की। मैं तो सबसे नहीं खुल पाता।''

दीपाली को पति पर मन-ही-मन गुस्सा आ रहा था। मगर उसने बहुत संयत स्वर में कहा, ''दरअसल कल ही शिफ्ट किया है हमारे ब्लाक में। घर का सब सामान बँधा पड़ा है। अपने महाराष्ट्र के हैं, इसीलिए खाने पर बुलवा लिया।''

''खाना अच्छा बनाती हो, तारीफ करके उल्लू बना लेते हैं तुम्हें, फिर तुम्हारे हाथ का खाना खाकर बेईमान बन जाते हैं, रास्ते में पहचानते तक नहीं।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तिलमिला गई थी दीपाली। इस बात में कुछ सच्चाई भी थी। किसी तरह उसने सुमेध को मनाया। दीपक और सुनयना पाटिल इस बीच घर पहुँच गए। सुमेध से परिचय हुआ। भोजन का कार्यक्रम संपन्न हुआ। मराठियों के रिवाज के मुताबिक दीपाली ने सुनयना को कुंकुम का टीका लगाकर, नया ब्लाउज पीस तथा दीपक को रूमाल भेंट किया। भोजन के बीच सुमेध के गुवाहाटी जाने की चर्चा भी हुई। दीपाली ने कहा कि सुमेध इस सड़ी गर्मी में स्लीपर क्लास से सफर कर रहे हैं। सुनयना पाटील ने पति की वी.आई.पी. लोगों से जान-पहचान का रौब दिखाकर ए.सी. सेकेण्ड क्लास का टिकट लेने की सलाह दी। उसी दिन दीपाली ने घरेलू बचत के पैसे देकर ए.सी. सेकेण्ड क्लास का टिकट खरीदवाया। पर वेटिंग लिस्ट में दसवाँ नम्बर था। इमरजेन्सी कोटा यात्रा के दिन रिलीज होने की बात दीपक ने बड़े आत्मविश्वास से कही थी। इसी चक्कर में स्लीपर क्लास का रिजर्व टिकट भी कैंसिल करवा लिया गया। पत्नी की जिद, फिर पाटील दंपत्ति का आग्रह देखकर सुमेध ने मन मारकर यह काम किया था। दीपाली बार-बार समझाती रही कि जब सरकार सेकेण्ड ए.सी. का टिकट देती है तो आप स्लीपर क्लास में क्यों धक्के खाते हो?

आखिरकार यात्रा का दिन सिर पर आ गया। पड़ोस के पाठक जी ने सुमेध को सलाह दी। ''रेलवे पूछताछ से कन्फर्म कर लें। टिकट रिजर्व हुआ या नहीं?'' दीपाली ने बीच में बात काटते हुए प्रतिवाद किया, ''सुमेध को वी.आई.पी. कोटे से आरक्षण मिल रहा है।'' सुमेध ने दीपक पाटील को तुरन्त फोन लगाया। दीपक ने आश्वस्त किया कि रेल मंत्रालय में एक खास आदमी को इस काम के लिए लगा दिया गया है। सुमेध तैयार होकर नई दिल्ली जाने के लिए आटो पर सवार हुआ। सबसे विदा ली, परन्तु मन में धुकधुकी-सी मची रही। टिकट कन्फर्म नहीं होने पर राजधानी वाले ट्रेन से नीचे उतार देते हैं। नई दिल्ली स्टेशन पहुँच कर उसने कई बार ध्यान से आरक्षण का चार्ट देखा। सुमेध का कहीं नाम नहीं था। राजधानी के टू टायर कम्पार्टमेण्ट की लिस्ट भी चेक कर ली। फिर भी एक अजीब-सी आस लिए वह ए.सी. डिब्बे में चढ़ा और टिकट चेकर की डाँट खाकर नीचे उतर आया।

''क्यों अकड़ दिखा रहा है। दिल्ली में रहनेवाला हर आदमी वी.आई.पी. की धौंस दिखाता है। ऐसे काम सिर पर खड़े होकर सामने करवाने पड़ते हैं।'' टिकट चेकर ने मानो जीवन का ब्रह्म वाक्य उगल दिया हो। सुमेध को गहरी चिंता से चक्कर-सा आ गया था। यह सब अप्रत्याशित था उसके लिए। दीपक पाटील को आखिर ऐसा करने की क्या जरूरत थी, जबकि मुझ जैसा फटीचर आदमी तो खुद को छोड़कर दुनिया के हर आदमी को प्रभावशाली मानता है? गुस्से में आकर उसने दीपक के घर फोन मिलाने की कोशिश की, परन्तु दीपक फोन भी नहीं उठा रहा था। शायद जानबूझकर ऐसा कर रहा हो। हारकर सुमेध ने घर पर फोन मिलाया। दूसरी तरफ दीपाली ने झट से फोन उठाया।

''मैं कब से तुम्हारे फोन की प्रतीक्षा कर रही थी...मन में कैसे उलटे-सीधे खयाल आ रहे थे। लाख बार समझाया कि एक मोबाइल खरीद लो, पर मेरी बात नहीं मानोगे? आखिर घर की मुर्गी दाल बराबर हूँ ना। अरे कुछ बोलोगे भी नहीं? हे राम! पता नहीं क्या सुनने को मिलेगा?''

''चुप कर पगली, तब से बक-बक किए जा रही है। पब्लिक टेलीफोन बूथ पर खड़ा हूँ। पीछे दर्जनों आदमी खड़े हैं। हाँ सुन, रिजर्वेशन नहीं मिला। गाड़ी चली गई। परेशान होकर स्टेशन पर भटक रहा हूँ। दिमाग काम नहीं कर रहा है। कोई-न-कोई जुगाड़ लगाना पड़ेगा। वर्ना नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा।''

''क्या कह रहे हो?'', दीपाली फोन पर सिसकने लगती है, ''मेरी मति मारी गई थी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

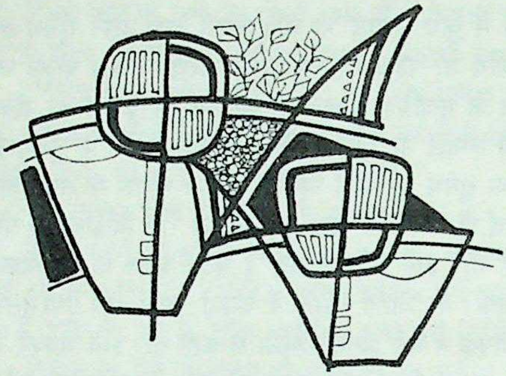

अच्छा-भला कन्फर्म टिकट कैन्सिल करवाया। तुम बेकार ही मुसीबत में फँस गए। मैं अभी जाकर पाटील का जुलूस निकालती हूँ, भूल जाएगा अपनी हेकड़ी। औकात से ज्यादा बातें फेंकनेवाली उसकी औरत का मुँह काला करके मुहल्ले में घुमाऊँगी।''

तब खीजकर सुमेध ने फोन काट दिया। कोई भी मुसीबत बताकर थोड़े ही आती है कभी। कुछ-न-कुछ जुगाड़ तो करना ही पड़ेगा। अनारक्षित डिब्बे में हजारों लोग किस तरह सफर करते होंगे? मजबूरी पता नहीं क्या-क्या करवाती है। सुमेध सामने खड़ी ट्रेन के अनारक्षित डिब्बे में जबरन ठूँसे गए लोगों को देख रहा था। वहाँ तिल भर जगह भी नहीं थी। यह सब देखकर सुमेध की जान सूख गई। दीपक पाटील का गला दबा देने की इच्छा हो रही थी।... दिमाग ने काम करना बन्द कर दिया था। निदेशक के चेतावनी भरे शब्द कानों में बज रहे थे। कब गुवाहाटी पहुँचेगा? सेमिनार भी कंडक्ट करना है। मंच पर मंत्रालय के उच्चाधिकारी भी होंगे। बोलने के लिए कुछ पूर्वाभ्यास भी करना पड़ेगा। सुमेध ने उद्विग्नता से भरकर प्लेटफार्म के कई चक्कर काट लिए। कई कुली गाड़ियों के टिकट खुलेआम बेच रहे थे। दलाल कानों के पास आकर आवाज लगा रहे थे। पुलिस वाले डंडे लेकर घूम रहे थे और उनके सामने ही रेलवे टिकटों की कालाबाजारी हो रही थी। स्टेशन पर बड़े-बड़े अक्षरों में तख्तियों पर लिखा था—'कृपया दलालों से सावधान रहें। उनसे टिकट खरीदना कानूनन अपराध है।' कानून और नियमों की सरेआम धज्जियाँ उड़ते देखकर उसे क्षोभ हो रहा था। अचानक सुमेध को याद आया कि राजधानी एक्सप्रेस का टिकट भी लौटाना है। वह भागता हुआ काउंटर के पास पहुँचा, टिकट रद्द कराने का फार्म भरा और अपनी बारी की प्रतीक्षा करने लगा। लाइन में ऊँघती आँखोंवाले, बेचैन चेहरोंवाले मुसाफिर खड़े थे। सबके अन्दर एक-एक कहानी जन्म ले रही थी। दलाल यहाँ भी आकर बोली लगा रहे थे। यानी पैसा फेंको तमाशा देखो। महँगे चमड़े की जैकेट पहने स्मार्ट-सा युवक सुमेध के पास आ पहुँचा। टिकट पर आँखें गड़ाकर बोला, ''रिजर्वेशन नहीं मिला...कैंसिल करवा रहे हो? पक्का रिजर्वेशन दिलवा देता हूँ। लाओ ये काम भी करवा देता हूँ। क्यों फिजूल में टाँगें तुड़वा रहे हो।''

सुमेध के ना-हाँ करने से पहले ही टिकट और फार्म लेकर वह टिकट काउंटर के पिछले दरवाजे से अन्दर चला गया। लगभग आधे घण्टे बाद वह लौट आया। सुमेध को जैसे होश आया हो। ''भाई साहब, मेरे पैसे दे दो।''

''पैसे मेरे पास सुरक्षित हैं और मैं कोई थोड़े भागा जा रहा हूँ। यह तो हमारा रोज का काम है, अपनी रोजी-रोटी है...हाँ, आपको आराम करना हो तो ए.सी. के रिटायरिंग रूम में बिठा देता हूँ। बंदा अपने पहचान का है।''

''नहीं, मैं वहाँ नहीं बैठना चाहता हूँ, दम घुटता है। मेरे आधे पैसे दे दो। खाना-पीना भी है।''

''कमाल है! घर से भूखे-नंगे आए हो क्या?

सुमेध को लगा कौन इनके मुँह लगे? वह बोला, ''हाँ, भई, ऐसे ही समझ लो।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

दलाल हाथ पकड़कर रेलवे स्टेशन से बाहर बने चबूतरे पर उसे ले गया।

''ये वह जगह है, जहाँ आप जैसे कई बंदे बैठे हैं, चिन्ता की कोई गल नहीं? आपको थोड़ी देर में आकर पैसे दे जाऊँगा सर।'' वह मुस्कराया, ''मेरा नाम विकी मल्होत्रा है। पुलिस, टी.टी., कुली, चायवाले और एक्सेट्रा। इस एरिया में सभी मुझे जानते हैं।'' तेज चाल से अंधड़ की तरह वह चला गया।

सुमेध ने बैठे-बैठे हिसाब लगाया, कैन्सिलेशन चार्ज काटकर उसे 2750 रुपये मिलने थे। शायद पड़ोस में बैठा यात्री इस बात को ताड़ गया था।

''क्या आपने दलाल को पूरे पैसे दे दिये। अब वह पैसे वापस नहीं आएँगे। हेड टी.टी., टिकट काउंटर वाले फिर कुली को कमीशन पहुँचाकर बाकी रकम दारू और मटन-चिकन में उड़ा देंगे। स्साले, इतना कमाते हैं फिर भी इनके पास कुछ नहीं बचता। हराम की रकम, हराम में डूब जाती है।''

सुमेध को सहयात्री के जीवन-दर्शन में कोई रुचि नहीं थी। न उसे बात करने की इच्छा हो रही थी, न सुनने की। बस्स, किसी तरह पैसे वापस मिल जाएँ। कहाँ ढूँढेगा विकी मल्होत्रा को? भूख लग आयी थी, परन्तु खाने की इच्छा नहीं हो रही थी। प्यास भी लग रही थी। हैंडबैग में दोनों चीजें पड़ी हुई थीं। दीपाली कितने चाव से खाना बनाती है। खाना भी स्वादिष्ट होता है। पड़ोस का सहयात्री अपना समय काटने के लिए लगातार बोले जा रहा था। सुमेध सिर्फ हूँ-हाँ करके टालता जा रहा था। दुखड़ा रोकर क्या फायदा? कुछ बदलेगा तो नहीं। उसकी बकवास सुनने से बचने के लिए आखिरकार उसने टिफिन खोल लिया और खाना शुरू कर दिया। पड़ोसी यात्री ने दूसरी तरफ मुँह फेर लिया।

आधी रात के वक्त भी एक भिखारी सामने आकर खड़ा हो गया, एक कुत्ता भी लार टपकाने लगा था। सुमेध ने पूरा खाना दोनों के बीच बाँट दिया और पानी पीकर कुछ देर के लिए आँखें मूँद ली। पहाड़गंज के मेन रोड पर गुजरते हुए वाहनों के कोलाहल का स्वर, अन्दर के कोलाहल से कम लग रहा था।

कुछ ही देर बाद विकी मल्होत्रा अपने दो साथियों के साथ शराब के नशे में झूमता हुआ सुमेध के सामने आ पहुँचा।

''ये लो बैलेन्स पाँच सौ रुपये। गुवाहाटी जाने वाली रिजर्व सीट दिलवा दूँगा। यह विकी का वादा है।''

''लेकिन मैंने टिकट कैंसिल करवाने के लिए कहा था।''

''आप किसी-न-किसी दल्ले को पकड़ते न। कोई साला इससे कम पैसे

जहीर कुरैशी

सपना बदल दिया

था नापसंद, इसलिए चेहरा बदल दिया
दूरी के डर से, लोगों ने रस्ता बदल दिया।

बंधन में बादशाह के मैना तो थी वही
चाँदी के बाद, सोने का पिंजरा बदल दिया।

मैं चुन लिया गया था सिफारिश बगैर ही
लेकिन, किसी ने आकर नतीजा बदलदिया।

निन्दा-पुराण खोल के बैठा हुआ था वो,
निन्दक ने मुझको देख कर किस्सा बदल दिया।

ऐसा भी स्वप्न देखने वाला मिला मुझे
साकार हो न पाया तो सपना बदल दिया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं लेता। ऊपरवाले साहबों का पेट भी बहुत बड़ा है।''

बड़ी देर से सुमेध के दिमाग में एक चीज कुलबुला रही थी कि इतना पढ़ा-लिखा एवं संभ्रात दिखनेवाला युवक कैसे इस धँधे में फँस गया है। उसका निष्पाप चेहरा देखकर जरूर लग रहा था कि जीवन की कोई विवशता उसे इस गलत पेशे में ले आयी है। विकी भी बड़ी देर से सुमेध को देख रहा था। आखिर वही बोल पड़ा।

''ओ साहब, आपको मुझ पर यकीन नहीं हो रहा है। यू कान्ट विलीव। आई एम बी.ई. फ्राम नागपुर यूनिवर्सिटी। मेरा बाप डी.डी.ए. में चीफ एग्जीक्यूटिव इंजीनियर था। इसके बावजूद मुझे अपने डिपार्टमेंट में नहीं लगा सका। न जिन्दगी में पैसे खाए न किसी को खाने दिए। डिप्रेशन में आकर मर गया। माँ तो पहले ही छोड़कर चली गई थी। मैं यहाँ आकर फँस गया साहब।''

इधर सुमेध का चिंतन शुरू हो गया। जीवन में कितनी क्रूर विसंगतियाँ हैं। अगर इसकी पूरी कहानी सच नहीं तो आधी हो सकती है। इसका भी दोष हो सकता है। यह फ्रस्टेशन में दूसरों को लूटता है। कोई दया दिखाकर भी क्या कर सकता है। नौकरी तो नहीं दे सकता। अगर इसका बाप भ्रष्ट होता तो अपने लड़के को भी अपने प्रभाव से चिपका देता। सुमेध को चुप देखकर वह फिर बड़बड़ाने लगा।

''मुझ पर विश्वास नहीं हो रहा है। हम लोग गलत काम जरूर करते हैं परन्तु धँधे में बेईमानी नहीं करते हैं। यहाँ तो लोग पैसे लेकर भी काम नहीं करते। ये देखो, मेरे चेले लालू और कालू आपको रात डेढ़ बजे गुवाहाटी वाली ट्रेन पर चढ़ा जाएँगे...चिन्ता दी कोई गल नहीं।''

सुमेध अपने सब हथियार डाल चुका था। उसके कहने का कोई अर्थ नहीं था। यहाँ पुलिस, कानून के समानांतर एक और व्यवस्था मौजूद थी जहाँ विकी मल्होत्रा जैसे गुंडों का राज था। जैसा वह चाहेगा वैसा ही होगा। सोचते-सोचते सुमेध को हँसी आ गई। वे तीनों सुमेध को अनिश्चितता के जंगल में भटकता छोड़कर चले गए।

लगभग आधे घण्टे पश्चात विकी के दो चेले लालू और कालू आ गए। एक ने सुमेध का सामान उठा लिया और दोनों तेजी से चलने लगे। प्लेटफार्म पर इतनी भीड़ हो गई कि चलते वक्त धक्का-मुक्की करनी पड़ी। कालू बता रहा था कि बिहार की ओर जानेवाली ट्रेन में हमेशा इतनी भीड़ होती है। ट्रेन में सामान का कोई भरोसा नहीं होता।...साहब, बक्सा सिर के नीचे रखकर सोना।... सेकेण्ड स्लीपर की सीट नंबर 36 पर उसने सुमेध का बैग रख दिया। वहाँ कोई पसरा हुआ था। कालू ने कर्कश आवाज में चीखते हुए छुरा चमका दिया। लालू ने उसका सामान उठाकर फर्श पर पटक दिया। वह नि:शब्द था—''बैठो साहब।''

''ये आपकी सीट है। आराम से सो जाइए।''

''लेकिन मेरा टिकट....?''

कालू ने टिकट निकालते हुए कहा, ''पचास रुपये निकालना साहब।''

''मैंने तो काफी रुपये दे दिये थे।''

''वो तो उनको दे दिये। कहीं घुस गए होंगे। ये तो हमारा टैक्स समझो। जल्दी करो...ट्रेन छूटने का समय हो रहा है।

सुमेध की बची-खुची सोचने की शक्ति भी समाप्त हो चुकी थी। कहीं वह माँ-बहन तक न पहुँच जाए, इसके पहले सुमेध ने 50 रुपये कालू को टिका दिए। सर दर्द कर रहा था। सूटकेश को सिर के नीचे दबाकर सुमेध सो गया। ट्रेन छूटने से पूर्व वह खर्राटे भरने लग गया।

सुबह का वक्त होगा। टिकट चेकर ने गहरी नींद से जगाया, ''टिकट दिखाइए जनाब?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अधखुली नींद में अनमने भाव से जेब में हाथ डालकर उसने टिकट निकाला और दिखा दिया। टिकट चेकर ने पूछा, ''कहाँ जा रहे हैं?''

''गुवाहाटी....''

''लेकिन यह टिकट तो सिर्फ बरौनी तक का है।''

''क्या?''

गोया उसे किसी गहरी खाई में दोबारा ढकेल दिया गया हो। उसने ध्यान से टिकट देखा, उसमें बरौनी ही लिखा हुआ था। अर्थात् इतने धक्के खाने के बावजूद वह फिर ठगा गया। अकल कहाँ घास चरने गई थी? क्या हो गया है उसे? कब बनेगा स्मार्ट आखिर...महानगर में रहता है। दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गई...वह पीछे की दिशा में जा रहा है।

''जुर्माने के डेढ़ सौ रुपये निकालिए झटपट। ये लीजिए रसीद।''

सुमेध का चेहरा फक्क पड़ गया और माथे पर पसीना छलक आया।

''आपने जब टिकट खरीदा तब देखा नहीं था क्या?''

''जी?''

''दलाल से टिकट लिया था क्या?''

''जी, नहीं।''

''आप जैसे पढ़े-लिखे लोग भी पता नहीं कैसे गलत लोगों के चक्करों में फँस जाते हैं। लाइए जल्दी कीजिए, स्क्वाड चेकिंग वाले पीछे आ रहे हैं? ''

'पकड़े जाने पर स्कवाड चेंकिग वाले उसकी कहानी पर थोड़े ही विश्वास करेंगे।' सुमेध ने जुर्माने की रकम अदा कर दी। ट्रेन अपनी तेज गति से दौड़ रही थी। समय भी खिसकता जा रहा था। सुमेध ने बस्ते में से सेमीनार की फाइल निकाल ली और उसमें डूबने की कोशिश करने लगा। उसे लगा कि अब तक इस यात्रा में आत्मसंघर्ष करते-करते उसमें चेतना जग गई है। ब्रह्मपुत्र की धाराओं का अट्टाहस सुनाई दे रहा है... माँ कामाख्या के मंदिर के घण्टे गूँजने लगे हैं...।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शीला इन्द्र

दामले

दामले सर को आप नहीं जानते। जानेंगे भी कैसे? न वे कोई सिद्ध पुरुष थे, न कोई प्रसिद्ध व्यक्ति। वे तो थे एक साधारण-से शिक्षक। समस्त मानवीय गुण-दोषों से युक्त, पाँचवीं से लेकर ग्यारहवीं कक्षा तक को हिन्दी पढ़ाते थे। अब यह प्रिंसिपल की इच्छा पर निर्भर था कि किसको कौन-सी कक्षा दी जाये। हाँ! उन दिनों महाराष्ट्र में दसवीं नहीं, ग्यारहवीं की एस.एस.सी. अर्थात् हाईस्कूल की बोर्ड की परीक्षा होती थी।

यह बात सन् '72 की है। वर्षों पहले की। उसी वर्ष फरवरी में अपनी शादी के पश्चात् मैं मुम्बई आ गयी थी। मेरे घर से पाँच मिनट के रास्ते पर वह स्कूल था, सरस्वती विद्यालय। जून में पता चला कि वहाँ एक हिन्दी शिक्षक की आवश्यकता है। दूसरे दिन मैं प्रिंसिपल से जाकर मिली और तत्काल ही मेरी नियुक्ति हो गयी। पता चला कि मुझसे पहले कोई कृष्ण कान्त तिवारी हिन्दी पढ़ा रहे थे। दो वर्ष इस विद्यालय में काम करने के बाद उन्होंने स्कूल से थोड़ी दूर पर एक छोटा-सा कमरा किराये पर ले लिया था। अत्यन्त आनन्द एवं उत्साह में भरे वे छुट्टियों में बिहार के अपने छोटे-से गाँव गये थे कि स्कूल खुलने पर वे अपनी पत्नी तथा दो वर्ष के बेटे को लेकर ही आयेंगे। किन्तु वहाँ जमीन के झगड़े में वे अपने बड़े भाई के साथ ही मार दिये गये। परिवार के दो विशाल स्तम्भ देखते-देखते ढह गए।

और उस स्थान पर मेरी नियुक्ति हुई।

अपने पहले दिन की पहली ही कक्षा का वह भयावह अनुभव मैं कभी भी नहीं भूल सकती। सम्भवतः उसी अनुभव ने मुझे वह सब नहीं करने दिया जो मैं करना चाहती थी।

एक छोटी-सी घटना कैसे भविष्य के बीसियों वर्षों का इतिहास रच डालती है...कैसे जीवन की पहेली एक छोटी-सी गुत्थी में उलझ कर रह जाती है!

उस पहले दिन का पहला पीरियड।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेरा मन कर रहा था कि मैं बुक्का फाड़ कर रो पड़ूँ। मैं बौखलाई-सी खड़ी थी। और ग्यारहवीं कक्षा के बत्तीस लड़के डेस्कों पर हाथ पटक रहे थे, जमीन पर अपने जूते रगड़ रहे थे और चिल्ला रहे थे, ''वी वान्ट दामले सर...हम सिर्फ दामले सर से ही पढ़ेंगे।''

मैंने उन्हें चुप कराने की चेष्टा की तो एक उदण्ड-सा लड़का खड़ा होकर बोला, ''अरे! आप हमें क्या पढ़ायेंगी...आप तो खुद बच्ची हैं।''

सारे लड़के ठहाका मार कर हँस पड़े। कक्षा में बीस-बाईस लड़कियाँ भी थीं, वे भी बड़ी बेशर्मी से हँस रही थीं। उस कक्षा में कुछ बहुत अच्छे छात्र-छात्राएँ भी होंगे, जो अपने साथियों के इस व्यवहार पर बेहद लज्जित होंगे और सिर झुकाये बैठे होंगे। किन्तु मैं उन्हें कैसे खोजती और वे कर भी क्या सकते थे!

बस एक बात याद आ रही थी बार-बार...बी.एड. में पढ़ा था कि एक शिक्षक की गेंडे की खाल होनी चाहिए। सम्मान के फूल एवं अपमान के तीरों का प्रभाव एक शिक्षक की खाल पर नहीं होना चाहिए। कुछ भी करूँ किन्तु इस मानव शरीर पर गेंडे की खाल कैसे फिट करूँ? एक-दो तीर हों तो झेल भी लूँ। किन्तु यहाँ तो पूरे बत्तीस तीर एक साथ झेलने पड़ रहे थे।

और मैं दम साधे इन ठहाकों की मार झेल रही थी। मुझे लग रहा था कि मेरा चेहरा इतना विकृत होता जा रहा है कि इसे देखना कोई भी बरदाश्त नहीं करेगा। इस बीच कई अन्जान चेहरे मेरी कक्षा में झाँक कर विलीन हो गये।

वे चालीस मिनट चालीस युग जैसे बीते।

घण्टी बजते ही मैं प्रिंसिपल के कमरे की ओर भागी। किसी प्रकार अपने आँसुओं पर नियंत्रण रख उन्हें सारी स्थिति बता दी। सब सुनकर उनकी भृकुटि तन गयी। मुझे लगा मुझसे नाराज हैं। किन्तु दूसरे क्षण ही मुस्करा कर बोलीं, ''रिलैक्स अंजलि। परेशान न हो। सब ठीक हो जायेगा। तुम दूसरी क्लास में जाओ। बच्चे शोर मचाएँ तो कस कर डाँट लगा दो। चुप हो जाएँगे।''

दूसरे दिन मेरे पहुँचते ही ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों ने मुझे घेर लिया, ''वी आर वेरी सॉरी टीचर! हमने आपको कल बहुत सताया...अब नहीं सतायेंगे। अब आप ही पढ़ाइयेगा हम लोगों को।''

एक दिन पहले कक्षा में जो चेहरे मुझे राक्षसों जैसे भयंकर लग रहे थे आज खिले फूलों की भाँति मासूम लग रहे थे।

फिर सब सुचारु रूप से चलने लगा। दो महीने बीत चुके थे। उस दिन पन्द्रह अगस्त थी। स्वाधीनता दिवस का कार्यक्रम होने के पश्चात् शिक्षकों तथा स्कूल के प्रबन्धकों की बैठक होनी थी।

उस दिन स्वतंत्रता का सच्चा अर्थ समझ आया। सबके संक्षिप्त परिचय के पश्चात् न जाने कितने शिक्षक एवं शिक्षिकाएँ प्रबंधन तथा प्रिंसिपल के ऊपर टूट पड़े। असुविधाओं का ब्यौरा और सुविधाओं की माँग। एक लम्बी सूची प्रस्तुत की गयी।

और तभी दामले सर उठ खड़े हुए। बोले, ''मुझे आदरणीया प्रिंसिपल साहिबा से शिकायत है।''

सब उनकी बात सुनने लगे। मैं भी सुन रही थी। मुझे इस नोक-झोंक में बड़ा आनन्द आ रहा था। पहली बार ऐसा तमाशा देखा था। बैठे-बैंठे इन सबको लेकर एक फड़कती हुई हास्य कविता भी लिख डाली थी। अचानक दामले सर के मुख से अपना नाम सुन कर मैं चौंकी। वे कह रहे थे, ''ग्यारहवीं कक्षा के छात्र अंजलि से पढ़ना नहीं चाहते थे। और पहले ही दिन बच्चों ने डेस्क

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पीट-पीट कर उनको जताया कि वे लोग केवल मुझसे ही पढ़ना चाहते हैं,'' उन्होंने एक नजर मेरे ऊपर डाली और बोले, ''यदि मेरा विश्वास न हो तो आप लोग अंजलि भार्गव से ही पूछ सकते हैं।''

कई दृष्टियाँ मेरी ओर उठीं, मैं सन्न। यह क्या हो रहा है? उन दिन कक्षा में जितना अपमानित अनुभव किया था, उससे कई गुना अधिक इस समय बैठक में कर रही थी।

किन्तु किसी ने भी मुझसे कुछ नहीं पूछा। सभी दामले सर की ओर उत्सुकता से देख रहे थे। वे आवेश में हाँफ रहे थे। मेरा अब साहस नहीं था कि ऊपर नजर भी उठाऊँ।

वे आगे बोले, ''क्या आप लोग कल्पना कर सकते हैं कि हमारी प्रिंसिपल महोदया ने क्या किया?...उन्होंने ग्यारहवीं कक्षा में जाकर शोर मचाने वाले बच्चों से कहा...कहा कि अंजलि फर्स्ट क्लास एम.ए., बी.एड. हैं। हिन्दी उनकी मातृभाषा है। और वे कविताएँ, कहानियाँ व लेख लिखती हैं। वे तुम लोगों के लिए अधिक अच्छी टीचर सिद्ध होंगी।''

दामले सर दो क्षण रुक कर एकदम आक्रामक हो उठे, ''ये...ये मेरा अपमान है। क्या मेरी हिन्दी अच्छी नहीं है? फर्स्ट क्लास एम.ए.,बी.एड. होना या कविता-कहानी लिखना एक अच्छी शिक्षिका होने की गारंटी नहीं है। मेरा पढ़ाया हुआ एक भी बच्चा आज तक बोर्ड परीक्षा में फेल नहीं हुआ। यह मेरा रिकार्ड है।''

दामले सर की बात पूरी होते-न-होते प्रिंसिपल साहिबा एकदम चिल्ला उठीं, ''हाऊ डू यू नो ऑल दिस? ...मैंने जब बच्चों से बात की तो क्लासरूम बन्द था। इसका मतलब है कि आपने बच्चों को सिखाया कि वे अंजलि की क्लास में शोर मचाएँ। नहीं तो जो टीचर पहली बार क्लास में घुसी थी, जिसने एक शब्द भी नहीं पढ़ाया, बच्चे उसके खिलाफ क्यों चिल्लाते? और मैंने उनसे क्या बात की यह भी आपने उनसे पूछा। यह पालिटिक्स क्यों खेल रहे हैं आप? क्या बिगाड़ा है अंजलि ने आपका?''

मेरी जान में जान आयी। उस समय तो ऐसा लग रहा था कि धरती फट जाये और मैं उसमें समा जाऊँ। और उतनी देर बराबर रटती रही...शिक्षक की गेंडे की खाली होनी चाहिए...शिक्षक की गेंडे की खाल होनी चाहिए...उसे पक्का बेशर्म होना चाहिए।

उस समय मैडम ने एक माँ की भाँति मेरी रक्षा की थी। जैसे कोई पक्षी अपने नन्हे बच्चों को अपने डैनों के नीचे छिपा ले किसी शिकारी से बचाने को।

किन्तु दामले सर ने अनायास ही मुझे प्रसिद्ध कर दिया। अंजलि फर्स्ट क्लास एम.ए.,बी.एड. है। अंजलि कहानी-कविता लिखती है। उसकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यद्यपि यह सच नहीं था। मेरी कोई पुस्तक सपने में भी प्रकाशित नहीं हुई थी। छिटपुट कहानी-कविताएँ अवश्य छपी थीं।

अब दामले सर के बारे में बता दूँ। बूटा-सा कद, लगभग पाँच फीट एक इंच चौड़ा चकला चेहरा तथा शरीर गठा हुआ। गौर वर्ण, सिर के बाल अधिकतर छितरे हुए। और बालों पर ढेरों सफेद थक्के। आयु लगभग चालीस वर्ष।

एक जोड़ा सफेद टैरीकॉट का पजाता-कुर्ता, जो सोमवार को झकाझक रहता और शनिवार आते-आते काफी गंदला हो जाता। पैरों में बरसाती सैंडल, जो स्कूल के अन्दर आते ही किसी अलमारी के नीचे दुबक जाते। सारे दिन दामले सर नंगे पैर ही घूमते थे।

और यही एक बात थी कि हमारी प्रिंसिपल मैडम उनसे बहुत चिढ़ती थीं। एक शिक्षक में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुछ तो डीसेंसी होनी चाहिए। ऐसे गन्दे कपड़ों में नंगे पैर घूमते रहते हैं!

वे कभी स्टाफरूम में नहीं बैठते थे। जब भी खाली होते, लायब्रेरी के कोने में पड़ी एक मेज पर रखी कापियाँ जाँचते रहते। कभी निबंध की, कभी परीक्षा की।

सब कहते थे कि हाईस्कूल का कोर्स वे अगस्त तक समाप्त कर देते थे। उसके पश्चात् वे बच्चों से केवल बोर्ड के प्रश्नपत्र हल करवाया करते थे और उन्हें जाँचते रहते थे। ग्यारहवीं का व्याकरण वे बच्चों को छठी-सातवीं से पढ़ाना शुरू कर देते थे। पाँच वर्षों में हर बच्चे को व्याकरण तो रट ही जाता था।

एक दिन मैंने पूछ ही लिया, ''सर, आप सिलेबस के अनुसार व्याकरण क्यों नहीं पढ़ाते?''

हँस दिये थे। बोले, ''आप फर्स्ट क्लास एम.ए. हैं, आपको हिन्दी का कितना व्याकरण याद है?''

मैंने मस्तिष्क पर जोर डाला, विभिन्न कक्षाओं में पढ़ाने वाले व्याकरण के अतिरिक्त कुछ भी याद नहीं आया।

वे बोले, ''कोई भी भाषा सही बोलने, पढ़ने-लिखने के अभ्यास से आती है। आप बोलते समय हर बार वाक्य में शब्दों का सही स्थान नहीं खोजती हैं। कितने ही अशिक्षित भाषा सही बोल लेते हैं किन्तु व्याकरण नहीं जानते हैं।''

किन्तु मुझसे यह सब नहीं हो सका। और मेरे पढ़ाये हुए बच्चों में पहले ही वर्ष हाईस्कूल में आठ बच्चे फेल हो गये। जिनमें दो केवल हिन्दी में ही फेल हुए।

मेरी हालत खराब। लगा, अब बड़े बेआबरू होकर इस कूचे से निकलना होगा। पन्द्रह अगस्त को हॉल में जाने के नाम से जान निकल रही थी। फिर अपना दीक्षामंत्र रटती हुई हॉल में प्रविष्ट हो गयी। सोचा, अधिक से अधिक स्कूल से निकाल ही तो देंगे, कौन फाँसी पर चढ़ा देंगे। यहाँ कौन रोटियों के लाले पड़े हैं। जब चाहूँगी नौकरी को ठोकर मारकर चली जाऊँगी।

किन्तु किसी ने एक शब्द भी नहीं कहा। यहाँ तक कि दामले सर ने भी इस विषय को नहीं उठाया। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। क्या यह भी कोई पॉलिटिक्स है? है तो कितनी अजीब कि कहने वालों ने कुछ भी न कहा, किन्तु सुनने वाले ने सब कुछ सुन लिया। अपमानित होने से तो बची, पर हृदय पर बेचैनी का बोझ कम न हुआ।

अक्टूबर के आरम्भ में बम्बई के स्कूलों में अर्धवार्षिक परीक्षाएँ होती हैं। हमेशा ही हमारे विद्यालय के पर्चे बाहर से छपवाये जाते थे। इस बार भी वहीं भेजे गये। किन्तु उस प्रेस के मालिक की अचानक मृत्यु हो गयी और कई पर्चे बिन छपे वापिस आ गये। तत्काल ही स्कूल में एक सायक्लोस्टायल मशीन खरीदी गयी। मेरा एक पर्चा भी वापिस आ गया था। अन्य शिक्षकों को स्टैंसिल लिखते देख मैंने भी पूरे तीन स्टैंसिल तैयार करके दे दिये।

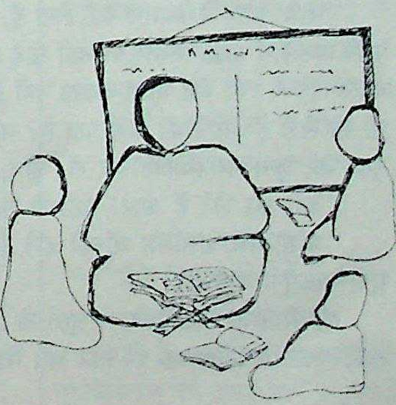

मुसीबत हुई हिन्दी के पर्चे के दिन, जब चारों ओर भागमभाग मच गयी ''अंजलि भार्गव कहाँ हैं? पर्चे में कुछ भी ठीक से पढ़ने में नहीं आ रहा है।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सात कमरों में मेरी कक्षा के बच्चे बैठे थे। क्या करूँ, क्या न करूँ? मेरे तो हाथ-पैर फूल गये। एक-दो हिन्दी जानने वाली शिक्षिकाओं से विनती की तो वे टाल गयीं। ''भई अंजलि, यह तुम्हारा पर्चा है। तुम ही ठीक से समझा सकती हो।''

बात दामले सर के कानों में पहुँची। वे एक दिन पहले मिली उत्तर पुस्तिकाएँ जाँच रहे थे। उन्होंने तत्काल आकर मुझसे पर्चा लिया और प्रश्न बच्चों को डिक्टेट कराने लगे। ऐसे ही मैं दो-दो प्रश्न बच्चों को लिखाती हुई एक कक्षा से दूसरी में भाग रही थी कि देखा, दामले सर एक कक्षा में मेज पर खड़े हो कर प्रश्न पत्र का अपठित गद्यांश बोर्ड पर लिख रहे हैं। चुने हुए मोती-से अक्षर! मैं तो जैसे जड़-सी हो गयी।

इतनी दया-ममता है दामले सर के मन में? दूसरों की सहायता करने को इतने तत्पर रहते हैं? नेत्र ही नहीं, हृदय भी भर आया मेरा। उनका यह उपकार मैं जीवन भर न भुला सकूँगी। किन्तु मैंने क्या दिया उनको?

दो वर्ष हो गये थे मुझे विद्यालय में। और उस समय के नियमों के अनुसार मेरी नौकरी स्थायी होने का पत्र दे दिया गया था।

एक दिन वे आये। बोले, ''अंजलि जी। पढ़ने का शौक है क्या?''

''है क्यों नहीं, किन्तु यहाँ तो तोता-मैना से ऊपर की पुस्तकें हैं ही नहीं।''

''ठीक है, मैं लाकर दूँगा, बहुत-सी किताबें हैं। अमृत लाल नागर की 'सबहीं नचावै रामगुसाईं', 'बच्चन जी की आत्मकथा' लाकर दूँ?''

मैं उछल पड़ी, ''आप कहाँ से लाकर देंगे?'' मैंने पूछा तो किसी शिक्षक ने बताया कि दामले तो कई जगह पढ़ाते हैं। प्रात: सुबह साढ़े पाँच बजे घर से निकलकर रात के ग्यारह बजे घर में घुसते हैं।''

''सच, क्या सर...आप इतनी देर घर से बाहर रहते हैं? कोई कुछ कहता नहीं? एक-दो दिन की बात...।''

मेरी बात काट कर वे मुस्करा कर बोले, ''कौन कहेगा? उन्हीं लोगों के लिए रोटी की जुगाड़ में निकलता हूँ।''

मैं परेशान हो गयी। मैंने अपने परिवार, मायके तथा ससुराल, दोनों में ही किसी भी पुरुष को इतना परिश्रम करते नहीं देखा। जीवन में अभाव नहीं, संपन्नता देखी थी मैंने, सो पूछ लिया, ''थकते नहीं आप सर?''

''बीच-बीच में आराम कर लेता हूँ, सो लेता हूँ'' वे मुस्कुराये ''आपने पढ़ा है कि नहीं, पुराने जमाने में योद्धा बिस्तर पर नहीं घोड़े की पीठ पर ही सो लेते थे। घोड़ा थक जाये तो वे घोड़ा बदल लेते थे। पर मेरा घोड़ा थकता नहीं है। मैं लोकल ट्रेन में अथवा बस में बैठे या खड़े-खड़े भी सो लेता हूँ। सोने का अर्थ पता है? मस्तिष्क को आराम देना। मस्तिष्क को प्रत्येक चिन्ता से मुक्त कर शून्य पर स्थापित कर लें। पाँच-दस मिनट में आप तरोताजा हो जायेंगे।''

''कैसे कर लेते हैं आप? यहाँ तो सारी रात सोकर भी सुबह थकान महसूस करती हूँ।''

''ये तो पैसे वालों के चोंचले होते हैं।'' पीछे से किसी शिक्षक ने धीरे से कहा। मैंने बात सुनी-अनसुनी कर दी।

छह सितम्बर। स्टाफरूम में घुसी तो देखा कि स्टाफ के सारे लोग एक मोटे से बेड कवर को उलट-पुलट कर देख रहे थे। फिर चार शिक्षकों ने उसे खोल कर एक-एक कोना पकड़ कर तान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिया। डबल बेड का हेण्डलूम का बेड कवर था। अच्छा था। पता लगा कि हर वर्ष रोटरी क्लब वाले स्थानीय स्कूलों के चुनिंदा शिक्षकों को सम्मानित करते हैं। हमारे स्कूल से दामले सर को यह उपहार भेजा गया था।...बहुत प्रसन्न थे वे।

एक दिन बातों-बातों में पता चला कि दामले सर एम.ए. कर रहे हैं। उन दिनों हाईस्कूल तक पढ़ाने वाले शिक्षकों को ग्रेजुएट अथवा पोस्ट ग्रेजुएट होने पर भिन्न वेतनमान थे। फर्स्ट क्लास अथवा सेकेण्ड क्लास के अलग अलाउंस भी थे। मुझे आरम्भ में ही चार सौ पचहत्तर रुपये वेतन मिला था, किन्तु दामले सर का वेतन कई साल काम करने के पश्चात् भी उतना न हो सका था।

सुनकर बड़ा अच्छा लगा कि दामले सर एम.ए. कर रहे हैं। उन्होंने कहा ''करना आवश्यक है, इसीलिए कर रहा हूँ। नहीं करूँगा तो जूनियर कॉलेज खुलने पर उसमें जगह कैसे मिलेगी?''

मैं मूर्ख-सी देखती रही। मुझे कुछ भी पता नहीं था। उन्होंने बताया कि सन् 1975 में दसवीं तथा ग्यारहवीं दोनों की बोर्ड की परीक्षा होगी। ग्यारहवीं पास होकर छात्र कॉलेज में इन्टर के फर्स्ट ईयर में जायेंगे और दसवीं कक्षा के लड़के पास होकर जूनियर कॉलेज अर्थात् हायर सेकेन्डरी के छात्र होंगे। उसके लिए सेकेण्ड क्लास एम.ए. होना आवश्यक है। मैंने यूनिवर्सिटी में लिखित दे दिया है कि जब तक मेरा सेकेण्ड क्लास न आये मेरा परिणाम घोषित न किया जाये। और मेरा थर्ड क्लास ही आया है। कैसे भी हो मुझे जूनियर कॉलेज का शिक्षक बनना ही है। इसी कारण रात को डेढ़-दो बजे तक पढ़ाई कर रहा हूँ।''

मैंने मन-ही-मन उनके लिए, उनकी सफलता के लिए भगवान से प्रार्थना की थी।

''कभी तो घूरे के भी दिन फिरेंगे।'' कहकर मुस्कराते हुए वे चले गये।

हमारे जूनियर कॉलेज में एक नई लड़की आयी थी—विजया नायर। गणित पढ़ाती थी। हिन्दी उसे बिल्कुल नहीं आती थी। किन्तु कुछ ही माह में वह अच्छी हिन्दी बोलने लगी। एक दिन हँस कर मुझसे बोली, ''अंजलि अब तो मैं आपकी जगह हिन्दी पढ़ा सकती हूँ। आप मेरी जगह गणित पढ़ाइये।''

मेरे कुछ कहने से पहले ही श्रीमती स्वामीनाथन बिगड़ उठीं। ''अंजलि, हमलोग तुम्हारी हिन्दी चार-छह महीने में सीख लेते हैं। तुम हिन्दी वाले कोई दूसरी भाषा क्यों नहीं सीख सकते। दो साल हो चुके हैं तुम्हें इस स्कूल में...तमिल-मलयालम क्यों नहीं सीखा?''

मैं अपनी खिसियाहट छिपा कर हँसी और बोली, ''असल में हिन्दी है ही इतनी सरल भाषा कि हर कोई आसानी से सीख जाता है।''

दामले सर उस समय स्टाफरूम में अपनी निबन्ध की कापियों का ढेर रखने आये हुए थे। मेरी बात सुन कर बिगड़ गये। ''कौन कहता है हिन्दी सरल भाषा है। मालूम है मैडम, दक्षिण भारतीय बच्चों को कितनी परेशानी होती है? पिता जी की कमीज, पैण्ट, टोपी स्त्रीलिंग, माँ का ब्लाउज, पेटीकोट,

रामकुमार आत्रेय
गुरुत्वाकर्षण

यात्री चाहे
पूरे विश्व की यात्रा पर निकला हो
परन्तु लौटना ही पड़ता है उसे
एक न एक दिन अपने घर
जहाँ से की होती है उसने
अपनी यात्रा की शुरूआत

ठीक उसी तरह
जैसे कि आकाश से नीचे
गिरने वाली हर वस्तु
गिरती है आखिर पृथ्वी पर ही
गुरुत्वाकर्षण का दूसरा नाम ही घर है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

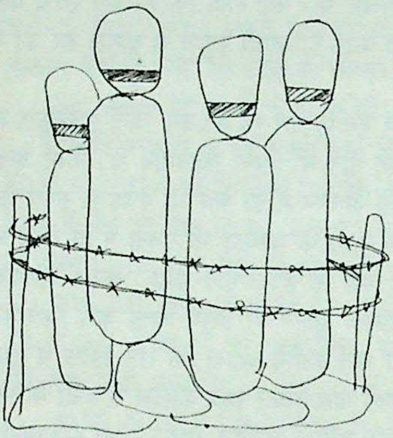

लहंगा, दुपट्टा पुल्लिंग, कुसी-मेज बड़ी, पलंग छोटा। चादर पतली, तकिया मोटा। अरे हिन्दी में तो भावों के लिए भी ...दया आती है, गुस्सा आता है, प्रसन्नता होती है तो सुख-दु:ख होता है...इस भाषा को सरल कहेंगी आप? माली का विरोधी शब्द माला न होकर मालिन, नौकरानी का विरोधी नौकराजा। बताइये लड़की ने चिड़िया को देखा, इस वाक्य में क्रिया पुल्लिंग क्यों है? जबकि लड़की और चिड़िया दोनों स्त्रीलिंग हैं।''

मेरा दिमाग घूम गया। हालाँकि यह परेशानियाँ समझ में आती थीं। तभी पार्वती हँस कर बोली, ''आता है तो मुर्गा और आती है तो मुर्गी। सिंपिल।''

दामले सर भी मुस्करा दिये, ''अंजलि जी। अन्यथा न लीजियेगा, पर सच बात यह है कि आप हिन्दी वाले कोई दूसरी भाषा सीखना ही नहीं चाहते। अरे बी.ए.-एम.ए. की बात तो दूर कोई चौथी-पाँचवीं भी नहीं करना चाहते। भाषा कोई भी सरल नहीं होती। बस सीखने की इच्छा, लगन व परिश्रम चाहिए।''

मैं मूर्ख-सी कह बैठी, ''नहीं, मेरे पति को बड़ी अच्छी मराठी आती है। उन्होंने शायद आठवीं की...''

मेरा वाक्य पूरा भी न हुआ कि स्टाफरूम में वह ठहाके लगे कि क्या कहूँ।

सन् 1974 में भी दामले सर का एम.ए. में सेकेण्ड क्लास नहीं आया। बड़े दु:खी व थके से लग रहे थे। कोल्हू के बैल की भाँति जुते हुए बेचारे दामले सर! मन उनके लिए बड़ा व्यथित होता था।

सन् 1975 का प्रतीक्षित वर्ष आ गया। हमारे विद्यालय से दसवीं तथा ग्यारहवीं दोनों के विद्यार्थी बोर्ड की परीक्षा में बैठे थे। और जून में परिणाम आने से पहले ही हमारे विद्यालय में जूनियर कॉलेज खुलने की घोषणा हो गयी। और विशेषत: विज्ञान की कक्षाओं के लिए जोर-शोर से तैयारी होने लगी।

जून के दूसरे सप्ताह में विद्यालय खुलने पर मेरे पूछने पर दामले सर ने बताया, ''अबकी एम.ए. के लिए बेहद परिश्रम किया है, अब देखिये भाग्य की पिटारी में मेरे लिए क्या बन्द है?''

मैंने उनको शुभकामनाएँ दी, शुभकामनाएँ जो दिल से निकलती हैं।

धन्यवाद कहते हुए वे चले गये। दस जुलाई को प्रिंसिपल मैडम ने बुलाया। बोलीं, ''हमें जूनियर कॉलेज के लिए स्टाफ अपायन्ट करना है, क्या तुम जूनियर कॉलेज में हिन्दी पढ़ाना चाहोगी?'

''जी मैं?'' मैं अचकचा गयी ''पर मैडम, यह जगह दामले सर को मिलनी चाहिए, वे बहुत सीनियर...''

मैडम मेरी बात काट कर सख्त लहजे में बोलीं, ''देखो अंजलि। जगह किसको मिलनी चाहिए या किसको नहीं, इसका निर्णय तुम्हें नहीं, मुझे करना है। तुम्हें जूनियर कॉलेज में जाना है या नहीं, दोनों ही स्थिति में मुझे लिख कर दे दो। नहीं पढ़ा सकती, तो मैं इस पद के लिए विज्ञापन दूँ।'' फिर दो क्षण रुक कर मुझे असमंजस में देखकर कहने लगीं ''दामले पिछले चार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वर्ष से एम. ए. कर नहीं पाये, अबकी कर ही लेंगे इसका मुझे भरोसा नहीं है। मुझे बोर्ड में स्टाफ के नाम जल्दी भेजने हैं।''

मैं रात भर सो न सकी। कैसे तो जूनियर कॉलेज की जगह दामले सर को मिल जाती। किन्तु न उन्हें मिले, न मैं स्वीकार करूँ यह तो कोई बात नहीं हुई।

मेरा हृदय अपने को अपराधी कह रहा था। फिर भी तीसरे दिन मैंने अपना स्वीकृति पत्र दे दिया। इस विषय में दामले सर से कोई बात करने का साहस ही नहीं हुआ मेरा। चोर जैसी स्थिति हो रही थी मेरी।

मेरी पदोन्नति हो गयी। दामले सर रह गये। लगभग दो सौ रुपये का लाभ हुआ था मुझे। एक तिहाई वेतन बढ़ा था मेरा। मेरे लिए उसका उतना मूल्य नहीं था, जितना दामले सर के लिए था।

इस बीच मेरा बेटा अनन्त हो चुका था।

जूनियर कॉलेज और सेकेण्डरी सेक्शन के समय अलग हो गये थे। अब दामले सर के दर्शन दुर्लभ हो गये थे।

फिर वही पन्द्रह अगस्त के दिन सबकी बैठक हुई। दामले सर चुपचाप। सबसे पीछे आकर बैठ गये। वे एक शब्द भी नहीं बोले।

समारोह समाप्त होने पर मैं ही उनके पास गयी ''कैसे हैं सर?''

''चंगे हैं। आप कैसी हैं?'' वे मुस्कराये। उनकी हँसी में कोई उपालंभ नहीं था।

''बड़े थके-थके लग रहे हैं आप सर।'' मेरे कहते ही विश्वनाथन् बिगड़ उठे ''इतनी मेहनत करेंगे तो क्या थकेंगे नहीं? माँ, बाप, पत्नी, तीन बच्चे...दो कँवारी बहनें...इतने लोगों को सँभालना सरल तो नहीं।''

''जाने दो विश्वनाथन्। कहकर वे मेरी ओर मुड़ कर बोले, ''दामले का अर्थ जानती हैं आप?''

''नहीं, मराठी मुझे नहीं आती।''

''आ जायेगी...दामले का अर्थ है, दुःख...दारिद्रय...दौड़ और दहन...''

विश्वनाथन् जैसे चिढ़ कर बोले, ''अंजलि का अर्थ भी बताओगे क्या?''

''नहीं। इनका अर्थ मैं क्या बताऊँ...ये तो स्वयं अन-जली हैं। अनन्त, अनादि, आनन्द।''

मैं काँप गयी। दामले सर क्या श्राप दे रहे हैं? किन्तु उनकी मुख-मुद्रा पर कहीं ईर्ष्या...विरोध अथवा वितृष्णा का भाव नहीं था। सदा की भाँति मुस्कुराता मुख-मण्डल था। मन आया कि पूछूँ, 'आपका एम.ए. का परिणाम क्या रहा? सेकेण्ड क्लास आया कि नहीं?' किन्तु नहीं पूछ सकी। नहीं आया तो उन्हें लज्जित करने से क्या लाभ? आ गया तो क्या मैं यह पद उन्हें दे दूँगी?

मन ने कहा, ''हाँ। दे दूँगी...अवश्य दे दूँगी।'' कि कहीं चुपके से आकर कोई कह गया। सब लोग क्या कहेंगे...अंजलि को पढ़ाना नहीं आता...अंजलि बच्चों पर नियंत्रण नहीं रख सकी। आखिर हार कर छोड़ दिया जूनियर कॉलेज! दामले सर की बात याद आ गयी।...फर्स्ट क्लास एम.ए. बी.एड. होना और कहानी-कविता लिखना एक अच्छी शिक्षिका होने की गारण्टी नहीं होती।

पाँच सितम्बर। शिक्षक दिवस के उपलक्ष्य में रोटरी क्लब वालों ने सम्मानित करने के लिए दो शिक्षकों को आमंत्रित किया। एक सेकेण्डरी सेक्शन से दूसरा जूनियर कॉलेज से।

जूनियर कॉलेज से मुझे भेजा गया। हाईस्कूल सेक्शन से सरोजा को। सुन कर आनन्द आ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गया। कल्पना में मैंने रोटरी क्लब वालों की ओर से अपना तथा सारे शिक्षक वर्ग का वह भव्य स्वागत समारोह कर डाला कि देखने वाले दंग रह जाएँ।

शिक्षक होना कोई साधारण बात तो नहीं। शिक्षक तो देश के भविष्य का निर्माता होता है।

दूसरे दिन ठीक पाँच बजे गंतव्य स्थान पर पहुँच गयी। पर यह क्या? वहाँ तो कोई नहीं! न कोई बन्दनवार न कोई आयोजन। एक कोने में एक छोटे-से बोर्ड पर शिक्षक दिवस की सूचना भर थी।

बहुत-से शिक्षक-शिक्षिकाएँ एकत्रित हो चुके थे। किन्तु स्वागत के लिए कोई भी नहीं। तभी दो चपरासी आये। एक के हाथ में चाभी का गुच्छा था। वह दूसरे से कह रहा था, "अरे,...आखिर टीचर ही ठहरे...एक दिन इनका भी सही।"

हॉल खोला गया। महीनों से वहाँ जैसे झाड़ू नहीं लगी थी। दोनों चपरासियों ने एक-एक कुर्सी ढेर पर से उठाकर रख दी। फिर हम लोगों की ओर देख कर हुक्म दिया, "एक-एक कुर्सी उठा लो और बैठ जाओ।" मेरी हालत खराब...काफी बढ़िया साड़ी पहन कर गयी थी और यहाँ धूल से भरी, कील-काँटे से लैस कुर्सियाँ और एक स्टेज था। जिस पर कुर्सी-मेज रखी थी उसे झाड़ा गया था।

थोड़ी देर बाद कठपुतलियों जैसे दो सज्जन आये। एक कुर्सी पर विराजमान हो गये, दूसरे ने माइक सँभाला। स्वागत में दो वाक्य कहे। फिर एक के बाद एक शिक्षकों के नाम पुकारने लगे। जिसका नाम पुकारा जाता, वह शिक्षक जाता। उसके हाथों में गुलाबी कागज में लिपटा एक पैकेट पकड़ा दिया जाता।

मेरा दिमाग खौल रहा था। यह कैसा सम्मान? जैसे किसी राजा-महाराजा के कारिंदे भिखारियों को दान दे रहे हों। यह सम्मान है या अपमान? यह इबादत है या हिकारत? क्यों होता है शिक्षक दिवस? किसी और का दिवस क्यों नहीं होता है? हर कमजोर...शोषित अथवा निरीह का ही दिवस क्यों ...क्यों?

क्योंकि ...शिक्षक का दिवस एक...बाकी दिन औरों के। सभी के लिए अपमान और उपहास का पात्र शिक्षक का आत्मसम्मान कहाँ है? उसको भिखारी क्यों बना दिया गया?

मन आया कि अपना नाम आने पर उनका यह उपहार ले, उनके आगे पटक दूँ और शिक्षकों का इस प्रकार अपमान करने के लिए एक कड़क-सा भाषण दे डालूँ।

अपना उपहार हाथ में ले मेज की ओर मुड़ने लगी तो जैसे दामले सर सामने आकर खड़े हो गये। कितने प्रसन्न थे वे बैड कवर पाकर। कितनी उपयोगी थी वह उनके लिए। और सामने बैठी उस भीड़ में मुझे न जाने कितने दामले सर दिखाई पड़ने लगे। चुपचाप अपने स्थान पर वापिस आ गयी। मेरी कुर्सी पर एक पेपर प्लेट रखी थी, जिसमें मोटी बूँदी का एक लड्डू, थोड़े से चिप्स और जरा-सा चिऊड़ा ...खाना हो तो खाओ नहीं तो जाओ भाड़ में!

और मैंने भाड़ में जाना पसन्द किया।

उस पैकेट में एक थर्मस फ्लास्क था, जो मैंने न स्वयं छुआ न किसी को छूने दिया। शिक्षक-वर्ग की दीन-हीन दशा, विवशता, निरीह वेदना की याद दिलाता है वह थर्मस मुझे।

उसी वर्ष बीस नवम्बर को स्कूल में घुसते ही किसी ने बताया, "दामले सर नहीं रहे।" "अरे, क्या हो गया उन्हें?" मैं भौंचक मुँह बाये खड़ी रह गयी। दसों दिशाएँ जैसे चीत्कार करने लगीं। दामले सर नहीं रहे...दामले सर नहीं रहे!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बूढ़े माता-पिता, पच्चीस और सत्ताइस वर्ष की दो क्वाँरी बहनें, पत्नी और तीन बच्चे...इन आठ पेटों की रोटी के लिए कौन जुगाड़ करेगा?

खचाखच भरी ट्रेन के अन्दर वे बेहोश होकर झूल गये थे। घोड़ा भागता रहा, योद्धा गिर गया।

बहुत कुछ दिया मुझे जिन्दगी ने। संभवत इतना पाने के पश्चात् और कुछ पाने की लालसा न रह जाये। मेरा बेटा अनन्त तो सन् '73 में हो चुका था। पर सन् '78 में जब बेटी हुई तो पिताजी ने उसे गोदी में लेकर मुस्कराते हुए कहा था, अनन्त की बहिन अनादि ही होनी चाहिए। और मुझे लगा कि उनके मुख से दामले सर ही बोल रहे हैं। उन्होंने ही तो कहा था— 'इनके लिए क्या कहूँ, जो स्वयं अन-जली हैं। अनन्त...अनादि...आनन्द।'...मुझे तो यह नाम ही हर क्षण दामले सर की व्यथा सुनाते रहते हैं।

आनन्द को वरली में एक बड़ा-सा फर्निश्ड फ्लैट मिल गया था। पाँच मिनट की दूरी वाला मेरा घर विद्यालय से दो घण्टे की दूरी पर हो गया। किन्तु सबके कहने पर भी मैं इस्तीफा न दे सकी। जब-जब लिखने बैठी तो दामले सर मेरे सामने आकर खड़े हो गये 'अंजलि, जब तुम्हें नौकरी नहीं करनी थी तो मेरे परिवार के पेट पर लात क्यों मारी? मेरी राह में चट्टान बन कर क्यों खड़ी हो गयी?'

बाद में पता चला था कि उनका उस वर्ष एम.ए. में फर्स्टक्लास आया था।

सेवानिवृत्त होने से पहले प्रिंसिपल मैडम एक दिन कहने लगी, ''मालूम है अंजलि। दामले ने तुम्हारी क्लास में शोर क्यों मचवाया? हमारा स्कूल दक्षिण भारतीय संघ द्वारा संचालित होने के कारण बहुत से बच्चे हिन्दी में ट्यूशन लेते थे। इलैवन्थ न मिलने के कारण उनके पास बच्चे नहीं आयेंगे, और बोर्ड की कापियाँ भी करैक्शन के लिए नहीं मिलेंगी...इसलिए।''

मेरे पेट में भभूका-सा उठा। विवशता मनुष्य से क्या-क्या नहीं करा लेती है।मेरे पास भी बहुत से बच्चे आये? किन्तु मैंने कभी ट्यूशन नहीं की।

मैडम कहने लगीं, ''अंजलि अगर दामले मेरे पास आकर अपनी समस्या रखते तो मैं उनको इलैवन्थ क्लास दे देती। किन्तु उन्होंने जो किया इट वॉज वेरी डिसगस्टिंग...आई कुडन्ट टॉलरेट दैट।''

अब कुछ भी कहने-सोचने से क्या लाभ? इलैवन्थ नहीं तो मैडम उन्हें जूनियर कॉलेज तो दे ही सकती थीं।

ढेरों काश मेरे सामने चक्कर काटते रहते हैं। और मैं पागल होने लगती हूँ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काशी नायक

छोटी-सी बात

बात छोटी-सी थी लेकिन कुछ ही दिनों में साहूकार के कर्ज की तरह बढ़कर उन लोगों के लिए विषम समस्या बन गई।

संत कुमार बाबू उस दिन सुबह जल्दी नहा-धोकर तैयार हुए। ब्रीफकेस ठीक किया और नाश्ता के लिए बैठते हुए बोले, ''एस.डी.एम. साहब के यहाँ से जिला मुख्यालय निकल जाऊँगा। शायद आज लौट ही न सकूँ। मेरे लिए दोपहर का खाना मत बनाना और न रात का—कलेक्टर की मीटिंग है। विधान सभा की पूरी जानकारी देनी है। रात हुई तो वहीं रूक जाऊँगा।''

सुलोचना ने चुपचाप एक तश्तरी में रखकर चार परांठे और आँवले की चटनी उनके हाथ में थमा दी और दूसरे काम में लग गई। संत कुमार बाबू ने जल्दी-जल्दी पराठे ठूंसे और ब्रीफकेस उठाकर घर से निकल पड़े। एस.डी.एम. साहब के बँगले पहुँचे तो पता चला कि मीटिंग आज रद्द कर दी गई है। अब मीटिंग सत्रह तारीख को होगी। मतलब उस दिन से चौथे दिन। साढ़े आठ बज रहे थे। दफ्तर के लिए अभी ढाई-तीन घण्टे का समय शेष था। उन्होंने सोचा, चलकर चकबंदी की फाइलों को निपटा लें, और सीधे दफ़्तर आ गए। मेज पर जमे तो बारह बज गए। साहब आ गए और मुकदमों को सुनने लगे। फिर तो संत कुमार बाबू दोपहर के तीन बजे ही निपट पाए।

संत कुमार बाबू को भूख सताने लगी। सोचने लगे, घर में तो उनके लिए खाना बना नहीं होगा। तहसील के अहाते से निकलकर एक खोखे पर आए। एक आसामी पहले से ही चाय पी रहा था।

''बड़े बाबू चाय चलेगी?'' उसने पूछा।

''अरे, चाय क्या यार...घर से आज नाश्ते में ही चला आया...कलेक्टर की मीटिंग थी, लेकिन रद्द हो गई। उसके बाद से घर ही नहीं जा पाया।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाय वाला स्टोव पर कढ़ाही चढ़ाये पकौड़े तल रहा था। इससे पहले कि संत कुमार बाबू पकौड़े का आर्डर देते, आसामी बोल पड़ा, ''बड़े बाबू को पकौड़े खिलवाओ बनवारी भाई!''

पकौड़े खाकर उन्होंने एक चाय सुड़की और फिर एक सिगरेट सुलगा ली। पैसे देने लगे तो आसामी ने नहीं देने दिये।

दफ्तर खत्म होने के बाद साहब ने बंगले पर बुलवा लिया। परसों की मीटिंग के सम्बन्ध में कुछ मशवरे देने-लेने के लिए। संत कुमार बाबू वहाँ से सात बजे छूटे। ठण्ड के दिनों में सात बजे ही रात गहराने लगती है। आठ-पौने आठ बजे घर पहुँचे। बैठक में बच्चे चिल्लमपों मचा रहे थे और सुलोचना स्वेटर बुनते हुए उनपर बीच-बीच में बरसे जा रही थी।

संत कुमार बाबू को देखकर सुलोचना असमंजस में पड़ गई।

''आज की मीटिंग कैंसिल हो गई, इसलिए फिर जिला मुख्यालय नहीं गया। ...खाना बना लिया क्या?'' वह बोले।

''आप तो बोल गए थे न...फिर मीटिंग कैंसिल हो गई थी तो घर आकर बता तो जाते। किसी से खबर भी नहीं भिजवायी। दोपहर को कहाँ खाया?'' सुलोचना स्वेटर सोफे पर रख खड़ी हो गई।

''अरे दोपहर को खाना खाया ही कहाँ!'' संत कुमार बाबू ने थोड़ा रूककर कहा, ''बच्चों के लिए नहीं बनाया?''

''आपको खाना ही नहीं था, सो मैंने दोपहर में ही इकट्ठा बना लिया था। इन दिनों खाने में कुछ खराबी आती नहीं। सोचा, खाना बनाने के समय में स्वेटर निपटा दूँगी।''

''ठीक है, अपने लिए जो खाना रखा है वह खिला दो। बाद में बना लेना।'' संत कुमार बाबू को जोरों की भूख लगी थी।

''लेकिन हमलोग तो खा चुके हैं।'' यह बात सुलोचना ने कुछ जोर से कही।

''तुम इतनी नाराज क्यों हो रही हो?''

''नाराज मैं हो रही हूँ कि तुम! आते ही कैसे बोल रहे हो।''

''क्या खराब बोला? क्या बोलूँ भी नहीं। दिन भर भूख रहा।''

''तो इसमें मेरी गलती है, किसी से खबर नहीं भिजवा सकते थे? दफ्तर के हरकारे को भेज देते।''

''तो अब क्यों बात बढ़ाये जा रही हो। खाना क्यों नहीं बनाती..., कितनी देर लगेगी?''

''खाना बनाने में जितनी देर लगती है उतनी ही लगेगी।'' सुलोचना झल्ला रही थी।

''तुम्हें तकलीफ हो तो मत बनाओ, मैं होटल में खाकर आ रहा हूँ। एक कप चाय भर पिलवा दो।''

''हाँ, होटल में खा आओ, घर में बहुत पैसा भरा पड़ा है, न!'' पैर पटकती हुई वह चाय बनाने भीतर घुस गयी।

''चाय बनाकर लायी और टेबिल पर चाय का कप पटक दिया। कितने दिनों से कह रही हूँ कि घर में ऊपरी काम के लिए एक महरिया लगवा दो। बर्तन-भांडे, झाड़ा-बटोरी में आधा दिन खफ जाता है। और कुछ कर ही नहीं पाती। तुम्हारे बच्चों का यह हाल है कि आड़ी सींक सीधी नहीं कर सकते। अभी दोनों लड़ रहे थे। मैं कुत्ते की तरह कितना भी भौंकती रहूँ, सुन नहीं सकते। तुम्हे देखा तो बस्ता उठाकर पढ़ने बैठ गए। माया इतनी बड़ी हो गई... यह नहीं कि खाने में ऊपरी मदद ही कर दे। चूल्हा-चक्की का काम अभी से न सीखेगी, तो कब सीखेगी!''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

 Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खाना खाते-खाते बच्चे रजाई में दुबककर सो गए। संतकुमार बाबू हाथ-मुँह धोकर बैठक के पलंग पर आकर लेट गए और बीड़ी पीने लगे। सुलोचना सोने वाले कमरे में माया के बगल में आकर गुड़ी-मुड़ी-सी लेटी ही थी कि थोड़ी देर बात संत कुमार बाबू ने आवाज दी, "इधर आओ जरा।"

सुलोचना तुनकी, "अब क्या रह गया है?"

जब से बच्चे बड़े हुए थे तब से वे दोनों लेटते तो थे एक ही कमरे में, लेकिन सहवास करने के लिए बैठक की पलंग पर आ जाया करते थे। सुलोचना ने कहा, "अब सोने दो।"

"सुनो तो थोड़ा।" संत कुमार बाबू चंचल हुए।

"थोड़ा क्या सुनना है, मैं जानती हूँ...मुझे ठण्ड लग रही है।"

सुलोचना आयी और ठण्ड में सिकुड़ी-सी सामने खड़ी हो गई। संतकुमार बाबू ने कहा, "बैठकर रजाई ओढ़ लो।" उन्होंने हाथ पकड़कर सुलोचना को अपनी तरफ खींच लिया। वह निर्विकार भाव से उनके साथ लेट गई। "तुम्हारे डर के मारे मैं मायके भी नहीं जा पाती। ऐसा नहीं करते कि किसी को माहखण्ड के लिए बुलवा लो, मैं बाबू जी को देख आऊँ...बेचारे कुछ दिनों मेहमान के हैं।"

"तुम रक्षाबंधन को अभी गई थी न?"

"जुम्मे-जुम्मे तीन दिन के लिए गई थी, फिर तुम्हारे घर वापिस आ गई थी...थन्ना-सी छूकर भागी थी," सुलोचना ने उनका हाथ झटकर अलग करते हुए कहा, "महीने भर को छोटी दी को बुलवा लो तो मैं कुछ दिनों के लिए रह आऊँ।"

संत कुमार बाबू इस बार दफ्तर की फाइल की तरह बँधे रहे। विग्रह, विरोध, विद्रोह और फिर संधि। "किसी को आजकल इतनी फुर्सत नहीं है कि महीने भर को अपने बाल-बच्चों को छोड़कर तुम्हारे घर की रखवाली करने आ जाए। छोटी दी की बिट्टो सयानी हो गई...कालेज में है...सयाने-सयाने बाल-बच्चों को ऐसे ही तो कोई तुम्हारी खातिर छोड़ नहीं देगी...जीजाजी का क्या ठिकाना...हफ्ते-हफ्ते दूर ही रहते हैं... अब तो ऐसे ही दो-चार दिन हो आने की आदत बनानी होगी।"

स्त्री और पुरुष के अहम आदिकाल से टकराते रहे हैं और इस अविकल द्वन्द्व के बाहर एक एकाकी मर्म है।

सुलोचना कुछ सतेज स्वरों में कह उठी, "इस कान से सुनो या उस कान से ...अबकी बार मैं दो माह.से कम नहीं रहूँगी...बाप आखिर बाप होता है...बेचारे बहत्तर को लाँध रहे हैं।... हमेशा बीमार रहते हैं...भरोसा नहीं कब भगवान को प्यारे हो जाएँ। महीने-दो महीने रहूँगी तो उनकी कुछ सेवा तो कर लूँगी...लड़की का भी तो फर्ज होता है कुछ," सुलोचना सम्बंधों को दाँव पर रख रही थी जैसे।

"सेवा के लिए तो बहुएँ हैं, अपने तरफ का कौन-सा बाप बेटियों से सेवा करवाता है?" संत कुमार बाबू ने तर्क दिया।

"पास रहकर उनकी देखरेख तो कर सकती हूँ...बेचारे चल बसे तो पछताने को रह जाएगा।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

"तो फिर ऐसा करो, साल-दो-साल, चार साल, जब तक वे नहीं चल बसते हैं तब तक तुम वहीं बैठी उन्हें देखती रहो। और अपने घर को झोंक दो भाड़ में। लड़कों-बच्चों का स्कूल कर दो बन्द। वे बेचारे चूल्हे-चक्की में खपते रहेंगे। तुम अपने बाबूजी का इंतजार करो। जब तक नहीं मरते, जाओ उन्हीं के घर में रहो।...वे अगर पाँच साल भी जिंदा रहें, तो उन्हें देखती रहो...बहत्तर साल कोई उम्र होती है...लोग तो नब्बे-नब्बे साल तक उबर जाते हैं। बीमार रहते हैं तो यह मतलब नहीं कि मर जायेंगे। वृद्धावस्था में तो आदमी अस्वस्थ बना ही रहता है। तुम उनकी उम्र को कोसना बन्द करो।"

सहसा सुलोचना ने छत की ओर देखते हुए जैसे कोई आविष्कार करते हुए कहा, "दफ्तर का कोई ऐसा नौकर-वौकर नहीं जो थोड़े दिन खाना बनाता जाए, या कोई महरी अच्छी मिल जाए तो ऊपरी काम के लिए माया है ही...सुयोधन बड़ा हो ही गया। दो-चार दिन ही उसे बुरा लगेगा। फिर तो उसका मन लगने लगेगा।"

"महरी को रखा जाए, तीन-चार सौ का खर्चा।" संत कुमार बाबू ने कहा तो सुलोचना जीभ निकालकर रह गई।

चालीस साल की औरत मायके में उचक-उचक गिप्पी पिलाने लगी। चौके-चार में दोनों पांव ठहर कर रखने लगी।...छुआ-छुअउल्ल खेलते हुए संत कुमार बाबू की बाट जोहने लगी। ग्रीमकालीन छुट्टियाँ गुजर गईं। लेकिन वे नहीं आए तो उसे चिंता सताने लगी। रास्ते के लोगों पर निगाहें टिकाती...शायद सन्त बाबू ही हों। लेकिन वह और कोई निकलता। सुलोचना धीरे-धीरे मानसिक संताप की आदी होती गई। पहले वह खामोश रहने लगी। हँसना, खेलना-कूदना और खुलकर बतियाना बन्द कर दिया। फिर धीरे-धीरे वह झल्लाने लगी, छोटे भाई को डाँटने लगी। यह छोटे भाई की पत्नी को सहन नहीं होता। वह माँ को उलाहना देने लगी। लेन-देन के ऊपर लड़ने लगी। काम-काज करने में विरोध प्रकट करती। सही मायने में कहा जाए तो उसकी आस्था अपने मायके से निरन्तर तिरोहित होती जा रही थी।

दोनों भाभियाँ अपने-अपने पति के साथ अलग-अलग कमरों में लेटती थीं। सुलोचना को यह बड़ा रुचिकर लगता था। वह उनसे हास-परिहास करती। उन्हें छेड़-छाड़कर अपने पिया के साथ के उन संसर्गों, प्रसंगों और संस्मरणों का जिक्र करती, जिनसे नारी का पुरुष पर सम्मोहन चला करता है। ...लेकिन अब वह उन्हीं भाभियों से ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य और सौतेलेपन का व्यवहार करने लगी। माँ से रात में इतना लड़ती कि अड़ोस-पड़ोस के लोग सोते से जागकर चुपचाप ध्यान योग साधने लगते। तब घरों में इतनी खुसर-पुसर होती कि उसे सुबह कनखियों से निहारकर लोग सन्देह की दृष्टि से देखने लगते।

अगस्त गुजरने को हुआ। संत कुमार बाबू नहीं आए। तब उसे लगने लगा कि उसका जीवन अब निरर्थक है। वह तब किसी कुएँ में कूद जाने, फाँसी लगाने या कुछ जहर सरीखा खा लेने की कोशिश में बुद्धि जागरूक करने लगी। इसी बीच एक शाम उसकी बड़ी बेटी माया और पुत्र सुयोधन आ धमका। सुलोचना ने मायके का संकोच कर पहले प्रसन्नता जाहिर की, फिर उन्हें एकान्त में लाकर खूब चूमने-चाटने, लाड़-दुलार कर काफी रस से बतियाने लगी। उनसे बाबूजी के बारे में पूछा। घर के बारे में पूछा। अड़ोस-पड़ोस के बारे में पूछने के बाद उनके स्कूल के बारे में पूछने लगी। इसी बीच नानी ने उन्हें खाने के लिए बुला लिया। नानी ने अपने अनुभव से दाल के बीच कुछ-कुछ काले का अंदाजा लगा लिया था। खाना खिलाते हुए उन्होंने बच्चों पर रूआब-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

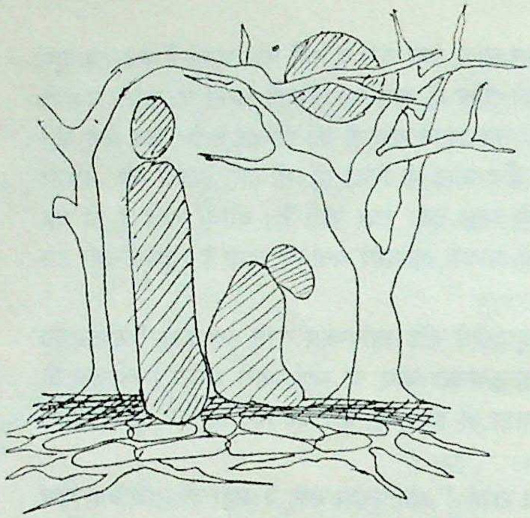

सा झाड़ दिया। बोली, ''बाप को फुर्सत नहीं मिली लिवाने की...रात में भी दफ्तर लगता होगा, सो बच्चों को लिवाने भेज दिया।''

सुयोधन खाते-खाते थमा। अपनी दीदी के गाल पर एक रोटी फेंककर मार दी। सुयोधन जैसे बाप की जगह बोला था। नानी बाँस-सी हिलकर रह गई।

माया सुयोधन से छह साल बड़ी थी। माया ने नानी को देखा, फिर सुयोधन की ओर गौर से देखकर फिर कहा, ''खाना रूचा नहीं रे, नानी ने इतना अच्छा तो बनाया है।''

सुयोधन कुछ बोला नहीं, एकबारगी अपनी दीदी को घूरकर देखा और रुँआसा हो उठा। रोया। उठा। फिर चीख उठा, ''पापा आओ न।'' रोता-रोता कहता जा रहा था, ''दीदी पापा के पास चलोऽऽ...पापा के पास चलो। आओ पापाऽऽऽ!! सुयोधन बेलगाम फूटफूट कर रोने लगा। दीदी ने मनाते हुए कहा, ''पापा आ रहे हैं, तू चुप तो हो...पापा ने मुझसे कहा था वे आएँगे। कुछ रात तक आएँगे।''

''नहीं, दीदी नहीं। पापा के पास चलो। पापाऽऽ!!'' सुयोधन फुग्गा फाड़कर रो उठा।

दीदी उसे गोद में लेकर मना रही थी, ''तू चुप तो रह, पापा आते ही होंगे। मुझसे बोले थे रात तक आएँगे। अभी कितने बजे होंगे, नौ...पापा आते ही होंगे। क्यों नानी? पापा तो हमेशा ही देर से आते हैं।'' माया ने उसे एकदम मातृ-भाव प्रदर्शित करते हुए समझाया।

सुयोधन का प्रलाप जारी था, ''पापा नहीं आएगे, मैं पापा के पास जाऊँगा। आओ पापा!'' उसने फिर मानो आखिरी विलाप किया। सुलोचना ने उसे बाँहों में भरा। डाँटा-फटकारा और चूमा-चाटी की। फिर लोरी सुनकर वह जैसे-तैसे सो गया।...और नानी माया को फुसलाकर पूछ रही थी...''क्यों री, मम्मी-पापा का कोई झगड़ा हुआ क्या?''

माया अचानक और इतनी जल्दी कुछ सोचकर भी बोल नहीं पा रही थी। कहा, ''पता नहीं,'' कुछ ठहरकर पूछ उठी, ''मम्मी कह रही है क्या?''

''नहीं, उसने कुछ बतलाया नहीं, लेकिन मुझे ऐसा लगता है।'' नानी ने चतुराई बरती।

माया मम्मी के बगल में सो रही थी। वह मम्मी से कुलचकर बोली, ''मम्मी, नानी पूछती है पापा से कोई झगड़ा हुआ है क्या?'' सुलोचना ने उसके गाल पर हल्की-सी धौल जमाते हुए कहा, ''लेटी रह, जानती हूँ कितनी बड़ी हो गई है...वह आदमी कभी नहीं लड़ता। इसलिए तो जँचता नहीं। तेरा पापा चूतिया है!'' कहकर वह बिस्तर के उस छोर तक सरक गई। ■

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अमृतलाल वेगड़

ऐसे स्नेही साथी कहाँ!

नर्मदा का तो मानो मैंने सीजन-टिकट ही ले रखा है—एक अक्तूबर-नवम्बर का, दूसरा मार्च-अप्रैल का। पदयात्रा के लिए यह समय सब से उपयुक्त है— न ज्यादा सर्दी, न ज्यादा गर्मी। भारी वर्षा के कारण पिछले अक्तूबर में हम नहीं जा सके थे। नर्मदा उफन पड़ी थी और कीचड़ और फिसलन के कारण किनारे-किनारे चलना संभव नहीं था।

अक्तूबर में हम तो नहीं चल पाए, लेकिन स्कॉटलैण्ड का माइकल गया था। उसका जन्म मुंबई में हुआ था इसलिए भारत के प्रति उसके मन में बचपन से ही लगाव रहा। कभी उसने ग्वालियर और अजमेर के स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाया भी था। 2000 में वह समुद्र से अमरकंटक तक नर्मदा के उत्तर-तट की पदयात्रा कर चुका था। अब अक्तूबर 2003 में अमरकंटक से सागर-संगम तक दक्षिण तट की पदयात्रा के लिए भारत आया था। जब वह हमारे घर आया, तब पानी बरस रहा था। हमने कुछ दिनों के लिए उसे रोक लिया था। लेकिन उसके पास समय सीमित था और क्रिसमस से पहले वापस जाने का रिजर्वेशन भी हो चुका था। इसलिए वह अमरकंटक चला गया। किन्तु करंजिया से उसका फोन आया कि नर्मदा-तट की कीचड़ से सनी पगडण्डियों पर चलना जरा भी संभव नहीं, इसलिए मैं सड़क से चल रहा हूँ। फिर डिंडौरी से फोन आया कि मैं सड़क पर फिसल कर गिर पड़ा और यहाँ एक होटल में पड़ा हूँ। इस खबर ने हमारी रही-सही आशा पर पानी फेर दिया और हमने यात्रा स्थगित कर दी।

लेकिन मार्च 2004 में हम चले। 15 मार्च को जबलपुर से बस से चलकर दोपहर तक डिंडौरी पहुँच गए। पदयात्रा डिंडौरी से शुरू होगी और महाराजपुर (मंडला) में समाप्त होगी। अमरकंटक, डिंडौरी और मंडला कहीं भी रेल नहीं है। (कहने को मंडला में डेढ़ पसली की नैरोगेज रेल जरूर है, पर वह उसे जबलपुर से सीधे नहीं जोड़ती, इसलिए यात्रियों के लिए उसकी कोई खास उपयोगिता नहीं।) इतने बड़े भूभाग में रेल का न होना दर्शाता है कि यह प्रदेश कितना विपन्न और गरीब होगा।

पहले साथ चलने के लिए मुझे लोगों को मनाना पड़ता था, फिर भी कोई चलने को तैयार न होता था। अब इतने ज्यादा लोग चलना चाहते हैं कि मना करना पड़ता है। अनावृष्टि की तरह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अतिवृष्टि भी कोई सुखद स्थिति नहीं। आखिर हम कितना राशन और कितना सूखा नाश्ता लेकर चल सकते हैं। बहुत बड़े बरतन ले चलना भी तो संभव नहीं। यात्री दल सीमित हो तभी यात्रा का आनंद है। किन्तु सहयात्री इतने आत्मीय हैं कि मना करना संभव नहीं। इस प्रकार हम 15 यात्री हो गए। प्रमुख हैं तपेन भट्टाचार्य और उनकी पत्नी दीप्ति। वे तो पिछली यात्रा में ही साथ चलना चाहते थे लेकिन एक पड़ोसी की मृत्यु के कारण चल नहीं पाए थे। पति-पत्नी घूमने के बेहद शौकीन हैं। हिमालय के दुर्गम स्थलों का फेरा कई बार लगा आए हैं। बांग्ला की अनेक कविताएँ उन्हें कण्ठस्थ हैं। इतना ही नहीं, वे मेरी पुस्तक 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा' और 'अमृतस्य नर्मदा' का बांग्ला में अनुवाद भी कर चुके हैं। यह बात अलग है कि अभी तक हम लोग उसके लिए कोई प्रकाशक नहीं ढूँढ़ पाए हैं। लेकिन इससे हम जरा भी विचलित नहीं। मूल हिन्दी पुस्तक को दिल्ली के हर बड़े प्रकाशक ने छापने से इनकार कर दिया था। एक बड़े प्रकाशक ने स्वीकृत करके छह महीने बाद लौटा दिया था। आखिर भोपाल की मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी ने उसे छापा। अभी इस पुस्तक की हिन्दी में पाँचवीं और गुजराती में चौथी आवृत्ति चल रही है। पुणे से दोनों के मराठी अनुवाद भी छप चुके हैं। उसे तथा बाद की पुस्तक 'अमृतस्य नर्मदा' को कई प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय पुरस्कार मिल चुके हैं। गुजराती पुस्तक 'सौन्दर्यनी नदी नर्मदा' को साहित्य अकादमी, दिल्ली का पुरस्कार भी मिला है।

अहमदाबाद से फोटोग्राफर जोगेश ठाकर आए हैं। मेरी 'परिक्रमा' पुस्तक पढ़कर वे नर्मदा-लोक में खो-से गए थे। पुस्तक के कई अंश उनके मन को इतना उद्वेलित करते रहे कि उनसे रहा न गया और एक दिन मुझसे मिलने जबलपुर आ गए। जब मैंने उन्हें बताया कि मेरी पदयात्राएँ अभी चल रही हैं, तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा और वे मेरे साथ जोशीपुर (होशंगाबाद) से सांडिया तक पैदल चले भी। नर्मदा-सौन्दर्य से वे इतने अभिभूत हो उठे कि दूर-दराज के इलाकों में स्वतंत्र रूप से जाते रहे, कभी अकेले तो कभी परिवार के साथ, और वहाँ की दृश्यावली को अपने कैमरे में कैद करते रहे। नर्मदा के चुने हुए फोटोग्राफों की अहमदाबाद में एक बड़ी प्रदर्शनी कर चुके हैं। इस बार उनके साथ उनकी पत्नी पूनम, बेटी चाँदनी और भतीजी मौलिका भी हैं। ठाकर कभी-कभार पूनम को लाड़ से पूजो कहकर बुलाते हैं, फिर इसका अर्थ भी समझाते हैं— पूनम का 'पू' और जोगेश का 'जो' पूजो। पूनम बहन कहती हैं कि इस नाम से मुझे केवल ठाकर ही बुला सकते हैं, बाकी लोग पूनम ही कहेंगे। ठाकर इस बार मूवी कैमरा लेकर आए हैं। वे हमारी पदयात्रा का फिल्मांकन करते चलेंगे। किन्तु वे और चाँदनी केवल चार दिन ही चल पाएँगे। ठाकर पर व्यावसायिक दबाव है और चाँदनी की अगले माह से परीक्षाएँ शुरू हो रही हैं। लेकिन पूनम बहन और मौलिका पूरी यात्रा में साथ रहेंगी।

चाँदनी बातूनी है लेकिन मौलिका बिरले ही बोलती है। दोनों सलवार-कुर्ता पहनती हैं। उन पर यह पहनावा फबता भी खूब है। दीप्ति और पूनम को हमने हमेशा साड़ी में देखा था, लेकिन वे भी सलवार-कुर्ता पहने हैं। यात्रा के लिए यह पहनावा बहुत सुविधाजनक है। अकेली कान्ता साड़ी पहने है। उसने कभी सलवार-कुर्ता नहीं पहना। 68 वर्ष की आयु में पहनना न उसे अच्छा लगेगा, न मुझे। अगर पहनती तो ऐसा लगता मानो गाय पर जीन कसा हो।

मेरा भानजा आनन्द अपनी युवा पत्नी रितु और नन्ही बेटी सेजल को घर छोड़कर आया है। वह उनकी इच्छा के विरुद्ध आया है। उसकी (माँ और मेरी बहन) कहती है कि सिद्धार्थ की तरह वह इन दोनों को सोता छोड़कर आपके साथ चल रहा है। 1977 में जब मैं अपनी प्रथम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पदयात्रा पर निकला था, तब आनंद के पिता और मेरे बहनोई हरिभाई का मुझे भरपूर सहयोग मिला था। वे तो अब नहीं रहे, लेकिन उनके दोनों बेटों का मुझे और भी ज्यादा सहयोग मिल रहा है।

दुर्ग से आए कान्तिभाई को शुरू में साहित्य से बेहद लगाव रहा। बाद में फोटोग्राफी से प्यार हो गया। उनमें एक कलाकार की दृष्टि है। मृदु और विनोदी स्वभाव के कान्तिभाई जरा बहरे हैं। मेरा विचार है कि बहरे प्रायः भले होते हैं। मैंने शायद ही कोई आदमी देखा हो जो बहरा हो और बुरा हो। कारण शायद यह हो कि दुनिया की काफी गंद को सुनने से वह बच जाता है।

खुशमिजाज शरद के बिना तो हमारी यात्रा हो ही नहीं सकती। उसकी फुलझड़ियों का हमें इंतजार रहता है। यह इलाका इतना विपन्न है कि अधिकांश गाँवों में न तो कोई मंदिर है, न धर्मशाला। हमें ग्रामीणों के घरों में ही रहना होगा। अपने हँसमुख और मिलनसार स्वभाव के कारण रात्रि-निवास की व्यवस्था करना शरद के लिए बाएँ हाथ का खेल है। दाहिने हाथ से वह हिसाब लिखता है। हिसाब के मामले में वह बहुत चौकस है। कितना ही थका क्यों न हो, इस में जरा भी प्रमाद नहीं करता। दल का कोषाध्यक्ष भी वही है।

साथ में तीन सेवक हैं। गरीबा तो हम लोगों के साथ पहले भी चल चुका है। हम जानते थे कि इस बार अधिक सदस्य होने के कारण अकेले गरीबा से काम नहीं चलेगा, इसलिए उसी के गाँव के उसके दो हमउम्र दोस्तों को भी साथ ले लिया है—कमलेश और शिवदीन। तीनों गोंड हैं।

हम सभी दोपहर की कड़ी धूप में डिंडौरी पहुँचे। सीधे नर्मदा-तट पर स्थित नीमाबाई की धर्मशाला गए। मेरे साथी मेरे यात्रा-वृत्त में नीमाबाई की 'पवित्र मुस्कान' के बारे में पढ़ चुके थे और उससे मिलने को बहुत उत्सुक थे। मुझे डर था कि उसे देखकर कहीं वे यह न कहें कि मैंने अतिशयोक्ति की है और मेरा वर्णन सत्य से परे है। मेरी विश्वसनीयता दाँव पर लगी थी। मुझे यह देखकर बहुत खुशी हुई कि मेरे साथी नीमाबाई से मुझसे भी ज्यादा प्रभावित हुए। ठाकर इतना अधिक की उस पर एक छोटी वीडियो फिल्म करने का मन बना चुके हैं। नीमाबाई और उनकी बहन दोनों ही विधवा और निस्संतान हैं। दोनों ने अपने-अपने खेत बेच कर यह धर्मशाला बनवाई है और परकम्मावासियों को भोजन भी कराती हैं। हम सभी को तुरन्त भोजन करने बिठा दिया गया। भोजन बिलकुल घर जैसा था। हम 15 लोग थे। शाम को फगनू दादा आ गए तो 16 हो गए। फगनू दादा नर्मदापदयात्रा के लिए सदा तैयार रहते हैं। आधे वीतराग हैं। परकम्मावासियों की तरह नंगे पाँव चलते हैं और चिलचिलाती धूप में भी उघाड़े बदन रहते हैं। इस इलाके के जानकार हैं।

हमने देखा कि जब बड़ी संख्या में परकम्मावासी आ जाते हैं तो नीमाबाई के बरतन छोटे पड़ते हैं। हम लोगों ने बाजार से दो बड़े बरतन ले दिए। दुकानदार ने कहा कि आप इन पर अपना नाम खुदवा लीजिए तो हमने मना कर दिया और नीमाबाई का ही नाम खुदवाया। हमारे इतने बड़े काफिले को उसने जो भोजन कराया था, क्या उसने उस पर अपना नाम खुदवाया था?

यद्यपि मार्च का मध्य है, लेकिन रात को बहुत ठण्ड पड़ती है। कमरा बड़ा था, फिर भी 16 लोगों के लिए थोड़ा छोटा था। पास-पास सोए। रात में जब नींद खुली तो देखा भयंकर आवाजें आ रही हैं। ध्यान से सुना तो पता चला कि ये तो भट्टाचार्य के खर्राटे हैं। वे राग भीमपलासी प्रस्तुत कर रहे थे। अजीब संगीत-सभा थी। गायक ऊँघ रहा और श्रोता सो रहे।

शान्तिनिकेतन के आदि-पर्व में वहाँ दीनूबाबू रहते थे। दिनेन्द्रनाथ ठाकुर, गुरुदेव के परम प्रिय भतीजे और रवीन्द्र-संगीत के भंडारी। उनका घर सड़क के किनारे था। रात को वहाँ से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निकलने वाले गाड़ीवानों की कोशिश रहती कि उनके घर के सामने से आधी रात तक निकल जाएँ। आधी रात के बाद उनके खर्राटे शुरू हो जाते और गाड़ीवानों का कहना था कि उनके खर्राटों को शेर की दहाड़ समझकर उनके बैल मारे डर के इधर-उधर भागने लगते थे।

भट्टाचार्य ने दीनूबाबू की परंपरा को जीवित रखा है, बल्कि आगे बढ़ाया है, क्योंकि वे आधी रात होने का इंतजार नहीं करते। सोते ही शुरू हो जाते हैं। उनके खर्राटे थरथराहट से शुरू होते और गड़गड़ाहट से होते हुए घरघराहट में खत्म होते। फिर नीरव शान्ति छा जाती। लेकिन थोड़ी देर बाद फिर विस्फोट होता। पूरी रात में इनकी कुल प्रसारण-अवधि एकाध घण्टे से अधिक न होती। लेकिन ज्यों ही खर्राटों की एक खेप खत्म होती तो मन में यह धुकधुकी लगी रहती कि अगली खेप आई कि आई। इसी आशंका में शेष रात गुजरती। वैसे, उन खर्राटों में एक सांगीतिक अनुशासन था। शुरू का गर्जनभरा निनाद बाद में लयात्मक ध्वनि में बिखर जाता। यह सच है कि खर्राटे हम सभी लेते थे। इस दौड़ में महिलाएँ भी शामिल थीं। लेकिन कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली! उनके खर्राटों की काट हममें से किसी के भी पास नहीं थी। हमारे खर्राटे तो बस यूँ आए और यूँ गए।

सबेरे शरद ने मुझसे कहा कि आप दल के मुखिया हैं, आपको भट्टाचार्य के खर्राटों पर पाबंदी लगाने के लिए अध्यादेश जारी करना चाहिए। इस प्रस्ताव को खरिज करते हुए मैंने कहा कि इससे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का हनन होगा। अत: इस विषय में मैं कुछ नहीं कर सकता।

भट्टाचार्य और दीप्ति की आँखों में एक-दूजे के लिए शुभ्र स्नेह के अलावा और कुछ नहीं। लेकिन जब हम भट्टाचार्य के खर्राटों की महिमा बखानते हैं तो दीप्ति उनका पक्ष न लेकर हम लोगों के दल में शामिल हो जाती है और बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती है। बुरा मानना तो दूर, भद्र पुरुष भट्टाचार्य हमारी बातों का रस लेते और मुस्करा देते। वे प्राय: विश्व-शांति की बात करते हैं। यह उनका प्रिय विषय है। रात की शांति भंग करने वालों को कम-से-कम विश्व-शांति की बात नहीं करनी चाहिए।

ठाकर परिवार अमरकंटक से शाम तक आएगा। इसलिए हमें यहाँ आज भी रुकना है। सोचा, क्यों न रामघाट जाकर वहाँ के छोटे-छोटे प्रपातों को दोबारा देखें। इसलिए सामने तट गए और छोटे-छोटे गाँवों से होते हुए भरी दोपहर को रामघाट पहुँचे। इस तट पर रामघाट, सामने तट पर लछमन मड़वा। हमारे साथी नहाने के लिए प्रपातों के पास गए तो भट्टाचार्य भी वहीं जाने लगे। दीप्ति ने चिल्ला कर कहा, कोई करतब दिखाने की जरूरत नहीं, यहीं किनारे बैठकर नहा लो। लेकिन भट्टाचार्य नहीं माने, वहीं गए। फिर तो दीप्ति खुद भी वहीं जाकर नहाई। पानी जरा भी गहरा नहीं। फिर नदी पार करके सामने तट गए और शाम तक डिंडौरी आ गए। प्राय: 15 कि.मी. चलना हुआ। कल से जो पदयात्रा शुरू होगी, यह मानो उसका पूर्वाभ्यास था। नीमाबाई की छोटी-सी रसोई में शानदार भोजन हमारी बाट जोह रहा था। हलुआ, पूड़ी, आलू-गोभी की सब्जी और रायता। क्या खूब!

रात को कुछ चतुर सुजान अच्छी-खासी ठण्ड के बावजूद कमरे में न सोकर बरामदे में सोए। किन्तु कान्तिभाई भट्टाचार्य के पास ही सोए। वे जरा बहरे हैं, खर्राटे उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। कान्तिभाई के पास शरद सोया। दरअसल ये दोनों भी इसी ध्वनि-संप्रदाय के सदस्य हैं। कभी-कभार इन तीनों के खर्राटे समूह-गान का रूप ले लेते तो उस त्रिवेणी-संगम में स्नान करके हम धन्य हो जाते।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नर्मदा पदयात्राएँ शुरू करने से पहले मैं डिंडौरी कई बार आया हूँ। यहाँ नर्मदा को पैदल पार करते ग्रामीण खूब देखने को मिलते थे। साप्ताहिक बाजार के दिन भारी भीड़ होती थी। सिर पर लकड़ियों का गट्ठर उठाए आदिवासी महिलाएँ, बाजार से सौदा लेकर घरों को लौटते ग्रामीण अथवा मुख्य प्रवाह आने पर एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर नदी पार करती स्त्रियाँ! कितना रोमांच था इन दृश्यों में। इन्हीं के स्केच करने मैं यहाँ आता था और हर बार 10-12 दिन रहता था। लेकिन अब पुल बन गया है और यहाँ सारा दिन और देर रात तक जो नाटक खेला जाता था, वह अब बंद हो गया है।

आखिर 16 लोगों का हमारा दल 17 मार्च 2004 को सबेरे अपना-अपना सामान पीठ पर लादे नर्मदा-तट की पदयात्रा के लिए चल पड़ा। चले तो थे हम बड़े जोर-शोर से, लेकिन डेढ़-दो घण्टे में ही समझ में आ गया कि हमारे पास बहुत अधिक सामान है और यह तीन सेवकों के बस की बात नहीं। इतना अधिक बोझ लेकर चलना हमारी मजबूरी थी। कोई 7-8 दिन तक ऐसा एक भी गाँव नहीं पड़ेगा जहाँ छोटी-सी भी दुकान हो और हम कुछ खरीद सकें। इसलिए इतने बड़े दल के लिए पर्याप्त राशन और सूखा नाश्ता लेकर चलना जरूरी था। ठाकर के तरह-तरह के कैमरों और तीन पायों वाले स्टैंड का वजन अलग था। हम डिंडौरी से ही दो और सहायक लेना चाहते थे, लेकिन गेहूँ की कटाई चल रही थी, ज्यादातर लोग खेतों पर काम करने गए थे, इसलिए बहुत खोजने पर भी हमें कोई नहीं मिला। जैसे-तैसे चल तो पड़े, पर जल्दी समझ में आ गया कि हमें दो नहीं तो एक सहायक तो मिलना ही चाहिए। सामने जो भी मिलता, उसीसे पूछते, लेकिन कोई भी तैयार न होता। आखिर हम थककर एक जगह बैठ गए और चिंता में पड़ गए कि आगे की यात्रा कैसे हो पाएगी? (क्रमशः)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लघुकथा

आरती झा

प्यार

झील के शान्त नीले जल को एकटक देखना अच्छा लग रहा था। चप्पू की आवाज सुरीली थी। बोटवाला लड़का इक्कीस-बाईस साल का होगा। गहरी भूरी आँखें कुछ ढूँढती हुई-सी।

''क्या करते हो बोट चलाने के अलावा?'' मैंने पूछा।

''पढ़ाई! कामर्स पढ़ रहा हूँ। यह पार्ट टाइम जॉब है मेरा। अभी पीक सीजन है न! टूरिस्टों की भीड़ रहती है, सो अपनी अच्छी कमाई हो जाती है।''

''बोट क्या तुम्हारी अपनी है?''

''नहीं! मालिक की है। अपनी कहाँ से...?'' थोड़ी देर चुप वह कुछ सोचता रहा फिर बोला, ''लकड़ी महँगी आती है बोट की ...तीस-चालीस हजार रुपये पड़ जाते हैं एक अच्छी और मजबूत बोट बनाने में।''

''आप वह पहाड़ी देख रही हैं न...वह स्यूसाइडल प्वाइंट है।''

उसकी बात सुन मेरा सर चकरा गया।

''क्या? क्या कहा?'' मैंने घोर आश्चर्य के साथ उसे गहरी नजरों से देखा।

''हाँ, सच! वहाँ से लोग कूदकर जान दे देते हैं। अभी कल ही की बात है...एक लड़की वहाँ से कूदकर मर गयी। साथ में लड़का भी कूदनेवाला था, मगर कूद नहीं पाया...अब वो जेल में बन्द है।'' उसके चेहरे पर उदासी छा गयी। किसी दूसरी दुनिया में वह खो-सा गया। मैं कुछ कहना चाहती थी कि तभी जैसे किसी स्वप्न से जागकर वह बोलने लगा, ''बड़ा प्यार करता था लड़की से...साथ-साथ जीने-मरने की कसमें खाया करता था। मगर जाने क्यों हिम्मत नहीं कर पाया कूदने की।''

मैंने कुरेदा, ''क्या कहना चाहते हो, प्यार में कमी थी उसके? प्यार क्या है तुम्हारी नजर में?''

उसकी गहरी भूरी आँखें बिल्कुल स्थिर थीं, झील की तरह। मानो बिना कुछ कहे बहुत कुछ बताना चाह रहा हो।

उसने मेरी बात अनसुनी करते हुए कहा, ''ऊधर देखिए...कुछ दिखाता हूँ आपको मैं...।''

झील के उस तरफ मंदिर था। पूरा तो नहीं, बस एक हिस्सा दिखाई दे रहा था।

''कैसे देखूँ? हलचल हो रही है चप्पू से...पानी बिखर रहा है...।''

''ठहरिए! चप्पू चलाना बन्द करता हूँ। अब देखिए...दिखा?''

''हाँ! कुछ हिस्सा दिख तो रहा है, धुँधला-सा।'' मैंने कहा।

वह बोला, ''ऐसा ही है प्यार भी। हलचलों के बीच स्थिर-सी कोई चीज...कुछ देखा और बहुत कुछ अनदेखा।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सत्यनारायण

दुआ करना

सुबह निकलें
शाम घर को लौट आएँ
हम सलामत...
दुआ करना।

हादसों के सिलसिले हैं
घर-बदर
खुशियाँ उमंगें
हर कदम पर
रास्ते में
बिछीं बारूदी सुरंगें
भाग्य था, भगवान पर है
हाँ, मियाँ
अपनी हिफाजत...
दुआ करना।

खून के छींटों भरा
इस दौर का
हर इक सफा है
जिन्दगी पर लग चुकी ज्यों
तीन सौ दो
की दफा है
आँख पर पट्टी चढ़ाए
बेखबर
मुंसिफ, अदालत...
दुआ करना।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गाँव बस्ती
शहर कस्बा
हर तरफ हैं कत्लगाहें
बीच चौराहे
तलाशी ले रहीं
कातिल निगाहें
चलो
उन वीरानियों में
ढूँढते हैं आदमीयत...
दुआ करना।

इस त्रासद को...

सब अपने-अपने में डूबे
अपनों की सुध चाहे कौन?
इन्द्रप्रस्थ में
धृतराष्ट्रों का
पुत्र-मोह आ जाता आड़े

वैशाली जल रही
मगध में
जरासंध के खुले अखाड़े
*चण्डाशोक हुए मंसूबे
अगमकुआँ अवगाहे कौन?
काशी नगरी का
गंगातट
जलती आठों याम चिता है
और पुत्र का
कफन माँगता
हाथ-पसारे खड़ा पिता है
ये दहशत से भरे अजूबे
इस त्रासद को थाहे कौन?
बीच बजारे
दास कबीरा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कब तक सबकी खैर मनाए
कौन जतन से
ओढ़े चादर
कोई कितना निरगुन गाए
धागे उलझे, करघे ऊबे
आपदधर्म निबाहे कौन?

* कहते हैं, चण्डाशोक ने अपने भाइयों का वध कर पाटलिपुत्र के अगमकुआँ में डाल दिया था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कैलाश पचौरी

रमना अपनी गृहस्थी में

वह रम गई है अपनी गृहस्थी में
प्रेम-वेम का फंडा भगवान जाने
फिलहाल तो अच्छी कैमिस्ट्री देखी गई
उसके और सुदर्शन पति के बीच
कभी-कभार बड़े पर्दे पर मूवी के अतिरिक्त
बाइक पर वाक के लिए निकल जाना
'क्रीसेंट' के खुशनुमा कम्पाउंड में कॉफी की चुस्कियों के चलते
बॉस वन के कोमल कातार झरोखों में चहचहाती शाम के बीच
खुद को पिघलते हुए देखना उनका प्रिय शगल रहा है
घर भले दो कमरों, रसोई और बरामदे में सिमटा हुआ है
लेकिन कोंपल-कोंपल लहकते बच्चे को लेकर
बड़े-बड़े सपने हैं उसकी आँखों में
अपनी छोटी-सी गृहस्थी में मगन
सुख की बारिश में भीगती आपाद
वह क्यूँ कर खोलना चाहेगी अतीत का दरवाजा
कहीं कोई अल्हड़-सा झोंका उसकी सुप्त संवेदना को जगा दे तो
फिर जिन पहाड़ों को उसने पहले ही सर कर रखा है
उनके पुनः आरोहण का औचित्य भी क्या है?
अप्राप्य के प्रति जड़त्व एवं निर्मम रुखाई स्वाभाविक ही है
लेकिन प्रश्न यह उठता है कि इस निस्पृह संलग्नता के पार्श्व में
क्या निर्लिप्तता उसकी देखी जा सकती है सचमुच
या भीतर-ही-भीतर मथ रहा है कोई उसे
किसी अद्रष्य मथानी से
बाहर निकल नहीं पा रहा अन्तर्ध्वनित
मैं अपनी प्रासंगिकता के बारे में सोचता हूँ अक्सर
नेपथ्य में खड़ा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऐसा क्या हुआ कल

कल दो-एक स्वीकृतियाँ मिलीं
पैंडिंग चैक भी मिला अनायास
गिरिजा देवी की रस प्रसन्न ठुमरी सुनी सीडी पर
कुछेक पुराने मित्रों से फोन पर बातचीत हुई
एसएमएस क्लिक हुआ मोबाइल पर
कमबख्त सेंसेक्स भी उछाल पर आया कल ही
ताजगी के हलके-से स्पर्श ने आह्लादित किया
अनहद-सा कुछ गुनगुनाया हवाओं ने
झुक आये सहसा बादल
भीतर मोर ने फैलाये पंख
तेज हुआ नदी का बहाव
हर्षातिरेक से बिहुवल हुए पहाड़
मुलायम हो आया सूर्य स्पर्श
लौ टिमटिमाई चन्द्रमा की आँखों में
सुगन्ध से सराबोर हुए फूल
संवाद के लिए आतुर दिखाई दिया जीवन
खुशनुमा कंदील-सा जगमगाने लगा एकान्त
कल उस दरख्त ने मुझसे तुम्हारे बारे में पूछा
आखिर ऐसा क्या हुआ कल
इन्द्रिजन्य-इन्द्रियातीत

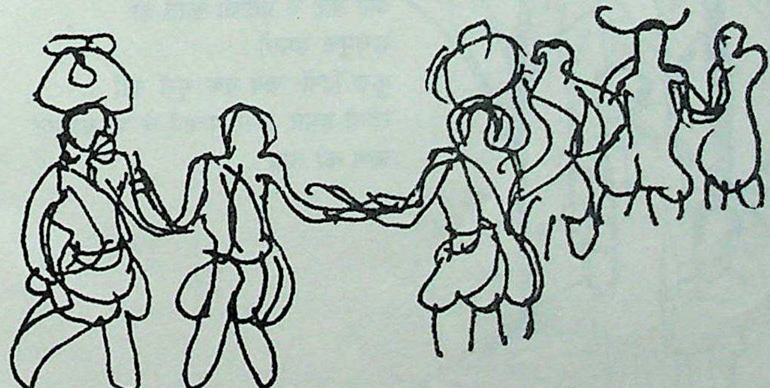

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अम्बिका दत्त

यात्राएँ

एक

होती नहीं यात्रा अकेले
कुछ लोग छोड़ने आते हैं/ कुछ दूर तक
कुछ पहले से ही होते हैं वहाँ
बगल वाली सीट पर बैठे हुए
जा रहे होते हैं
कुछ पहले ही चले गए
इसी पथ पर
जो अभी आए नहीं
मुसाफिर आएँगे हमारे बाद जो
वे भी तो हैं ही
हमसफर अपने इस सफर में

दो

किसी ने कहा चलते वक्त
आना! जरूर आना!
पर कहाँ जाना हो पाता है
कभी तो उम्र भर नहीं होता जाना
फिर से वहाँ

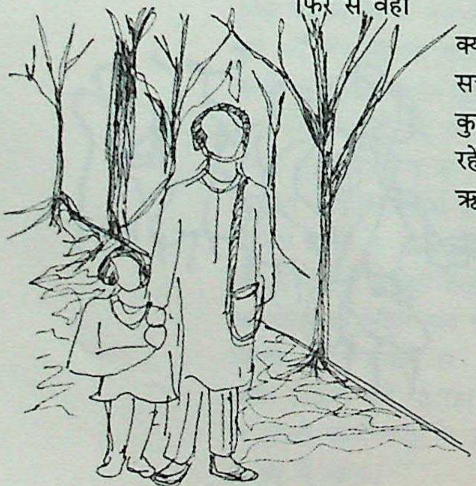

क्या पता वे प्रतीक्षा करते हों
सचमुच हमारी
कुछ दिनों/ जब तक भूलें नहीं
रहेंगी हमारे ऊपर यात्राएँ वे भी बकाया
ऋण की तरह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तीन

हर समय
कँधे पर पोटली लटकाए
सब जगह मौजूद
बस स्टैण्डों, प्लेटफार्मों, हवाई अड्डों के आस-पास
कुछ लोग/ जो मेरी तरह हैं
सफर पर जाने को तैयार हर घड़ी
मंडराते हुए मिलेंगे
जा नहीं पाते कहीं/ फिर भी
हर समय कहीं-न-कहीं जाने का ख्वाब देखते हुए
उनके पंखों की खुजलाहट और पावों की बेड़ियाँ
नहीं दिखती किसी को/ और उनकी कसमसाहट?
उनके पास कहीं का टिकट नहीं होता
सिवा इन्तजार के

चार

जो यात्री है—वह नहीं है
जो पथ है—वह भी नहीं है
गतिमान है जो निरन्तर
आकांक्षा हमारी कामना
वही है यात्रा/ एक प्यास की तरह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रंजना श्रीवास्तव

राख के फूल...

राख के फूल
झर रहे हैं...
एक आग
जो बरसों तक जली
मंद हो रही है
उसकी लौ
समय पीछे मुड़कर
नहीं देखना चाहता
घावों के निशान
नदी भूल चुकी है
अपने आदम-संस्कार
उसके विलाप की अस्थियाँ
तुम्हारी अंजुरी में
नहीं भरेंगी
अपना नम अवसाद
तुम्हारा सुख
सिकुड़ने लगा है
वह जो एक फूल था
जिसके साथ-साथ
लरजते थे पत्ते
और काँपती थीं
शाखाएँ
उनकी जगह
बदल गयी है
जीवन कहीं और बतियाना चाहता है
अपनी आस्थाओं की
निर्मल बतकहियाँ
कहीं और होती है सुबह
एक चमकीली
धूप के साथ
राख के फूल
झर रहे हैं
आहिस्ता-आहिस्ता ◘

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आस्ट्रियाई लेखक आन्द्रेयास वेबर से प्रेमकुमार की बातचीत

मेरे लिए दुनिया की सबसे महत्त्वपूर्ण चीज प्रेम है

तय समय से पहले ही हम तीनों वहाँ उपस्थित थे। वहाँ—यानी कि कनॉट प्लेस में —रीगल सिनेमा के गेट पर। खूब भीड़ थी। फिर भी हम लोगों ने पहली ही नजर में एक-दूसरे को पहचान लिया था। मिलते ही पहली बार मिलने वाली वह झिझक या दूरी एकदम नदारद हो चुकी थी। रीगल के ऊपर स्थित उस रेस्टोरेंट में जाने के लिए सीढ़ियाँ चढ़ने तक तो हम तीनों ही न जाने कहाँ-कहाँ की बातों में मशगूल हो चुके थे। हम तीन—यानी कि आन्द्रेयास वेबर, अमृत मेहता और मैं। आन्द्रेयास बेवर आस्ट्रियाई लेखक हैं, शिक्षण, पत्रकारिता, संपादन व फिल्म-निर्माण से जुड़े रहे हैं और अब स्वतंत्र लेखन के लिए समर्पित हैं। अमृत मेहता विदेशी साहित्य के अनुवाद के लिए नाम कमा चुकी पत्रिका 'सार-संसार' के संपादक— जिनके कारण यह बातचीत संभव और संपन्न हो सकी। खाने की उस गोलमेज पर मेरी दाईं ओर थे अमृत मेहता और बाईं ओर आन्द्रेयास वेबर। आन्द्रेयास एक छोटे-से काले बैग में से कुछ ढूँढ़ने-निकालने में व्यस्त हुए हैं। मेरा ध्यान उनको मिली उस लम्बाई और गोराई ने खींचा है। एकदम गोरा रंग-छह फुट से भी अधिक की वह लम्बाई! गौर से देखा तो दिखा कि उनकी देह को ही नहीं, बाँहों, पैरों और उँगलियों को भी लम्बाई खूब इफरात में मिली है। खूब बड़ी, बोलती-सुनती-सी ग्रे ब्ल्यू आँखें। छोटे-छोटे बाल ऐसे इतने छोटे कि माथे की लम्बाई काफी कुछ बढ़ गयी है। पतले, गुलाबी से जल्दी-जल्दी बोलते होंठ...कनपटियों पर से झाँकती सफेदी...!

शुरू में लगा कि भाषा की दीवार मुश्किलें खड़ी करेगी। पर नहीं, पता भी नहीं चला कि कब अमृत मेहता ने उस दीवार को ढहाकर हम दोनों के कहे को एक-दूसरे तक पहुँचाना शुरू कर दिया था। आन्द्रेयास के चेहरे की चमक और आँखों की तरल-सी सफेदी बता रही थी कि उस क्षण वे काफी उत्साहित-प्रफुल्लित हैं। अमृत मेहता आन्द्रेयास की चंडीगढ़, रोहतक, दिल्ली की यात्राओं से जुड़े कुछ प्रसंग बता रहे थे। आन्द्रेयास अपने सामने की खिड़की से दिखते उस बड़े से पार्क को देखे जा रहे थे। बच्चों जैसी जिज्ञासा और चहक के साथ उन्होंने पार्क में बैठे लोगों और उड़-उड़कर आ-जा रहे पक्षियों के कई चित्र भी उतारे थे। तब तक खाना नहीं लगा था। मैंने उनकी इस यात्रा के अब तक के अनुभवों को जानना चाहा था। बाएँ पैर के घुटने पर टिकी एड़ी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिलने लगी थी—'भारत ने दिल को लुभा लिया। मैं बहुत अभिभूत हुआ हूँ। यूरोप और आस्ट्रिया के मुकाबले में एक दूसरी ही दुनिया है यह। बडे आश्चर्य की बात है यह कि यहाँ पर समाज की कई तहें हैं। एक तरफ एकदम ऊँची, बड़ी आधुनिक तकनालॉजी, दूसरी तरफ एक गरीबी। एक मध्यवर्ग भी है। इतनी तहें हैं।...और ये बच्चे, जो रास्तों में, सड़कों-चौराहों पर, खिड़की का शीशा खटखटाते हैं—उनको देखकर मन में दया का भाव उठता है। अविश्वसनीय-सी बात है यह। इतनी विविधता—अपने आप में अलग-सी। यूनिटी इन डाइवर्सिटी कहते हैं न जिसे...!'

इन दृश्यों से मैं अपरिचित नहीं था, मगर आन्द्रेयास ने इस देश की गरीबी का ऐसे जिक्र किया तो बड़ा तीखा-कसैला-सा लगा—'आपके देश में नहीं दिखते क्या ऐसे दृश्य?'

—"नहीं, आस्ट्रिया में नहीं है। इतनी ज्यादा नहीं है। ऐसा कुछ देखकर मन बड़ा द्रवित हो जाता है। मुझे इसलिए भी तकलीफ होती है कि मैं ऐसी कुछ मदद नहीं कर सकता!"

सुना तो मन और असहज, उद्विग्न हुआ। उधर देखा तो सब सहज था, शान्त सा था। हाँ, पूरे चेहरे पर जैसे भावुकता की मोटी-सी एक चादर आ बिछी थी। गुस्सैल एक इच्छा ने मेरी आवाज को थोड़ा ऊँचा कर दिया था। मैंने वहाँ की गरीबी को मनवा लेने के लिए उनकी 'भूख' और 'छलांग' जैसी कहानियों के कुछ वाक्यों, चित्रों का हवाला दिया। उनके चेहरे पर निर्विकार-सी एक भावुकता थी, मुद्राओं के परिवर्तन में अन्दर की कोई उथल-पुथल और वाणी में ईमानदार-सी एक दृढ़ता..."अगर मैं उसे दस रुपये भी दूँ तो उससे उसकी मदद नहीं हो जाएगी। वो थोड़ी देर की होगी। पर मुझे यह बुरा लगता है।...आस्ट्रिया में सरकार की तरफ से निर्धनों की सहायता के लिए समाज में एक जाल-सा बिछाया हुआ है। सो इस तरह का करने की जरूरत नहीं होगी। अतः ऐसी चीज कम नजर आएगी वहाँ।...आप जिस कहानी की कह रहे हैं वह दरअसल इंग्लैड की है। मैं एक साल इंग्लैड के दक्षिण में रहा था। वह वहाँ की कहानी है। तब वहाँ बीस-पच्चीस प्रतिशत तक बेरोजगारी होती थी। नहीं नहीं, आस्ट्रिया की इंग्लैड से तुलना नहीं की जा सकती थी। तब वहाँ भी ऐसे लोग कम थे। बहुतायत में नहीं थे।"

'क्यों नहीं की जा सकती तुलना?'

"इंग्लैड और आस्ट्रिया दो बहुत पुरानी सभ्यताएँ हैं। पर दो अलग देश हैं। उनके हालात भिन्न हैं। दोनों देशों में सरकार की तरफ से निर्धनों की सहायता के लिए अपना एक सोशल सिस्टम है। यह प्रणाली समय के साथ विकसित हुई है।"

'यहाँ और वहाँ की निर्धनता में...?'

"वहाँ गरीबी का जो प्रतिशत है, वह तुलना में कम है। वहाँ पर सम्पन्नता बँटी हुई है। उसमें इतनी विषमता नहीं है। यहाँ धन बराबर नहीं बँटा हुआ है। यहाँ अमीरों-गरीबों में खाई बहुत गहरी है। इतनी वहाँ नहीं। यहाँ आप देखिए कि कई महलों जैसे घरों में हैं तो कितने ही सड़कों पर झोपड़ियों में। यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से समाजवादी व्यवस्था को खड़ा करने की लगातार एक कोशिश की गयी है। वहाँ कोशिश यही रहती है कि केक को जहाँ तक हो सके बराबर बाँटा जाए।"

'आपकी कई कहानियों की पृष्ठभूमि इंग्लैड की है, कुछ में अमेरिका की भी। इंग्लैड को लेकर जो मुखरता या विरोध आपकी रचनाओं में दिखता है, वैसा अमेरिका को लेकर शायद नहीं। आज के अमेरिका के इस बढ़ते दबाव, प्रभाव और आक्रमणकारी रवैये को आप किस तरह देखते हैं?'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''अमेरिका पूँजीवाद के पक्ष में है। यूरोप या आस्ट्रिया की जो दिशा है, वह बहुत ज्यादा समाजवादी है। उनकी प्रवृत्ति समाजवादी है। मगर अफसोस की बात यह है कि पिछले पाँच-दस साल में वहाँ नवउदारवाद और पूँजीवाद धीरे-धीरे जड़ पकड़ रहे हैं।...नहीं, ऐसा नहीं है। क्योंकि इन कहानियों की पृष्ठभूमि इंग्लैड है इसलिए वह ज्यादा नजर आता है। मैं जिन मूल्यों में विश्वास करता हूँ वे समाजवादी और मानववादी मूल्य हैं। वह चाहे अमेरिका हो या यूरोप सबके लिए ही वे मूल्य अच्छे हैं।...जिस साहित्य में मेरी रुचि है या जो मैं लिखता हूँ...मैं उम्मीद करता हूँ कि उस साहित्य के माध्यम से पाठकों को इन मूल्यों का बोध होता है। मेरे विचार में लोगों में यह बोध जगाने के अलावा साहित्य का और कोई काम नहीं होना चाहिए। नहीं, साहित्य से दुनिया को बदला नहीं जा सकता। लेखक लिखकर पाठक के सामने प्रस्तुत कर देता है और यह पाठकों पर निर्भर है कि वे इन मूल्यों को ग्रहण करते हैं या नहीं। मेरे विचार से जिन किताबों ने दुनिया को अब तक बदला है, वे हैं बाइबिल, कुरान और कार्ल मार्क्स की 'दास केपीटल'...और अफसोस की बात है कि हिटलर की 'माइन काम्फ'—'मेरा संघर्ष' उसने भी दुनिया को बदला है।''

अमृत मेहता जी ने हस्तक्षेप किया है—''ये कुछ सेमेटिक धर्म हैं...क्या आप उन्हीं पर केन्द्रित नहीं हो रहे हैं? दूसरे भी धर्म हैं दुनिया में—हिन्दुइज्म ताओइज्म...?' श्री पीस सूट की तरह की जैकिट पहने बैठे थे आन्द्रेयास...। उसे उतारते-उतारते बहुत विनम्र होकर कह रहे हैं—''मैं भूल गया था। उनमें वेद भी हैं, गीता भी। ये सिर्फ किताबें ही नहीं हैं, मिथक भी हैं।'' अमृत मेहता ने फिर कहा है—''कुरान, बाइबिल बड़ी अहम पुस्तकें हैं। पर सचाई है यह कि इनके अनुयायी जेहाद या क्रुसेड करते रहे हैं आपस में। हिन्दुइज्म, बुद्धिज्म में एक संतुलन है—''वहाँ प्रेम ज्यादा है, लड़ना कम है।'' दोनों पैर हिला रहे हैं आन्द्रेयास। थोड़ी उतावली में कहा गया है—''हाँ, बिल्कुल इसीलिए यूरोप में हम लोगों को हिन्दुइज्म बुद्धिज्म बहुत पसंद आ रहे हैं। यह भी बड़ी अहम बात है जो मैं बताना चाहता हूँ कि जेहाद और क्रुसेड ग्रंथों में कहीं नहीं लिखे हैं, उनके अनुयायियों ने पैदा किए हैं।''

चर्चा अब आस्ट्रिया में पत्र-पत्रिकाओं-पुस्तकों की स्थिति और पाठकों की रुचियों-प्रवृत्तियों की ओर मुड़ चली थी। खाना खाते-खाते वे बता रहे थे—''वहाँ बड़ा सम्मान है साहित्य का, मगर पढ़ने वाले बहुत कम हैं। पूरी जनसंख्या का एक बहुत कम प्रतिशत कभी-कभी एक बड़ी अच्छी पुस्तक को पढ़ लेता है! आस्ट्रिया में साहित्यिक पत्रिकाएँ बहुत कम हैं।''

''ज्यादा किसकी है?''

''कारों पर, कम्प्यूटर की, सोसायटी-औरतों की, समाचारों की पत्रिकाएँ पढ़ी जाती हैं। और एक संपर्क करने की है। जिनमें जैसे लिखा जाता है कि एक लड़के को लड़की चाहिए-हाँ, काण्टेक्ट मैग्जींस, सैक्स की। सबसे आखिर में साहित्यिक पत्रिकाओं की बारी आती है...।''

मन में आया कि यह भी तो एक निर्धनता ही है। इस दृष्टि से हमारे यहाँ तो आज भी—! कहा कुछ नहीं केवल इतना पूछा—'' ऐसी स्थिति में क्या कभी आपके या अन्य लेखकों के मन में यह सवाल भी आता है कि आखिर हम लिख किसके लिए रहे हैं?''

''मैं? ...मैं सबसे पहले अपने लिए लिख रहा हूँ। फिर उसके बाद जो थोड़े-से पाठक हैं, उनके लिए लिख रहा हूँ। मुझे उम्मीद है कि जल्दी ही मेरी पुस्तकें जर्मनी, आस्ट्रिया, स्विट्जरलैंड—पूरे जर्मन भाषी क्षेत्र में पढ़ी जाने लगेंगी। तब मुझे कुछ हजार पाठक-दस बीस हजार पाठक मिलने की उम्मीद है...!''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''कुल दस-बीस हजार...तो क्या वहाँ...?'' हैरान हुआ तो कह तो बैठा! पर अगले ही क्षण अपनी हैरानी पर भी मुझे हैरानी हुई। अपने आप से मन-मन सवाल किया कि विशाल आबादी वाले अपने इस देश में कितने हिन्दी लेखक ऐसे होंगे जो तीस-चालीस हजार पाठक होने का दावा कर सकेंगे?

बँधी मुट्ठी के शीर्ष पर अँगूठा अपनी पूरी लम्बाई में खड़ा है। बोलने में ढेर-ढेर विश्वास है और मिठास भरा विनम्र-सा उत्साह भी—''जी हाँ, वहाँ जो लोकप्रिय लेखक होता है, उसके पाठकों की संख्या कुल मिलाकर पचास हजार....कभी-कभी एक लाख तक। मेरे अगर दस हजार तक पाठक हो जाएँ तो मुझे खुशी होगी। डेढ़ लाख पाठकों वाले करीब एक प्रतिशत...दस हजार से ऊपर डेढ़ लाख तक- वे एक प्रतिशत बिकते हैं...निन्यानबे प्रतिशत लेखक नीचे वाले...!''

'ऐसे में साहित्य के भविष्य या टीवी को लेकर आपके मन में क्या कभी चिंता का भाव आता है?'

''मुझे साहित्य को लेकर कोई चिंता नहीं है। मुझे खुद को यह अहसास हो रहा है कि अब लिखित साहित्य के मामले में पुनर्जागरण आ रहा है।...जी, मैं टीवी देखता हूँ। उस पर फुटबॉल के मैच देखता हूँ।...जी, फुटबॉल का खिलाड़ी हूँ। मेरे घुटने का आपरेशन तक हो चुका है। हाँ, डिडेक्टिव फिल्में देखता हूँ। पर टॉक शो, सोप ओपेरा कभी नहीं देखता...। क्यों क्या...वे सब मुझे बड़े बेवकूफी भरे लगते हैं। मुझे उन्हें देखकर कोई हँसी नहीं आती। बहुत उबाऊ लगते हैं वे मुझे। पूरी जिन्दगी में मैंने वे शो नहीं देखे जिनमें नकली हँसी भरी होती है। उन्हें देखकर मुझे रोना आता है।''

''और किस बात पर रोना आता है आपको?'' यूँ ही पूछ लिया था यह प्रश्न। देर तक आवाज न सुनाई पड़ी तो उनके चेहरे की ओर दृष्टि दौड़ी। मस्तक पर गहरी-सी कई लकीरें थीं और भँवों में कथन—''राष्ट्रवादियों को देखकर रोना आता है...नस्लवाद को देखकर रोना आता है जो अपने आपको बहुत महान समझते हैं और होते बेवकूफ हैं। सैन्यवाद —मुझे उसपर भी रोना आता है—बहुत भयानक भयावह लगता है यह सब। और धार्मिक कट्टरता बहुत खतरनाक चीज है। मुझे जार्ज बुश को देखकर बहुत रोना आता है। और अपने देश के कैलीफोर्निया के गवर्नर को देखकर भी रोना आता है। बड़ा पॉपुलर हीरो है कैलीफोर्निया का गवर्नर...।''

''कभी ऐसा रोना जो खास हो, भुलाए न भूल पाते हों?''

''पूरी जिन्दगी में इस तरह केवल दो बार रोया हूँ। एक तब जब मेरे पिता की मृत्यु हुई। और दूसरी बार तब जब मेरे सबसे अच्छे मित्र ने गोली मारकर आत्महत्या कर ली। गुस्सा जरूर आ जाता था कभी, पर मैं और कभी वैसे नहीं रोया।''

''क्या किसी के प्रेम में रोए कभी?''

''अभी तक नहीं।''

''किसी के रोने को झेला है क्या?''

''मेरे साथ बहुत बार ऐसा हुआ है कि जब कोई औरत रोती है तो मैं कमजोर पड़ जाता हूँ। और फिर मेरी अपनी कोई इच्छा नहीं रहती। वो जो चाहती है मैं करता हूँ।''

आस्ट्रियाई दूतावास जाने के लिए हम लोग पार्किंग की ओर जा रहे थे। रास्ते में फुटपाथ पर लगे उस बाजार को देखकर आन्द्रेयास बच्चे की तरह चहक उठे—''ऐसा वहाँ नहीं है।'' उनकी जिज्ञासाएँ, उनकी वह खुशी—दुर्लभ खूबसूरत क्षण थे वे। कार की अगली सीट पर बैठकर क्यों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ही उन्होंने गेट बंद किया, छोटा-सा एक बच्चा शीशे से सटकर आ खड़ा हुआ। उँगलियों से शीशे पर वह लगातार खट्खट् किए जा रहा था और आन्द्रेयास थे कि वे सब कुछ को इरादतन अनदेखा, अनसुना कर देने में जुटे थे। और मैं पता नहीं क्यों पिछली सीट पर अकेला बैठा बहुत सिकुड़ा-सिमटा-सा हो गया था।

आन्द्रेयास के देश के दूतावास के उस भव्य, गरिमामय अतिथिकक्ष में बैठे हम तीनों के बीच इतनी बातें थी कि डर बना ही रहा कि कहीं समय का टोटा न पड़ जाए। गहरे नीले रंग की शर्ट, बाँहों से बँधा सुर्ख लाल स्वेटर पीठ पर लटका है। आन्द्रेयास मेरे सामने हैं और हम दोनों के बीच भाषा का एक बेहतरीन-सा एक पुल बने अमृत मेहता हैं। आन्द्रेयास के क्लीन शेव्ड की उस प्रसन्न, आत्मीय मुस्कान ने जैसे शुरू करने के लिए कहना चाहा था। अचानक ध्यान गया तो दिखा कि उनकी वे पतली-लम्बी उँगलियाँ पोरों से जुड़कर दोगुनी लम्बी हो गयी हैं। बाएँ हाथ की उँगली में पहनी वह अँगूठी, उसमें जड़ा चमकीला बड़ा-सा वह काला पत्थर पहले भी मेरा ध्यान अपनी ओर खींच चुके थे। मन हुआ कि इस अँगूठी को इतनी शान से पहने जाने का कारण पूछा जाए—''आपकी उँगली में यह अँगूठी...?''

उछल से पड़े एकदम—''बड़ा खूबसूरत सवाल है...यह मेरे पिताजी की सगाई की अँगूठी है। मेरे पिता की मृत्यु के बाद मेरी माँ ने इस अँगूठी को मुझे दिया था। मुझे बहुत अच्छा लगता है इसे पहनना। इसे देखकर पिता की याद आती है। लगता है मैं जुड़ा हुआ हूँ पिता से...।'' उँगलियाँ कुछ-कुछ उत्तेजित-सी अँगूठी को बार-बार उतार-पहन रही हैं। शान्त हुए तो छोटे-से उस बैग में से कुछ दवाएँ निकाली गयीं।

''ये दवाएँ...?''

''ऐसा कुछ खास नहीं। चार साल पहले मुझे दिल का हल्का-सा एक दौरा पड़ा था। तब से ले रहा हूँ ये दवाएँ। नहीं, तनाव या हादसे की वजह से नहीं, अपने जींस के लिहाज से है ये।

उनके पहले कहानी संग्रह 'नाख्टश्पील' जिसका शीला नाम से हिन्दी में अनुवाद हो चुका है, की कुछ कहानियों पर बात होती रही। फिर उनके उपन्यास 'लांत्स' ('घर-घर नाजी' नाम से हिन्दी में उपलब्ध) के कुछ पात्रों और घटनाओं को लेकर चर्चा हुई। 'घर-घर नाजी' के स्त्री पात्रों अन्ना जोर्डन और मिसेज एंर्स्ट का जिक्र आया तो थोड़े भावाकुल दिखे। आवेशयुक्त अन्दाज में बताने लगे—''तब मैं दस साल का था। मेरे पिता के एक दोस्त पिता को एक किस्सा सुना रहे थे—जो मैंने सुना था। दूसरे विश्वयुद्ध के समाप्त होने से दो दिन पहले मेरे अपने नगर में एक औरत को उसके बालों को खींचकर, उस पर तारकोल फेंककर आग लगाकर खुलेआम मौत के घाट उतारा गया था। मैं यह कहानी बार-बार सुनता रहा। इसे सुनकर दिल में बड़ी नफरत होती थी। दस साल का था तब मैं। फिर मैंने कल्पना की कि यदि ऐसा मेरी माँ के साथ होता तो क्या होता। मैंने यह देखा कि उसके वे पचासों पड़ोसी, जिन्होंने उसकी जान लेने में हिस्सा लिया था, किसी पर उसकी जिम्मेदारी नहीं आयी। मुकदमे के बाद सब आजाद घूम रहे थे।''...उँगलियाँ आपस में उलझी-लिपटी हैं। कुहनियाँ ऊपर नीचे उठ गिर रही हैं। साँसे तेज हो रही हैं। साँसें तेज हो गयी हैं और चेहरे को आक्रोश ने जैसे लाल कर दिया—''वितृष्णा हुई इस किस्से से क्योंकि युद्ध खत्म होने से दो दिन पहले मारा गया उसे। सब जानते थे कि युद्ध हारा जा चुका है और रूसी फौजें दरवाजे पर खड़ी थीं। सिर्फ इसीलिए मारा गया उसे क्योंकि एक रूसी युद्धबंदी के साथ उसकी प्रेम कहानी चल रही थी। क्योंकि उसके प्रेम संबंध थे रूसी से। नस्ल के आधार पर मारा गया उसे। एक जर्मन औरत एक घटिया नस्ल के रूसी से प्रेम कर रही थी। अगले सालों में मेरे सामने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह कहानी आती रही। लोग मुझसे पूछते रहे कि तुम इस घटना के बारे में जानते हो कुछ? जब मैंने पहले उपन्यास लिखने की सोची तो ज्यादा सोचने की जरूरत नहीं पड़ी। मुझे लगा कि यह कहानी मेरा पीछा कर रही थी और इस कहानी ने मुझे ढूँढ़ लिया है।''

मेरे दिमाग में पता नहीं क्यों अपने देश में औरतों के साथ घटी ऐसी ही क्रूर, अमानवीय कुछ घटनाएँ धक्का-मुक्की किए जा रही थीं—''क्या आज के हालात में भी किसी औरत के साथ इस तरह की घटना घटती है—घट सकती है?''

बड़ा विचित्र-सा भाव आया है आन्द्रेयास के चेहरे पर—''नहीं नहीं, आज की बात छोड़िए, उस समय भी इसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी। उस समय भी ये बड़ी क्रूर और हिंसक घटना थी।''

''हिटलर को लेकर आज आप और आपके देशवासी किस तरह से सोचते हैं? क्या यह सही नहीं है कि उसकी नकारात्मक...?''

''बिल्कुल, बिना किसी शक...एकदम नकारात्मक छवि है। थोड़े से, बहुत थोड़े से कुछ बेवकूफ लोग हैं जो अभी भी उसका गुणगान करते हैं।''

''अतिवाद या उग्रवाद को लेकर आपके यहाँ लोग आज क्या जी रहे हैं, किस तरह सोच रहे हैं?''

''आस्ट्रिया में लोग भौतिकवादी हैं। और भौतिकवादी का रूझान कभी धर्मान्धता की ओर नहीं होता। और आज अगर लोगों के पास सब कुछ ठीक-ठाक है—घर है, कार है तो फिर वे इस तरफ ध्यान नहीं देते। ऐसे किसी राजनीतिक और धार्मिक कट्टरवादी को मैं नहीं जानता।''

''राजनीतिक स्तर पर तो वहाँ भी हैं ऐसे लोग। फिर आपका यह कहना कि मैं नहीं जानता...?''

''नहीं, उनका वहाँ कोई महत्त्व नहीं है। नगण्य हैं। इनका एक राजनीतिक नेता हुआ करता था—वहाँ योर्ग हाइडर। वो ऐसा दक्षिणपंथी था जिससे खतरा हो सकता था। 1999 में उसकी पार्टी 28 प्रतिशत वोट लेकर संसद में आई थी। बाद में वह सरकार में भी था। अब इस समय उसका समर्थन 1.2 प्रतिशत रह गया है। कट्टर दक्षिणपंथी था वह और अब यह हाल है उसका।''

''हाँ, तो आप 'लांत्स' की प्रेरक उस घटना की बात कर रहे थे। 'लांत्स' के आधार पर आपको क्या लगता है कि रचना के जन्म के मूल में प्रतिभा, अभ्यास आदि की भूमिका प्रमुख है अथवा वह दैवीय घटना जैसी कोई चीज है?''

''नो—उस रचना का बीज उस औरत की कहानी है। पृष्ठभूमि नाजी युग है। बाकी सब कुछ कथा है। कथावस्तु का जहाँ तक प्रश्न है मैं हमेशा अपने बारे में लिखता हूँ...।'' गर्दन इधर-उधर घूम रही है। बोलते-बोलते सोचने का एक सिलसिला भी चल रहा हो जैसे —''मेरे विचार से हर लेखक के लेखन में एक खास विषय, एक खास थीम होती है जो उसके लेखन में बार-बार लौटकर आती है। मेरी जो थीम है—जीवन है और जीवन का एक ढाँचा है कि जीवन को कैसे गढ़ा गया है...। जिन पात्रों का मैं अपने लेखन में वर्णन करता हूँ, वे मेरे बहुत नजदीक हैं। उन्हें या तो मैं प्यार करता हूँ या नफरत भी करता हूँ— पर वे सारे पात्र मेरे जीवन से हैं।''

''आपके व्यक्तित्व में वह क्या है जिसके कारण आपकी रचनाओं के केन्द्र में प्रेम और विवाह से जुड़े प्रश्न बार-बार आते हैं। और आत्महत्या, पलायन, निराशा, अकेलेपन की स्थितियाँ भी बहुत बार आ उपस्थित होती हैं?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''दुनिया को प्रेम ही तो चला रहा है। भारत में भी यही होगा। पूरी दुनिया में भी यही है। जो प्रेम मेरी कहानियों में है उसको मैं देखता हूँ। आलोचनात्मक दृष्टि से देखता हूँ। मेरे अपने लिए दुनिया की सबसे महत्त्वपूर्ण चीज प्रेम है। उसमें—प्रेम में कई रंग, कई तहें हो सकती हैं। कई तरह से किया जा सकता है प्रेम। मैं अपनी माँ, पत्नी, भाइयों-सबको बहुत प्रेम करता हूँ। प्रेम में और पसन्द करने में यदि आप भेद करें तो मैं बहुत लोगों को पसन्द करता हूँ। और वास्तविकता यह है कि मैंने अपने खुद में यह पुष्टि करके देखी है कि मैं वास्तव में किसी से नफरत नहीं करता। मैं वास्तव में नहीं जानता कि घृणा क्या होती है। मगर ऐसे भी लोग हैं जिनके साथ मैं कोई सरोकार नहीं रखना चाहता।''

''क्या यह सचमुच संभव है कि व्यक्ति किसी से, कभी घृणा करे ही नहीं? आपके पात्रों, उनके कथनों में भी प्रेम और घृणा को लेकर कहीं-कहीं एक अन्तर्विरोध-सा दिखता है?''

''घृणा...नहीं, उस तरीके की नहीं। कंसेप्टों से नफरत करता हूँ। कोई अंध धार्मिक व्यक्ति किसी की गर्दन उतार दे वो घृणा है न। नफरत अब—जैसे 'भूख' कहानी है मेरी—तो उस भूख वाले हिस्से को मैं नफरत नहीं कहूँगा। उसके बारे में सोचने के तरीके की भिन्नता है। कंसेप्ट—हाँ, दूसरे लोगों को जो दुःखी और परेशान करते हैं, उनसे मैं नफरत करता हूँ।''

''आत्मकथा, पलायन, अकेलेपन जैसी स्थितियों की बात...?''

''हाँ, विषय बदल गया था न! तो हाँ, हर आदमी अपने लिए खुद जिम्मेदार है। जो लोग ऐसा करते हैं उन्होंने अपने जीवन को इसी तरह गढ़ा है। लोग अपने जीवन के जीने के तरीके को स्वयं चुनते हैं। जैसे एक तरीका है शादीशुदा जिन्दगी जीने का। तो कई बार वो जो जीने का ढंग है...जो उन्हें पुस्तक में प्रदर्शित परिणामों की ओर धकेलता है, वो उनके जीवन से ज्यादा ताकतवर निकलता है।''

''प्रेम और विवाह के अतिरिक्त और भी तो समस्याएँ होंगी ही वहाँ आपके समाज में?''

''क्यों नहीं? दूसरी समस्याएँ भी हैं। स्वभावतः होती हैं अन्य समस्याएँ! पर मैंने लेखक के रूप में वे समस्याएँ चुनी हैं जो उस समय मेरे मस्तिष्क में बैठी हुई थीं—जिनके साथ मैं उन दिनों जूझ रहा था।''

''आपके लेखक का स्वप्न क्या है?''

''मैं उम्मीद करता हूँ कि मैं भविष्य में भी अपने लेखन के सिर पर जीवनयापन करने योग्य रहूँगा। हाँ, है क्यों नहीं—पूरे देश में करीब पाँच सौ लोग होंगे, जो लेखन पर जीवन यापन कर रहे हैं। उनमें साहित्यवाले कम हैं लगभग एक प्रतिशत। उन एक प्रतिशत वालों में मैं और ऊपर होऊँ। यह मेरी एक बड़ी इच्छा है। और यह मैं अभी भी जानता हूँ कि यदि यह नहीं होगा तो भी मैं कुंठा का शिकार नहीं होऊँगा। क्योंकि अपने लेखन की वजह से मैं आज दिल्ली में बैठा हूँ और यह खूबसूरत साक्षात्कार दे रहा हूँ। इसी के कारण पूरी दुनिया में मुझे घूमने का मौका मिलता है। इसे भी मैं बड़ी सफलता मानता हूँ।''

''अपने लेखन की आप क्या भूमिका पाते हैं? अपने लेखन में ऐसा क्या खास लगता है आपको कि पाठक उसे पढ़े ही पढ़े?''

''अगर लेखक यह समझे कि मेरे कंधों पर दुनिया का बोझ है और मुझे दुनिया को बदलना है—तो साहित्य से दुनिया नहीं बदलती। अगर लेखक यह समझे कि अपने विजन से मैं दुनिया को या मानवता को बदल दूँगा तो इससे बड़ी बेवकूफी की बात कोई नहीं है। स्वर उत्तेजित-सा आवेशभरा हो गया है—''जो मैंने लिखा है उसकी मुझे अच्छी प्रतिक्रिया मिली है। मैं लेखक के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तौर पर पाठक को सोचने के लिए मजबूर करता हूँ। मैं लोगों को यह बताकर मदद नहीं करता कि दुनिया इस समय कैसी है। उसे खुद मेरे लेखन में से वह देखना ढूँढना है जो वह अपने लिए चाहता है।''

''ऐसा क्यों है कि आपकी कई रचनाओं में कुछ दृश्य, स्थितियाँ, कुछ पात्रों का स्वभाव, आदतें और यहाँ तक कि नाम भी लगभग समान हैं—और बार-बार दोहराव है उनमें?''

''बड़ा अच्छा ऑब्जर्व किया है आपने''...हँसे हैं देर तक...''अपने आप आता है यह। जैसे मैंने ये सिचुएशन बार-बार अनुभव की हैं—हाँ, जैसे कई रचनाओं में आता है कि पात्र रात में सड़कों पर निकल पड़ता है घूमने। मुझे खुद भी पसन्द है यह। हाँ, कंधे उचकाना भी कई बार आया है। और यह भी मुझे पसन्द है।''

''इन दिनों क्या लिखने का मन है? क्या कोई बड़ी रचना आती है ख्यालों में?''

''इन दिनों का मन...मैं बेहतर लिखना चाहता हूँ। लेखन में बेहतर बनना चाहता हूँ। और वो कोई बहुत बड़ी रचना बने ये सोचकर मैं नहीं लिखता।''

''बेहतर का आपका मानदंड?''

''जो पीछे कई बार मेरी गलतियाँ थीं, अब न हों। जैसे? जैसे लांत्स में पात्र बहुत ज्यादा थे...। और अगले उपन्यास में और भी स्पष्टतर होने की कोशिश करूँगा। बेहतर का मानंदड? मैं—मेरा जीवन। मुझे दिलचस्पी सिर्फ अपनी किताब में है, लेखन में है।''

''इस आधार पर अपनी पिछली पीढ़ी से आप खुद को कितना अलग पाते हैं?''

''मैं कहीं भी हूँ। चाहे इंग्लैंड हो, आस्ट्रिया हो या भारत हो—मैं उससे पृथक ही लिख रहा होऊँगा, जो पहले लिखा गया है। मैं एक प्रतिस्पर्द्धी के रूप में लिखूँगा। उनसे बेहतर नहीं तो कम से कम उतना अच्छा लिखने की कोशिश होगी मेरी।''

''किस पीढ़ी के किन खास लेखकों के लेखन ने आपको प्रभावित किया है?''

जिन्होंने मुझे प्रभावित किया है उनमें प्रमुख हैं—हैमिंग्वे, दास्ताव्हस्की, एडवर्ड फिट्जराल्ड, थॉमस बैर्न हर्ट, काफ्का, फ्लाबेयर...हाँ, शॉपेनहावर ने भी मुझे प्रभावित किया है।'' थोड़ा रूक कर सोचा गया है कुछ—''आपने अकेलेपन, निराशा, मृत्युबोध की बात की थी जरा पहले—बड़ा मुश्किल है इसका जवाब देना। पर मैं जो लिखता हूँ, वह मुख्यतया मेरे अपने जीवन से होता है। और सिर्फ मेरे से नहीं, बल्कि औरों से जो सुनता हूँ, उससे भी। पर मैं समझता हूँ कि जो हैमिंग्वे, फिट्जराल्ड, बैर्नहर्ट की शैली है, उसने मुझे बहुत प्रभावित किया है और उनकी शैली का मुरीद हूँ।''

''ऐसा क्या खास लगता है आपको उनकी शैली में?''

''हाँ, जैसे हैमिंग्वे—मितव्ययी अंदाज में बातें संक्षिप्त में बहुत कुछ कह देना।''

''ऐसा क्यों है कि आप अपनी कहानियों के शुरू में कोई न कोई एक उद्धरण अवश्य देते हैं?''

''जब उद्धरण मैं देता हूँ तो उसमें कहानी का मूड बन जाता है। वह मूड को परिलक्षित करता है। या फिर उस उद्धरण में किसी एक ढंग से उस कहानी का बीज होता है। ऐसा आइडिया, जो उस कहानी की ओर लेकर जाता है।''

''वैसा करना कहीं आपकी कोई कमजोरी, बैसाखी अथवा बड़े और प्रसिद्ध नाम का लाभ लेने की कोशिश तो नहीं?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहीं कोई विकार नहीं, मुद्रा में जरा अन्तर नहीं और अन्तर में कोई उद्वेग नहीं।—''नहीं, मुझे ऐसा नहीं लगता। मुझे लगता है कि एक तरफ से यह पूरे टेक्स्ट को और भी संपन्न करता है। साथ ही यह एक ऐसे लेखक के प्रति अपनी पसन्द दिखाने की या प्रशंसा करने की एक अभिव्यक्ति है, जिसे मैं बहुत पसन्द करता हूँ। नाम का लाभ लेने की जहाँ तक बात है तो वो अन्दर का देखकर शायद थोड़ा आश्चर्य होता हो, पर किताब के ऊपर शुरू में तो मेरा नाम है। और फिर उद्धरण ऐसे लेखकों के भी हो सकते हैं जिन्हें पाठक पसन्द न करता हो। नहीं, किसी के प्रभाव की बात नहीं। यूरोप में बहुत लोग ऐसा करते हैं। कहानी के शुरू में उद्धरण देते हैं।''

''इससे ऐसा भी तो लगता है कि आप किसी विचार से कहानी बुनना शुरू करते हैं या...?''

''नहीं, कहानी मैं पहले लिखता हूँ। उद्धरण का चयन बाद का। उद्धरण दूसरा रूप होता है जो उस कहानी बोले जाता है। भाषा, विषय, शैली में से कौन पहले या अधिक स्ट्राइक करता है—यह सब सोचकर नहीं लिखा जा सकता। इन सबको एक दूसरे के अनुरूप होना चाहिए। कम से कम मैं तो इन्हें अलग नहीं कर सकता।''

''जी, याद आया। एक यह बात भी तो आपसे जानना चाहता था। 'लांत्स' में आपने तीन बंदरों का जो प्रतीकात्मक उपयोग किया है, वह क्या महात्मा गाँधी का प्रभाव रहा है?''

''नहीं, ये जो तीन बन्दर थे—हिटलर के शासन में वे तानाशाही के प्रतीक थे। तब हमारे देश में बहुत से लोगों की लिखने की मेजों पर ये बंदर खड़े होते थे। हाँ—सिम्बालिक थे। तानाशाही के प्रतीक थे। ये तो मुझे मालूम था। बहुत पहले से जानता था कि तीन बंदर गाँधी से जुड़े हैं। पर नाजी शासन में ये तानाशाही के प्रतीक थे और 'लांत्स' में वे उसी रूप में आए हैं।''

''यहाँ आने से पहले भारत को आप कितना जानते थे?''

''सहज-सा उनका भोलापन सकुचाया-सा लगा। आवाज मन्द हुई, उसमें विनम्रता का एक खास-सा भाव आ मिला—''अमृत मेहता को जाना-पढ़ा है। और हाँ, अरुंधति राय की 'गॉड ऑफ स्माल थिंग्स' को जर्मनी में पढ़ा था। नहीं, मुझे बहुत पसन्द नहीं आया। बिखरा-बिखरा सा, कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा-सा मिलाकर...। चालीस पृष्ठ पढ़कर ही ऊब गया था। उसकी संरचना ही कुछ ऐसे ढंग से थी कि मुझे पसन्द नहीं आयी। उसकी विषयवस्तु को पकड़ लेना ही मेरे लिए मुश्किल हो गया। नहीं, अनुवाद की कोई कमी नहीं थी। मेरा खयाल नहीं है कि अनुवाद में कोई कमी थी। मुझे वे चीजें पसन्द हैं जो सीधे बात पर आ जाएँ। हाँ, जैसे हैमिंग्वे...।''

''आप अपने यहाँ सामाजिक सम्बन्धों में क्या, कैसा बदलाव आता देख रहे हैं?''

''भाईचारे की भावना है कहाँ...पर...पिछले पंद्रह सालों में वहाँ पर लोग व्यक्तिवादी, ईगोइस्ट बनते जा रहे हैं। एक दूसरे की सहायता—चिंता की भावना में कमी आ रही है...और यह बड़े अफसोस की बात है।''

''आपकी रचनाओं को पढ़ा तो लगा कि औरत की जिन्दगी में वहाँ भी सब अच्छा ही अच्छा तो नहीं ही है...? अपने यहाँ की स्त्रियों की जिन्दगी के बारे में आप क्या और कैसे सोचते हैं?''

''आस्ट्रिया में सबको समान अधिकार है। महिलाओं को भी समान अधिकार है। पर सैद्धांतिक रूप से। व्यवहार में जहाँ वे कारखानों में मजदूरी करती हैं, वहाँ औरतों को मर्दों से कम तनख्वाह दी जाती है। उद्योग, व्यापार में शीर्ष पदों पर महिलाओं की संख्या कम है। यूनीवर्सिटीज में प्रोफेसर के पद पर बहुत कम महिलाएँ पहुँचती हैं। मगर पचास के दशक से हालत सुधर रही है और अब तक काफी सुधर चुकी है। यहाँ राजदूत के पद पर महिला है— युट्टा स्टेफन बास्टल!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परिवारों में स्थितियाँ भिन्न-भिन्न हैं। ऐसे परिवार हैं जिनमें माता-पिता दोनों काम करने जाते हैं। दो बच्चे हैं उनके। कई ऐसी भी औरतें हैं जो अकेली ही बच्चों की देखभाल करती हैं। विवाह के बाद बच्चे माँ के साथ रहते हैं। तीसरा सबसे बड़ा ग्रुप वो है— जो आदमी है, वो काम करता है और औरत गृहिणी होती है। घर की देखभाल करती है। चौथा ग्रुप है जिसमें बिना विवाह के बंधन के भी पुरुष और स्त्री ने घर बसाया होता है।''

''सामाजिक सम्मान के लिहाज से इनमें से किस वर्ग की सद्गति मानी जा सकती है?''

''सामाजिक स्तर पर सब तरह की स्थिति स्वीकार्य। सबको सम्मान प्राप्त है वहाँ आज की स्थिति में।''

''और दुर्गति?''

''इस स्थिति के कारण एक ही समय में सब कुछ संभव है।''

''आपके देश के वृद्ध, बच्चे और युवा किस तरह जीवन जी रहे हैं वहाँ?''

''मेरे देश के वृद्ध, बच्चे और युवा''...सीधी तर्जनी होंठों पर आ लगी है। जैसे सोचने की जरूरत आ पड़ी हो अब—''बड़ी अच्छी हालत है उनकी। आस्ट्रिया में बच्चे अच्छा जीवन जी रहे हैं। युवा—एक तो वे दिशाहीनता से परेशान हैं, दूसरा बेरोजगारी से। अधिकांश वृद्धों के लिए सरकार की तरफ से हरतरह से अच्छा प्रबंध है। सरकारी नीतियों की वजह से वे सब परेशानियाँ नहीं हैं जो...।''

''तब मान लूँ कि वृद्ध खुश हैं और बच्चे भी...?''

''हाँ, खुश हैं। हाँ, बच्चे अलग रहने पर खुश हैं। जब तलाक होता है तो उस समय सबसे बढ़िया समाधान यही होता है। और बच्चे भी इसे सही समझते हैं। अगर बच्चों को कोई परेशानी है तो इसमें दोष बड़ों का है।''

''भावना और अहसास किस स्थिति, किस हाल में हैं वहाँ?''

''भावनाएँ अभी भी जिंदा हैं। बढ़ते भौतिकवाद के कारण भावनाओं और भौतिकवाद में अभी टकराव तो जरूर है। पर भावनाएँ अभी मरी नहीं हैं।''

''यहाँ और वहाँ के युवा को कहाँ समान और कहाँ अलग पाते हैं आप?''

''भारत के युवाओं को तो मैं जानता नहीं हूँ इसलिए यह जवाब देने की हालत में नहीं हूँ।''

अंदर जला दी गयी रोशनियों ने बाहर के अँधेरे का अंदाज करा दिया था। अँधेरे के उस अंदाज ने मुझे अलीगढ़ पहुँचने में बहुत देर हो जाने की चेतावनी भी दे दी थी। तय समय तो कब का बीत चुका था। 'चलते-चलते एक चाय और'...के आन्द्रेयास के आग्रह को टाल पाना मुमकिन नहीं था। अधिकाधिक बातें करते रहने का लोभ भी तो पीछा नहीं छोड़ रहा था।

''अच्छा, अब कुछ सवालों का उत्तर एक-एक वाक्य में, एक-एक शब्द में...?''

''ठीक है, पूछिए?''

''और फिर अचानक वह दिलचस्प-सा एक खेल शुरू हो गया था।''

''पहले यह बताएँ कि आस्ट्रिया की किस बात पर आपको गर्व है?''

''सामाजिक भाईचारे पर।''

''और चिंता?''

''रूढ़िवादिता से मुझे चिंता है।''

''और गुस्सा?''

''नव उदारवाद पर गुस्सा है।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''आपकी नजर में भय?''

''एक नकारात्मक शक्ति है।''

''सुन्दर?''

''खूबसूरत मेरी बीवी है?''

''मृत्यु?''

''मौत जिन्दगी का एक हिस्सा है।''

''जिन्दगी?''

''जिन्दगी सबसे मूल्यवान तोहफा है।''

''दुनिया?''

''दुनिया कहानियों से भरी पड़ी है।''

''स्त्री?''

''एक निरन्तर चुनौती है।''

''पुरुष?''

''अक्सर बहुत जटिल होते हैं।''

''देह?''

''मेरी देह मेरी मित्र है।''

''आत्मा?''

''आत्मा एक रहस्य है।''

''ईश्वर?''

''वो इस दुनिया का नहीं है।''

''कविता?''

''कविता जीवन है।''

''आलोचक?''

''आलोचक एक तथ्य है—जिसकी परवाह नहीं की जानी चाहिए।''

''क्या कभी शुरू में आपने कविता लिखी?''

''सीधे गद्य। सीधी बात पसन्द। न लिखी, न कविता लिखने का कोई इरादा है।''

चलते-चलते भी सवालों-जवाबों का क्रम जारी था। और उसी कौशल और तेजी से अनुवाद का भी—''देखने के स्तर पर किस तरह के स्त्री-पुरुष को सुन्दर-काम्य मानते हैं आस्ट्रिया के लोग?''

''लम्बे, सुनहरे बालों वाली औरत पसन्द। बड़ी छातियाँ, उन्नत उरोज, लम्बी, चश्मा न चढ़ा हो, हरी आँखें- चमकती-सी बड़ी आँखें...और पुरुष- लम्बे, तगड़े, मजबूत, गठे, पौरुषवान और कुलीन।''

''सुन्दर स्त्री और पुरुष के बारे में आप अपनी पसन्द को कैसे व्यक्त करना चाहेंगे?''

''सुन्दर स्त्री—मुस्कान ऐसी थी जिससे बचाव नहीं था। और पुरुष—उसने कमरे में प्रवेश किया और सारी स्त्रियों के सिर उसकी ओर मुड़ गये।...लेकिन यह भी कि जब मैं औरत की खूबसूरती देखता हूँ तो उसकी न—उम्र, न लम्बाई-चौड़ाई—कुछ भी नहीं देखता। सिर्फ उसकी मुस्कान देखता हूँ। हैमिंग्वे ने कहा था कि किसी भी लेखक का सबसे बड़ा जो शत्रु होता है, वो विशेषण होते हैं—उनसे बचना चाहिए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सिनेमा

ओशियन सिनेफैन फिल्म महोत्सव

लाल बहादुर ओझा

प्रतिरोध का सिनेमा

1920 के आसपास जब तुर्की के आधुनिकीरण की प्रक्रिया शुरू हुई थी अतातुर्क कमाल ने सिनेमा के महत्त्व को कुछ इस तरह से रेखांकित किया था, ''सिनेमा वह महत्त्वपूर्ण खोज है जिससे आनेवाले दिनों में विश्व सभ्यता का चेहरा बदल जाएगा। यह आग, बिजली और महादेशों की खोज से कहीं ज्यादा मायने रखता है। सिनेमा वह सँभावनाएँ खड़ी करेगा जिसके जरिए इंसान एक-दूसरे के बारे में जान सकेंगे, यह वह अवसर सम्भव करेगा कि एक-दूसरे के बीच मेल-मिलाप और प्यार बढ़ सके। विचारों के मतभेद दूर कर मनुष्यता के वास्तविक आदर्श से लोगों का परिचय करा सकेगा...।''

अतातुर्क किस हद तक सिनेमा की अपनी इस अवधारणा को साध सके यहाँ इस विवेचन का अवसर नहीं है, परन्तु बाद के दिनों में भी लोगों ने जब सिनेमा को समझने की कोशिश की, उसकी जादुई प्रभाव क्षमता से इनकार नहीं कर सके। किसी ने इसे अपनी प्रभुता स्थापित करने का औजार बनाया तो इसे सामाजिक परिवर्तन का माध्यम मानने और बरतने वालों की भी कमी नहीं रही है। इस सन्दर्भ में सिनेफैन एशियाई फिल्म समारोह का जिक्र करें तो वह लगातार हमें फिल्मों के ऐसे संसार में ले जाता रहा है जहाँ मानवीय सरोकार केन्द्र में है। देश और काल के मुताबिक उसकी संरचना, स्वरूप, केन्द्रबिन्दु और अन्दाज में फर्क हो सकता है, परन्तु उसकी चिन्ताएँ मनुष्यता को बचाने की, प्रकृति के प्रति संवेदनशील होने की, टकराव की जगह संवाद की, एकाकीपन की जगह आपसदारी की हैं। एशियाई सिनेमा में वर्चस्व की संस्कृति और दुनिया को एकरस बना देने के प्रतिरोध के स्वर का विविध रूप मौजूद है। इस सिलसिले में न केवल स्थानीय बल्कि वैश्विक ताकतों से भी लोग लोहा लेते दिखाई देते हैं। जितनी शिद्दत से लोग बाहरी तत्त्व को पहचानने की कोशिश करते हैं उतनी ही त्वरा से अपने गिरेबान में भी झाँकते हैं।

अस्सी के दशक में कद मिलने लगा था। विकसित कर चुका था शैली व स्वरूप में भी जापान और तुर्की इसके

OSIAN's CINE FAN 8th festival of asian cinema

एशियाई सिनेमा को अपना वह न केवल अपनी भाषा बल्कि विषय, तकनीक, सक्षम हो चुका था। भारत, तीन बड़े खिलाड़ी थे। और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देशों में भी धीमा ही सही काम जारी था। मगर कहाँ, क्या और कैसा काम हो रहा है, यह जानना मुश्किल था। प्रतिभाशाली फिल्मकार व अभिनेता अलग-अलग दूरियों और सीमाओं में सिमटे थे। इससे निजात पाने के लिए फिल्म महोत्सवों का सिलसिला शुरू हुआ। एशियाई फिल्मोत्सव विभिन्न सांस्कृतिक धाराओं और अभिव्यक्तियों के समागम का मंच बनता गया। इस उत्सव में हर तरह की सीमाओं को हम पिघलते हुए देखते हैं। मुख्यधारा के शोर में गुमनाम और दूर देश में भुला-बिसरा दिए गए लोगों को भी यहाँ देखने-सुनने का सुअवसर मिलता है। यहाँ हम किसी भी आग्रह, दुराग्रह, व्यवस्था और नैतिकता की कतर-ब्योंत से मुक्त रचना से सीधे रू-ब-रू होते हैं।

दिल्ली का यह फिल्म महोत्सव एशिया में हो रहे सामाजिक और राजनीतिक बदलावों से परिचय तो कराता ही है, यह इस्लामी दुनिया के लिए एक झरोखा भी है। इस्लामी दुनिया, जिसका घना क्षेत्र अरब देशों में है, के प्रति एक अजीब तरह का संशय, अटकलों और अफवाह का माहौल पूरी दुनिया में है। दरअसल जहाँ संवाद का माध्यम नहीं होता, वहाँ शंका और अफवाह कोई नई बात नहीं है।

आम धारणा यह है कि अरब देशों का समाज बन्द समाज है। महिलाओं की स्थिति खराब है और वहाँ की राजनीति आतंकवाद की पोषक है। लेकिन जब हम इन फिल्मों से गुजरते हैं तो पाते हैं कि वहाँ की छवि भी कोई एकरस नहीं है। यथास्थितिवाद, दकियानूसी विचारों, कट्टरपंथ के प्रति वहाँ भी हलचल है, संघर्ष है, पुराने और बन्द खयालातों से मुक्ति पाने की छटपटाहट है और लोग उससे बाहर आने की कोशिशों में लगे हैं। वहाँ के इंसान भी दुःख, अवसाद, खुशी और प्रेम को वैसे ही महसूस करते हैं, दमन और हिंसा से उतना ही नफरत करते हैं जितना की कहीं और। उनमें जीवन का अगाध सौन्दर्यबोध है और वे भी एक खूबसूरत दुनिया का सपना देखते हैं। कहा जाता है कि बदलाव की पहली बयार कविताओं में आती है। इस्लामी दुनिया के बारे में यह बात हम सिनेमा में महसूस कर सकते हैं। अरब समाज की पूरी व्यथा-कथा को वहाँ का सिनेमा बड़े ही रोचक और किस्सागोई के अनूठे अन्दाज में पेश करता है।

ओशियन सिनेफैन फिल्म महोत्सव की निदेशक अरुणा वासुदेव कहती हैं, ''अरब की फिल्मों में लोगों की गहरी रुचि रही है। इस महोत्सव में अरब खण्ड की शुरुआत तीन वर्ष पहले की गयी थी। और इस खण्ड की लोकप्रियता लगातार बढ़ती गई है। इसकी वजह सिर्फ राजनीतिक स्थितियाँ ही नहीं हैं, बल्कि मेरा मानना है कि अगले वर्षों में अपनी विशिष्ट अन्दाज के कारण अरब सिनेमा ही विश्व सिनेमा का नया स्वर होगा।''

अरब का सिनेमा

यह जानना आश्चर्यजनक है कि सिनेमा की उम्र सौ से ज्यादा की हो चुकी है लेकिन अभी भी बहुत से समाजों में इसको लेकर कई तरह के प्रतिबन्ध हैं। सिनेमा की हू-ब-हू प्रस्तुत करने की ताकत से वे इतने भयातुर हैं कि इसे अपनाने से डरते हैं। एशियाई फिल्मों के आठवें ओशियन सिनेफैन उत्सव में सउदी अरब की पहली फिल्म का प्रीमियर एक ऐसा ही अनुभव रहा है। पहली फिल्म सिर्फ इस मायने में कि एक अभिनेत्री और फिल्म के निर्माता सउदी अरब के हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'टुडे एण्ड टुमारो' नामक इस फिल्म का निर्देशन टोरंटो में बसे फिलीस्तीनी सिनेकार इजीडोर मुसल्लम ने किया है जो खुद ईसाई हैं। इस फिल्म में पहली बार किसी सउदी अभिनेत्री ने काम किया है। फिल्म के निर्माता और अनुदानकर्ता सउदी अरब के राजकुमार अलवालीद बिन तलाल बिन अब्दुलअजीज अलसउद हैं। फिल्म की शूटिंग सउदी अरब के पड़ोसी दुबई में की गयी है, जहाँ तुलनात्मक रूप से कुछ खुलापन है। सउदी अरब में इस तरह की गतिविधि पर पाबंदी है। इस फिल्म का विश्व प्रदर्शन भारत में हुआ क्योंकि सउदी अरब में सिनेमा हाल ही नहीं है। बकौल निर्देशक सन् 2007 तक़ सउदी अरब की राजधानी रियाद में एक सिनेमा काम्पलेक्स बनाने का सरकार का इरादा है। फिलहाल वहाँ के लोग टीवी चैनलों और डीवीडी के जरियेश ही सिनेमा देख पाते हैं।

सामाजिक ड्रामा और रोमांटिक कॉमेडी से बुनी गयी यह फिल्म अरबी समाज में महिलाओं के दमन, दबे-छुपे रोमांस और अपनी पहचान की इच्छा को अभिव्यक्त करती है। इस फिल्म में हम आधुनिकता और परम्परा के बीच झूलते सउदी परिवारों को देखते हैं। फिल्म की छोटी-छोटी दृश्यावलियाँ सउदी संस्कृति, सामाजिक मान्यताओं और रुढ़ियों से हमारा परिचय कराती है। अधिकांश अरब फिल्मों का स्वर और अंतर्वस्तु यही है।

फिल्म की कथा एक अरब व्यवसायी की बेटी के विवाह की तैयारी के इर्द-गिर्द घूमती है। अभिभावक बेटी का रिश्ता किसी धनाढ्य और सामाजिक प्रतिष्ठा वाले व्यक्ति से करना चाहते हैं, लड़की का भाई खालिद किसी धर्मनिष्ठ पवित्र मुसलमान से, जबकि लड़की में अपनी पहचान पाने और स्वावलंबी होकर जीवन जीने की आकांक्षा है। आगे की कथा में एक कट्टर धर्मगुरु के प्रभाव में खालिद का मतिहरण और इस प्रक्रिया में उसके और उदार परिवार के बीच बढ़ते मतभेद को रोचक ढंग से फिल्माया गया है।

खालिद का चरित्र जिस ढंग से विकसित होता है सहज ही दर्शकों का ध्यान अलकायदा नेता ओसामा बिन लादेन की ओर जाता है। अलकायदा का सरगना ओसामा बिन लादेन, सउदी अरब के अमीर घराने में पैदा हुआ था। लेकिन वह उम्र के साथ-साथ परिवार के रहन-सहन और पश्चिमी मुल्कों के साथ आर्थिक और सामरिक सम्बन्धों से, जो कि वहाँ के अमीरों की आम संस्कृति है, उकता गया और उसका रिश्ता कट्टरपंथी इस्लामिक धारा से हो गया। और आज की तारीख में वह इस्लामी कट्टरपंथ का पर्याय है। दुर्भाग्य यह है कि ओसामा की छवि पूरी मुसलिम समाज पर आरोपित हो चुकी है।

हालाँकि फिल्म के निर्देशक इस बात से इनकार करते हैं कि खालिद, ओसामा का प्रतिरूप है। वह कहते हैं—''यह फिल्म सउदी जनता के बारे में है जिसमें वैसे ही इंसानी जज्बात हैं जैसा कि अन्य किसी देश या समाज की जनता में होता है—वे खुश होते हैं, गुस्सा करते हैं और माफ करना भी जानते हैं। वे बहुमुखी चरित्रवाले लोग हैं। आम तौर पर अरबों की छवि एकरैखीय है। यह फिल्म इस मिथ को तोड़ती है।'' मुसल्लम का यह मानना है कि यह फिल्म सउदी अरब में उदार और कट्टर मतावलंबियों के बीच संवाद और समन्वय के उद्देश्य से बनायी गयी है। फिल्म यह जिरह करती है कि दोनों पक्ष भले ही एक दूसरे को स्वीकार न करें, लेकिन कम-से-कम एक-दूसरे की सुनने की तो कोशिश करें। वे मानते हैं कि अगर ऐसा होता है तो यह बड़ी उपलब्धि होगी। हालाँकि उनका यह भी कहना है कि कट्टरपंथी इस फिल्म का दुरुपयोग यह कहकर कर सकते हैं कि आधुनिकता का प्रभाव देश के युवाओं को इस्लाम के रास्ते से भटका देगा। परन्तु मुसल्लम को आशा है कि यह फिल्म सउदी अरब के सिद्धान्तकारों और व्यवहारवादियों के बीच एक सार्थक विमर्श शुरू करा सकेगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इराक में जन्में मोहम्मद अल दारादजी की फिल्म 'अहलाम' में इराकी जमीन पर अमेरिका के नेतृत्व में हुए हमले के बाद, लोगों की बदहाल जिन्दगी का सच्चा दस्तावेज पेश करने की कोशिश की गई है। फिल्म सद्दाम के बाथ पार्टी के शासन और उसके पतन के बाद उपजी स्थितियों की तुलना करती है। उनतीस वर्षीय निर्देशक दरादजी कहते हैं कि मैं किसी भी तरह के युद्ध के खिलाफ हूँ क्योंकि मेरे लिए युद्ध जानवरों की भाषा है। मेरे लिए यह कहना कठिन है कि सद्दाम के समय बहुस्तरीय अपराध में बन्द राजनीतिक व अन्य कैदियों पर हो रही नृशंसता ज्यादा थी या अभी! बर्बरता तो बर्बरता ही है चाहे वह जिस ओर से आए।

अरब खण्ड में अल्जीरिया, मिस्र, इराक, लेबनान, ओमान, सीरिया, ट्युनिशिया और यमन से आई नौ फिल्में भी यहाँ दिखाई गई। ये फिल्में अरबी समाज के विभिन्न पहलुओं और मान्यताओं को लेकर उपस्थित होती हैं। मसलन 'द डॉन' हालाँकि अपनी संरचना में काफी सपाट और तकनीक में भी कमजोर फिल्म है, लेकिन वह समुद्र में बढ़ रही मानवीय दखल और उससे प्रभावित हो रही संस्कृति से हमारा परिचय कराती है। प्रदूषण के कारण अब मछलियों की उतनी फसल नहीं होती, लिहाजा लोगों को अपना परम्परागत पेशा छोड़कर शहरों की तरफ भागना पड़ रहा है। दूसरी फिल्में भी अन्य कोशिशों और विपत्तियों से हमारा परिचय कराती हैं। कई पुरस्कारों से नवाजी गई हनी अबु असद की फिल्म 'पैराडाइज नाउ' आत्मघाती दस्तों की कहानी बयान करती है। अल्जीरियन फिल्म 'हैमलेट ऑफ वुमन' आतंकवादी हमलों से त्रस्त होकर हथियार उठाने पर विवश महिलाओं की कथा बयान करती है। मिस्र के चर्चित निर्देशक मोहम्मद खान 'डाउनटाउन गर्ल्स' के जरिए कैरो में हाशिए के लोगों की जीवन व्यथा, आनन्द और उनके घोर आशावादी मिजाज से हमें रू-ब-रू कराते हैं।

अरबी फिल्मों में दो महिला निर्देशकों ट्युनिशिया की सल्मा बकर (ऑबलिबियन ऑफ फ्लावर) और लेबनानी निर्देशक जोसिलिन साब की फिल्म 'दुनिया' की उपस्थिति सुखद आश्चर्य रहा। पहली फिल्म एक महिला की प्रसव पीड़ा से मुक्त होने की चाह में नशीली दवाओं के गिरफ्त में चले जाने की कहानी है तो दूसरी फिल्म में एक लड़की दुनिया, पेशेवर नृत्यांगना बनना चाहती है। वह सूफी प्रेम कविताओं में उदात्त भाव पर शोध भी कर रही है। इस फिल्म में दुनिया की दो यात्राएँ हैं—एक बाहर की और एक भीतर की। इन दोनों मोर्चों पर उसे तमाम तरह की सामाजिक रुढ़ियों और कठिनाइयों से जूझना पड़ता है। नृत्य के अभ्यास में उसका गुरु कहता है कि द्वैत चित्त में नृत्य हासिल नहीं होता। हर पिंड का अपना नृत्य है और नृत्य का बेजोड़ संतुलन है। इस मायने में यह फिल्म कई बार हमें भारतीय संवेदनशीलता के करीब ले जाती है। अन्तिम दृश्यावली में नृत्य करती हुई दुनिया एक ऊँची छत पर दिखती है। दृश्य इस तरह से रचा गया है कि उसमें सिर्फ वह है और उसका नृत्य है और आसमान है। शहर, समाज, उसके प्रतिबंध, उसकी नैतिकताएँ लाँग शॉट में धूमिल होते नजर आते हैं। बेरुत में जन्मी और अर्थशास्त्र में स्नातक जोसिलिन साब युद्ध संवाददाता रह चुकी हैं और अब अरब देशों में मानवाधिकारों के लिए एक जाना-पहचाना नाम है। बीसियों डाक्युमेंट्री बनाने के बाद अब वह फीचर फिल्मों की ओर अभिमुख हैं। 'दुनिया' उनकी तीसरी फिल्म है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस श्रृंखला में ईरानी फिल्मों के जिक्र के बगैर बात पूरी नहीं होती। दरअसल अरब खण्ड की पहचान बनाने में ईरानी फिल्मों का बड़ा हाथ रहा है। तमाम तरह के प्रतिबंधों के बीच ईरानी सिनेमा ने अपनी एक तरह की शैली और किस्सागोई विकसित की है। ईरान के मोहसिन मकमलबाफ विश्व सिनेमा में एक बड़ा नाम हैं। हालाँकि ईरान में उन्हें अपनी आजाद अभिव्यक्ति की सजा भुगतनी पड़ी है और अब वह ताजिकिस्तान में रह रहे हैं। सिनेफैन के अरब खण्ड में विशेष तौर पर उनकी फिल्मों का आकर्षण रहता है और पिछले तीन वर्षों में उनकी सभी फिल्में प्रदर्शित हो चुकी हैं। इस बार उनकी दो फिल्में 'स्क्रीम ऑफ द एंट्स' और 'सेक्स एण्ड फिलॉसफी' दिखाई गईं। सेक्स एण्ड फिलॉसफी में वह प्रेम और सेक्स के भेद में उतरते हैं। यह एक ऐसे नृत्य गुरु की कहानी है जिसके जीवन में चार औरतें हैं। अपने चालीसवें जन्मदिन पर उसमें यह समझने का फितूर सवार होता है कि क्या वह सचमुच चारों को प्रेम करता है। पुनरावलोकन में वह यह भी देखने की कोशिश करता है कितने वक्त के लिए उनके बीच सच्चा प्रेम रहता है। इस खोज में उसे कई तरह के सत्य मिलते हैं जिनमें से एक यह भी है कि उसकी एक प्रेयसी भी उसी तरह के कई लोगों के संपर्क में है। पूरे आत्मविश्लेषण में वह पाता है कि समकालीन समय का अभिमुखीकरण सेक्स की ओर होता गया है और वह सच्चे प्रेम से निरंतर दूर होता जा रहा है।

जफर पनाही की फिल्म 'ऑफसाइड' समारोह की समापन फिल्म थी। वह इस फिल्म के जरिए मुसलिम समाज में महिलाओं के कम जगह को नए परिप्रेक्ष्य से प्रकाश में लाते हैं। ईरान में फुटबॉल की लोकप्रियता है लेकिन वह पूरी तरह से पुरुषों का खेल है। औरतों के लिए खेलना तो दूर मैच देखने तक पर मनाही है। लेकिन दीवानगी तो दीवानगी है। महिलाएँ और खास तौर से युवतियाँ अपनी इस दीवानगी के लिए किसी भी हद तक जा सकती हैं। वे मैच देखने के लिए पुरुषों का वेश अख्तियार करती हैं। ऊँचे दामों पर टिकट खरीदती हैं। और यहाँ तक कि जेल जाने तक के लिए तैयार होती हैं। एक मैच की पृष्ठभूमि में, जिसमें सिर्फ वहाँ हो रही गतिविधि का शोर हम सुन पाते हैं, जफर ने बहुत ही जीवंत तरीके से इस विषय को फिल्माया है। अपने स्वरूप में यह फिल्म डाक्युमेंट्री लगती है। पनाही कहते हैं कि इसके लिए उन्होंने पेशेवर अभिनेताओं की जगह आम लोगों से ही काम लिया है। यह फिल्म ईरान में प्रतिबंधित है।

हालाँकि अरब फिल्में संख्या में बहुत कम हैं। कई देशों में फिल्म का कोई माहौल नहीं है, न ही आधारभूत व्यवस्थाएँ हैं। इसलिए कई बार देश से बाहर रहकर या कुछ अन्य तरीकों के साथ वहाँ के लोग सिनेमा को अपना माध्यम बना रहे हैं। इनमें से बहुत सारी फिल्में वहाँ की सांस्कृतिक और सामाजिक स्थितियों का पुनरावलोकन करती हैं, परम्परा को प्रश्न के घेरे में लाती हैं और महिलाओं तथा हाशिये के लोगों की स्थिति उजागर करती हैं।

द मिडिल पाथ

बुद्ध की 2550 वीं जयंती के उपलक्ष्य में इस फिल्मोत्सव में 'बुद्ध : द मिडिल पाथ' का खण्ड था। पिछले 2000 से ज्यादा वर्षों से बुद्ध हमारी स्मृति में बने रहे हैं। और जैसे-जैसे सभ्यता में टकरावों का प्रतिशत बढ़ता जा रहा है बुद्ध की प्रासंगिकता निरन्तर बढ़ती जा रही है। अलग-अलग धड़ों के लोगों ने इनपर अपने तरीके से विचार किया है। भारत के अलावा स्वीट्जरलैण्ड, कोरिया, वियतनाम, जापान, जर्मनी, भूटान, इंग्लैंड, फ्रांस सहित अमेरिका के निर्देशकों ने भी बुद्ध के जीवन, उनकी शिक्षा और उनकी परम्परा को टटोलने की कोशिश की है। इस खण्ड में कुल 12 फिल्में दिखायीं गयीं। इसमें फ्रांज ऑस्टीन की 'लाइट ऑफ एशिया' (1925), विश्व सिनेमा के प्रमुख हस्ताक्षर बर्नांडो बर्तोलुची की फिल्म 'लिटिल बुद्धा' (1993), हरमन हेस के उपन्यास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सिद्धार्थ पर आधारित कोनार्ड रूक्स की फिल्म 'सिद्धार्थ', नबेंदु घोष की फिल्म 'त्रिसाग्नि', कोरिया की दो फिल्में 'स्पिंग, समर आटम विंटर एण्ड स्प्रिंग' व 'व्हाई बुद्धा लेफट इस्ट' खास तौर से शामिल की गई थीं। इन फिल्मों के सन्दर्भ में यह सवाल उठता है कि क्या आध्यात्मिकता को सिनेमा में रचा जा सकता है? इनमें से अधिकांश फिल्में अपनी संरचना, दृश्यों और प्रभाव में इस पर खरा उतरती हैं। वे कहीं भी धर्मसिद्धान्तों को नहीं बघारतीं, उपदेशों से बचते हुए मानवीय नश्वरता और कमजोरियों को स्वीकारती हैं और जीवन जैसा है उस रूप में उसे जीने और उससे जूझने को रेखांकित करती हैं। ये फिल्में भीतर की तरफ उतने ही स्वाभाविक तरीके से उतरती हैं जैसे कोई तीर्थयात्री। इस फिल्मों के संगीत, दृश्य और उनका पूरा परिवेश हमें गहरे ध्यान और आत्मावलोकन की ओर उन्मुख करता है।

ऋत्विक घटक को श्रद्धांजलि

सत्यजीत राय की फिल्में तो संयोग से देखने को उपलब्ध हो जाती हैं,परन्तु ऋत्विक घटक की फिल्में दुर्लभ हैं। भारतीय सिनेमा में अपनी प्रयोगात्मकता के लिए जाने जानेवाले महान निर्देशक ऋत्विक घटक को श्रद्धांजलि स्वरूप उनकी चुनिंदा फिल्मों को पुनरावलोकन खण्ड में रखा गया था। उनकी कई महत्त्वपूर्ण फिल्मों को एक साथ देखना एक अविस्मरणीय अनुभव रहा।

ऋत्विक घटक को उनकी अस्सीवीं जयंती के उपलक्ष्य में यह श्रद्धांजलि दी गई। उनकी फिल्म में 'अजांत्रिक' (1958), 'मेघे ढाका तारा'(1960), 'कोमल गांधार'(1961), और 'सुवर्णरेखा' (1962), तीतास एकटी नदीर नाम (1973), जुक्ती, तक्को आर गल्पो (1974) काफी चर्चित रही थीं। घटक अपनी फिल्मों के जरिए विभाजन से उपजी सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में गहरे उतरते हैं। विस्थापन की त्रासदी उनकी फिल्मों का मूलभाव है और इसके बहुआयामी व्यथाओं को वे गहरी संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त करते हैं। ऐसा करते हुए वह अपना विशिष्ट मुहावरा गढ़ते हैं जो भारतीय सिनेमा में अद्वितीय है। उनके लिए सिनेमा सामाजिक परिवर्तन का औजार रहा है। वह उत्सवों और समारोहों से दूर अनवरत सृजन के पक्षधर थे।

ऋत्विक घटक के बारे में उनके समकालीन और भारत रत्न सत्यजीत रे ने कहा था—''पिछले चालीस वर्षों से फिल्में देख रहा हूँ। उनमें से तीनेक साल सिर्फ हॉलीवुड की ही फिल्में देखी हैं, क्योंकि कलकत्ता में इसके अलावा और देखने को कुछ था ही नहीं। इसलिए हमारे काम में कुछ-कुछ हॉलीवुड आ गया है। पता नहीं किसी गूढ़ कारण से ऋत्विक इस प्रभाव से मुक्त था। उसपर हॉलीवुड की कोई छाप नहीं है। यह मेरे लिए अभी भी गुत्थी है। अगर प्रभाव है भी तो कुछ-कुछ सोवियत सिनेमा का। लेकिन वह भी अनुकरण नहीं है, क्योंकि ऋत्विक का प्रधान गुण उसकी अपनी विशिष्टता, उसकी मौलिकता है जिसे उसने आखिर तक बरकरार रखा...।''

परन्तु हमारे समाज में विशिष्टता और मौलिकता की पहचान रचनाकार की मृत्यु के बाद ही संभव हो पाती है। ऋत्विक घटक के साथ भी यही हुआ। 1976 में उनकी मृत्यु के बाद ही उन के काम पर लोगों का ध्यान गया। 1925 में पूर्वी बंगाल के ढाका में जन्मे श्री घटक का परिवार देश

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के विभाजन से कुछ समय पहले ही कलकत्ता आ बसा था। हालाँकि अपनी पूरी सृजन यात्रा में उन्होंने कभी भी विस्थापितों से जुड़े सरोकार से खुद को अलगाया नहीं। ऋत्विक का अपने सिनेमा के बारे में कहना था—अपने आस-पास के यथार्थ के बारे में जो महसूस करता हूँ वह लोगों तक पहुँचाना चाहता हूँ, और जरूरी हुआ तो चीखना चाहता हूँ। सिनेमा इसके लिए आदर्श माध्यम लगता है, क्योंकि यह कृति एक बार तैयार हो जाने के बाद लाखों-करोड़ों लोगों तक पहुँच सकती हैं। इसलिए सिनेमा सिर्फ सिनेमा के लिए नहीं बल्कि अपने लोगों के लिए बनाता हूँ।

पुनरावलोकन खण्ड में दूसरे महत्त्वपूर्ण निर्देशक हाँगकाँग के स्टेनले क्वान की फिल्में थीं। हाँगकाँग सिनेमा की स्थिति काफी डाँवाडोल रही है। लम्बे समय तक उपनिवेश की उसकी विचित्र स्थिति भी इसका एक कारण रही है। वहाँ के अधिकांश सिनेकर्मियों की शिक्षा-दीक्षा ब्रिटेन और अमेरिका के स्कूलों में हुई है। लेकिन स्टैनलै क्वान शुद्ध रूप से देशी मिजाज के उपज हैं। 1979 में हाँगकाँग में 'न्युवेब' सिनेमा के दौर के साथ ही स्टैनले क्वान की सिनेमाई यात्रा शुरू होती है। सिनेपुरुष स्टैनले क्वान की छह फिल्में दिखाई गईं, जिसमें 'सेंटर स्टेज' व 'एवरलास्टिंग रिग्रेट' शामिल थीं।

पुरस्कार और कुछ फिल्में

आठवें ओशियन सिनेफैन फिल्मोत्सव में यह स्पष्टत: अनुभव किया जा सकता है कि एशियाई फिल्मकार तकनीक और अन्तर्वस्तु के मामले में कितने समर्थ हैं। यहाँ यह भी लगा कि सिनेमा अपने समाज, संस्कृति और राजनीति से गहरा ताल्लुक रखता है और उसे इसी सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए। हाँ, वह पूरी तरह से यथार्थ ही नहीं होता, यथार्थ की बुनावट में कल्पना का जोड़ इस विधा के लिए जरूरी है। परन्तु कोरी कल्पनाएँ भी हवा में नहीं होतीं, उनमें भी उस समाज और संस्कृति की गन्ध को समझा जा सकता है।

भारतीय फिल्मों की पहचान मुंबई अर्थात् बॉलीवुड में बनने वाली गीत और नृत्य की रोचक कड़ियों से गुथी फिल्में ही रही हैं। आज की मुख्यधारा में हम जिन फिल्मों को देखते हैं उनमें मुख्यत: तीन श्रेणियाँ हैं—माफिया गिरोहों की कारस्तानियों के विविध पक्षों को रखती हुई फिल्में, दूसरी फिल्में वे हैं जिनमें समृद्धि और विलासिता का वैभव है और तीसरी कोटि में देश के लिए मर मिटने वाली फिल्में हैं। इनमें आम लोगों की जगह नहीं है। अगर आम लोग हैं भी तो सेवा-भाव में, अपराध में और देश के लिए शहीद होने की भूमिका में। फिल्मों की यह तीनों ही कोटियाँ एक तरह से यथास्थितिवाद की पोषक हैं। परन्तु इसके समानांतर स्वतंत्र निर्माताओं द्वारा गम्भीर और सरोकार वाली फिल्में भी बनायी जाती रही हैं। यह अलग बात है कि सिनेमा के बाजार तंत्र में उनका प्रवेश ही नहीं होता। गिरीश कासरवाली की फिल्म 'इ द शैडो ऑफ डॉग' या पीएन रामचन्द्र की फिल्म 'द क्लिनसिंग राइट्स (शुद्ध)' को इसी श्रृंखला में देखा जाना चाहिए। दोनों फिल्में इस समारोह में पुरस्कृत हुई। सुब्रतो सेन की 'कलकत्ता अनबास्ड' (बिबर) में हम ग्लोबल समय में परम्परागत सामाजिक मूल्यों और नैतिकताओं से जूझते और मुक्त होने की छटपटाहट में बेचैन युवाओं को देख सकते हैं। ऋतुपर्णो घोष की फिल्म 'दोसर' हमें स्त्री-पुरुष संबंधों के नए यथार्थ की ओर मुखातिब करती है, जो आनेवाले समय का भविष्य है। 'हरबर्ट' एक जटिल चरित्र को लेकर उपस्थित होती है। इस फिल्म का शिल्प या फिर 'बीइंग साइरस' का शिल्प; इन फिल्मों में कैमरे की गति हमें सिनेमा की नई संरचनाओं से परिचित कराते हैं।

एशियाई खण्ड की दूसरी फिल्में हमें एक पूरे इलाके की दैन्यता, मानसिक उलझाव, कट्टरता और युद्धोन्माद के बीच ले जाती हैं। इन परिस्थितियों में एक आम नागरिक का जीवन कितना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कठिन है इसका दस्तावेज है फिलीपींस की फिल्म 'द बेट कलेक्टर'। अभाव हमें इस कदर तोड़ता है कि राज्य द्वारा चिह्नित अपराध और अनैतिक काम ही जीवन मूल्य हो जाते हैं। 'बेट कलेक्टर' एक अधेड़ महिला के तीन दिनों की कहानी है। वह वहाँ के आम जीवन में शामिल लॉटरी के धँधे की एक प्यादा है और इसी से उसका घर-संसार चलता है। हालाँकि सरकारी खाते में यह धन्धा अपराध है, किन्तु इसकी गिरफ्त में वहाँ का समाज इस कदर है कि कानून की रक्षा करने वाले भी अपनी लॉटरी लगाने से नहीं चूकते। यह फिल्म झोपड़पट्टी की पृष्ठभूमि में फिल्माई गई है। फिल्मकार ने काफी कुशलता से वहाँ के जीवन यथार्थ का चित्रण किया है। एक तरह से एशियाई देशों में हाशिए पर जी रहे अधिकांश लोगों का यह सच है। उनके जीवन की समस्याएँ, संघर्ष और राज्य का उनके साथ व्यवहार एक सरीखा लगता है। अरब देशों में जारी उन्माद के कारण पलायन है तो पूर्वी एशियाई देशों में देश के आतंरिक कलह, जातीयता के कारण। इनसे संस्कृतियों के आपसी टकराव और उससे गुजरने की पीड़ा बच्चों के लिए 'जोजो' और 'जर्नी फ्राम द फाल' में हम देखते हैं। बड़े लोगों को वह दंश नहीं झेलना पड़ता जितना कि शरणार्थी बच्चों को नए परिवेश और समाज में स्थानीय बच्चों के साथ झेलना पड़ता है।

दरअसल, एशिया का महादेशीय सच यह रहा है कि वह लम्बी गुलामी के बाद ऊँचे आदर्शों, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के सपनों के साथ आजाद हुआ था। लेकिन वह सपना सिर्फ सपना ही रहा। राज्य ने जो रूप अख्तियार किया उसकी संवेदनशीलता गुलामी के दिनों से बहुत अलग नहीं रही। यहाँ तक कि गुलामी के बाद आई स्वतंत्र सत्ता और उसके विरोध में आई सत्ता का दौर भी कई देशों ने देख लिया है, परन्तु उनमें भी दमन की सिर्फ भाषा बदली है। इसके साथ ही भूमंडलीकरण के दुष्चक्रों का प्रभाव अलग से है। लिहाजा एशियाई फिल्मों की अंतर्वस्तु में बदहाली, विरोध और आक्रोश का स्वर मुखर होकर सामने आ रहा है।

आठवें ओशियान सिनेफैन में पुरस्कृति फिल्में, निर्देशक, अभिनेता

फीप्रेसी अवार्ड (इंटरनेशल फेडरेशन ऑफ फिल्म क्रिटिक्स)/ द बेट कलेक्टर, निर्देशक : जेफरी जेतूरियन (फिलीपींस) / नेटपैक अवार्ड (नेटवर्क फॉर द प्रोमोशन ऑफ एशियन सिनेमा)/ मिडनाइट माई लव, निर्देशक : खोंदेज जातूरर्नारास्समी (थाईलैंड) / भारतीय प्रतियोगिता खण्ड- जूरी का विशेष पुरस्कार / इन द शैडो ऑफ डॉग (नयी नेरालु), निर्देशक : गिरीश कासरवल्ली- सर्वश्रेष्ठ नायक / सुब्रत दत्त, फिल्म कलकत्ता अनबास्ड (बिबर), निर्देशक : सुब्रतो सेन- सर्वश्रेष्ठ नायिका / तानिष्ठा चटर्जी, कलकत्ता अनबास्ड (बिबर), निर्देशक : सुब्रतो सेन- सर्वश्रेष्ठ फिल्म / द क्लिनसिंग राइट्स (शुद्ध), निर्देशक : रामचन्द्र/ एशियन प्रतियोगिता खण्ड- विशेष पुरस्कार/ होमलैंड (अंतर्यात्रा) तारिक व कैथरीन मसूद (बांग्लादेश / लव्स लोन फ्लावर निर्देशक : साओ जूई युवान (ताइवान)/जूरी का विशेष पुरस्कार, टू गर्ल्स, निर्देशक : कुटलुग अतमान (टर्की)/- सर्वश्रेष्ठ नायिका : गिना पारेनो, फिल्म : द बेट कलेक्टर, निर्देशक : जूफ्री जेटॅरियन-सर्वश्रेष्ठ फिल्म/द बेट कलेक्टर, निर्देशक : जेफ्री जेटॅरियन। ताईवान की लेखिका, आलोचक और फिल्म निर्माता पेगी चीओ हुसेन पिंग को लाइफ टाइम अचीवमेंट सम्मान से नवाजा गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जेल से कविता

मुंबई और पुणे की जेलों में बन्द महिला कैदियों की ये कविताएँ हमें बताती हैं कि अँधेरे समय में भी उम्मीद की किरणें और जिन्दगी की बेहतरी के सपने कैसे बचे रहते हैं। प्रेम, दुनियादारी और जीवन के धूप-छाँव की ये बेहद ईमानदार अभिव्यक्तियाँ हमें एक अलग तरह के अनुभव-संसार से रू-ब-रू कराती हैं। ये कविताएँ हमें महिला कैदियों के अधिकारों और उनके जीवन-स्तर को सुधारने के लिए प्रयासरत संस्था 'अवितोको' के माध्यम से मिली हैं।

जानकी

सफर जिन्दगी का

जीवन के सफर में चलते-चलते
कई मंजिलों से गुजर गये।
मकाम तक पहुँचते-पहुँचते
काँटो से दोस्ती कर गये।

मालूम न था हमें कभी
वक्त भी हमें धोखा देगा
वरना न कहते वक्त को
पल के लिए भी न रुकेगा?

न वो वतन रहा न वो मंजिलें
रह गईं सिर्फ यादें पुरानी
सोचा था, परछाई देगी साथ
पर वो भी हो गई बेगानी

चाहे रात अँधेरी हो
वर्षा क्यों न घनेरी हो
हमसफर तुम्हारा साथ हो तो
जिन्दगी की रवानी तुम्हारी हो।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नमिता

मेरा साहिल कौन?

मेरी कविता जिसने पढ़ी
उसकी आँखें खूब रोईं

दुनिया में हैं इतने लोग
पर मेरे साथ ना कोई

कोई खुशी ना पास मेरे थी
मैं तो हर पल रोई-रोई

समझा साहिल जिसको अपना
मुझको डूबोया उसने, वो ही

बच्चों को अपने यूँ पाला
जैसे खेत को सींचे कोई

बच्चों ने मुझको यूँ फेंका
जैसे जूठन फेंके कोई

मेरे दिल में प्यार बसा था
पैसों का ना मोह था कोई

बच्चों को समझूँ अपनी दौलत
संसार की वस्तु ऐसी ना कोई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शीरीन
सब कुछ अपना खोते देखा

सूरज ने जब किरणें लहराईं
मुझको तुम्हारी याद बहुत आई
चिड़ियाँ जब सबेरे चहकीं
उससे सारी दुनिया महकी
चेहरे को जब आईना दिखाया
आँखों को यूँ रोता पाया
दुआ के लिए जब हाथ उठाया
दुआ में भी तुमको ही पाया
महफिल में जब तुम हो आए
सब के बीच अकेला पाए
पंछी को जब सोते देखा
तुमको मैंने रोते देखा
रात में जब वो चाँदनी आई
साथ में वो साहिल ले लाई

प्रस्तुति : विभा रानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हीरालाल नागर

जंगल में तोप

जैसे ही थोड़ा आगे बढ़ते हैं, पता चलता है कि हम एलटीटीई के इलाके में कदम रख रहे हैं। जहाँ-तहाँ सड़क टूटी पड़ी है, जिस पर लाल मुरम की पर्त बिछाकर उसे चलने लायक बनाया गया है। थोड़ा आगे बढ़ने पर हमने देखा कि लकड़ी का खोखा (संतरी पोस्ट) औंधा पड़ा है। इस दृश्य से यह समझते देर न लगी कि आगे का रास्ता खतरे से खाली नहीं है। चौकन्ना रहना होगा। पर थोड़ा आगे बढ़ने के बाद मेरा यह अनुमान गलत साबित हुआ। जंगल के झुरमुटों के बीच कुछ मकान दिखाई देने लगे थे। कुछ कच्चे घर और कुछ पक्के मकान। हालाँकि उनमें रहनेवाले लोग कहीं दिख नहीं रहे थे। वे जरूर शांति सेना के आगमन से भयभीत होकर कहीं छिप गए होंगे।

वैसे डरने की कोई बात नहीं थी, क्योंकि सभी के हाथ में बंदूकें थीं। किसी के पास लाइट मशीनगन तो किसी के पास सेल्फ लोडेड राइफल। सभी की कमर में गोलियाँ बँधी थीं और पोचिश भी गोलियों से भरे हुए थे। मेरे साथ मदद के लिए एक जवान मेरे साथ चल रहा था। मशीनगन को मैं कभी अपने कंधे पर रख लेता, कभी हाथ में लटका लेता। अभी उसे सँभालने में थकावट बिल्कुल महसूस नहीं हो रही थी। हालाँकि मेरे साथी ने मुझसे एकाध बार कहा भी कि थक रहे हों तो मुझे दे दीजिए। उसके स्वर में मेरे प्रति दया का भाव था। उसने सोचा मैं उससे उम्र में बड़ा हूँ तो शायद जल्दी ही थक जाऊँगा। पर मैंने न थकने का व्रत लिया हुआ था। अगर अभी से थकने लगा तो आगे क्या होगा? मैंने कहा—'नहीं, अभी मैं थका नहीं हूँ। अभी कई मीलों का रास्ता तय करना है।'

यह 17 अक्तूबर 1987 का दिन था। जाफना अभियान का पहला कड़कड़ाता हुआ दिन। आसमान खुला था। हवा तेज न होती तो शायद धूप हमें बेहाल कर देती। ब्रिगेड हैडक्वार्टर की इस टीम में इंफैन्ट्री के भी जवान थे। उन्हें आगे जाकर कमांड पोस्ट सँभालनी थी। संचार की पूरी व्यवस्था सिगनल कंपनी के कंधों पर थी और इंजीनियरिंग रेजीमेंट के जवानों को माइन्स के खतरों से बचा रही थी। वाहनों को दुरुस्त करने का काम इलैक्ट्रिकल मैकेनिकल इंजीनियरिंग की ब्रिगेड ट्रुप्स देख रही थी। यानी सबकी अपनी-अपनी ड्यूटीज़ थीं। जिन्हें पूरी मुस्तैदी के साथ निभाया जा रहा था। लापरवाही का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।

हमारे साथ कुछ वजनी सामान भी था, जिसे वनटन गाड़ी में साथ लेकर चल रहे थे। आर.सी.एल.गनों से लैस रैपिड एक्शन फोर्स की जीपें भी संग-संग चल रही थीं, जहाँ जरूरत होती, वहाँ उनका इस्तेमाल किया जाता।

लगभग तीन किलोमीटर निकल आने के बाद एक छोटा-सा गाँव दिखाई दिया। यहाँ का कुछ अलग ही नजारा था। मेरी सोच को नए पंख लग गए। किसान हलों से खेतों की जुताई कर रहे थे। कितनी बढ़िया बात है यह। किसान खेत जोत रहा है। यदि किसान अन्न न पैदा करें तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सब भूखों मर जाएँ। इसलिए किसानों को युद्ध की छाया से जितनी दूर रखा जा सके, रखा जाना चाहिए। इन मेहनती लोगों का क्या कसूर। लड़ाई हमेशा वर्चस्व के बीच होती है। क्या किसान वर्चस्व विहीन है? किसान की ताकत इतनी कम क्यों है कि वह कहीं इस्तेमाल नहीं हो पाती। जिस धरती को एलटीटीई ने लड़ाई का मैदान बना लिया है, उसका मुआवजा किसान को मिलना चाहिए कि नहीं? इस बात से किसी को इनकार नहीं है कि अनाज न होगा, सब भूखों मरेंगे। सरकार कब तक खिलाएगी उधार ले-लेकर।

न जाने क्या से क्या सोचते हुए हम गाँव के नजदीक पहुँचे। पर गाँव? जैसे अपने वजूद में अव्यक्त। एकदम सन्नाटा। घरों की खिड़कियाँ बन्द थीं और दरवाजों पर ताले लगे थे। हमारे अन्दर गाँव का सुनसान अपने पंख पसारता जा रहा था। लग रहा था कि शांति रक्षक सैनिकों के डर से गाँव के लोग जंगल की पनाह में चले गए हैं। पर हमारे भीतर जो डर उग रहा है, उसे हम क्या करते? उसे किसी के सर पर उतारा नहीं जा सकता था। सबका अपना-अपना भय था। सब अपने-अपने तरीके से उसे संभाल रहे थे। मगर, इस बारे में मैं आज जब सोचता हूँ, तो बताना मुश्किल है कि वह कैसा भय था?

इस भय को हमने ही जनरेट किया था और आज हम उसी से लड़ रहे थे। सन्नाटे की भयावहता का चेहरा इतना निर्धूम हो सकता है क्या? धुँआ दिखाई नहीं देता, पर हृदय सुलग रहा है। मार्च करने से पहले हमें यह आदेश मिला था कि किसी निरपराध पर गोली न चलाई जाए। फिर भी सभी जवान बंदूकें ताने आगे बढ़ रहे थे। जैसे कि सामने आनेवाले हर शख्स को गोलियों से भून दिया जाएगा। मुझे पहली बार महसूस हुआ कि लाइटमशीन गन के बोझ से मेरा दाहिना कंधा दर्द करने लगा है। उसे उठाए हुए मैंने करीब छह-सात किलोमीटर की पैदल यात्रा तो पूरी कर ही ली होगी। सड़क के एक बड़े मोड़ पर आकर ट्रुप्स को सुस्ताने के लिए कहा गया। यह पहला हाल्ट था। जवानों ने पीठ के पिट्ठू नहीं उतारे, मगर लघुशंका के बोझ से कदम भारी होते जा रहे थे। निवृत्त होने का उन्हें वक्त मिल गया था। जवान एक दायरे में दूसरे खेतों और झाड़ियों की तरफ फैल गए। अफसरों ने एक लम्बी आह-सी भरी। पहली बार मैंने उन्हें भय की गिरफ़्त में देखा। वे जवानों से अपने भीतर की झेंप को नहीं मिटा पा रहे थे। मैंने सोचा—उनके चेहरे इतने बुझे ओर थके हुए क्यों हैं? क्या उन पर आने वाले समय का प्रभाव था? होना भी चाहिए। अफसरों को सब पता था कि आने वाले दिनों में क्या होने वाला है और क्या करने की प्लानिंग है। मैंने देखा—अफसर एक गोल में खड़े होकर किसी बड़ी मैप-शीट पर झुके हुए हैं।

एक मोड़ हजार अफसाने

जहाँ हम थे, वह सड़क का अनजाना मोड़ था। यहाँ से सड़क अपनी नई दिशा आख्तियार कर रही थी। थोड़ी देर की माथा-पच्ची करने के बाद तय किया कि हमें अब किस दिशा की तरफ बढ़ना है। चलने से पूर्व यह कहा गया कि आगे का रास्ता खतरनाक है। सब होशियारी से चलें।

डेढ़-दो-सौ जवानों का रेहड़ बेफिक्र होकर आगे की तरफ बढ़ चला। हमें एक लाइन में चलने के लिए कहा गया। पहले हम बाएँ चल रहे थे, अब दायीं होकर चलने लगे थे। पर अचानक हृदय में एक शूल-सा उठा। एक सेकंड के लिए ही सही, कुछ भूला हुआ याद आया। अक्सर पैदल चलते आदमी के भीतर एक किताब खुल जाती है। पता नहीं उसका कौन-सा अध्याय खुल जाए और उसके भीगे पन्ने फड़फड़ाने लगें। कदम बढ़ते जाते हैं, और भीतर द्वंद्व शुरू हो जाता है। यहाँ तक कि वह अपने से लड़ाई करने पर उतारू हो जाता है। अपने महाभारत का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कभी वह अर्जुन बन जाता तो कभी अभिमन्यु। उसका अपना संघर्ष खत्म नहीं होता। अंतर्द्वंद्व गहरा होता चला जाता है। आदमी जब अपने से लड़ता है तो उसे बाहर की दुनिया प्रभावित नहीं करती। मेरे आँखों के सामने ऊँचे वृक्षों की विशाल शाखाएँ एक-दूसरे से लिपटी हुई हैं। सघन झाड़ियों का तिलिस्म भी सामने है, मगर वे मुझपर असर नहीं डाल पातीं। उनकी भयावहता मुझ पर प्रभाव नहीं डाल पाती। पर, बाकी जवान जंगल के इस संजाल को आश्चर्य से देख रहे हैं। एक जवान मुझसे कहता है—''एलटीटीई के जवान इन पेड़ों की शाखाओं पर चढ़कर बैठ जाते हैं और फिर अचानक पैदल सेना पर हमला करते हैं।'' उसकी इस बात से भीतर चीख-सी उठती है और भय की ठंडी लहर चीरती हुई निकल जाती है।

अब सड़क का रास्ता जंगल से अलग हो गया है। हम खुले मैदान में चलने लगे हैं। दूर तक जमीन खाली पड़ी दिखाई देती है, मगर उसके आगे एक बस्ती भी दिखाई दे रही है। जिसके आसपास नारियल के घने पेड़ों की लम्बी कतारें दिखाई दे रही हैं। वह जवान आगे बताता है—''एलटीटीई के जवान ए.के. 47 लेकर इन्हीं नारियल के पेड़ों पर छिपकर बैठ जाते हैं, फिर वहीं से निशाना साध लेते हैं।'' मैंने सोचा, शायद यह डराने का उनका एक तरीका हो।

जवानों का झुंड बेबाक बढ़ता जा रहा है। धूप चढ़ रही है। बदन पसीना-पसीना हो रहा है। प्यास के मारे होंठ सूखे रहे हैं। भूख नहीं है, फिर भी कुछ खाने को जी चाहता है। अचानक मेरी निगाह ले. कर्नल रेड्डी पर पड़ती है। यह मैं क्या देख रहा हूँ? क्या मेरी आँखें धोखा खा रही हैं। नहीं, नहीं वे कर्नल रेड्डी ही हैं। मगर, सिपाही की तरह लग रहे हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि उनके कंधों पर स्टार नहीं है। मैंने दूसरे अफसरों की तरफ भी देखा। उनके कंधे भी खाली हैं। यह मैं क्या देख रहा हूँ? अफसरों के कंधों पर पद और प्रतिष्ठा के चिह्न नदारद हैं।

मेरे साथ चलते एक हवलदार ने कहा, ''डर से स्टार उतारकर रख लिए हैं। सुना होगा कि एलटीटीई पहले अफसरों को ताककर वार करती हैं।''

यह सुनकर मुझे एकबार फिर हैरत हुई। पर इस सच्चाई से कौन इनकार कर सकता है। जान सबको प्यारी होती है न। कौन मरना चाहता है मुफ्त में, वह भी पराई धरती पर। यह तो एक व्यर्थ की लड़ाई है। जानबूझकर पंगा लिया गया है। एलटीटीई कोई दुश्मन नहीं हमारा। हम सब मजबूर हैं, लड़ने को। पर यह मजबूरी भी कैसी, जिसका कहीं कोई आधार न हो।

बहरहाल! कदम आगे ही बढ़ते जा रहे थे। पीछे लौटना संभव नहीं था। अपनी कमजोरियों को जाहिर करना कायरता होगी। भारतीय सेना कभी कायर नहीं रही। जब-जब ऐसे क्षण आए हैं, उसने भरोसा जताया है। हम किसी भरोसे पर चल रहे थे। घना जंगल, चारों तरफ पसरा सन्नाटा और दूर तलक आँखों में काँटे की तरह चुभती वीरान बस्ती। वीरान नहीं है, पर वीरान दिखती है। ये सब चीजें भय का वातावरण तैयार कर रही हैं।

दोपहर की धूप सिर पर काले नाग की तरह फनफना रही है। हवा न होती तो न जाने क्या हाल होता। अधिकांश के चेहरों पर खामोशी तन रही थी और उनकी चाल थके हुए घोड़ों की तरह हो रही थी । हालांकि हथियार सबके पास थे, पर केवल हथियार का होना ही काफी नहीं होता। व्यक्ति का मन भी हमेशा साथ चलता है। कभी-कभी उसकी कहनी और सुननी भी पड़ती है। मन न जाने कहाँ-कहाँ डोलता है। किसी को खबर नहीं होती। ईश्वर सिंह के मन में क्या घटित हो रहा है, मैं थोड़े जानता हूँ पर इतना अवश्य जानता हूँ कि जो मेरे भीतर घटित हो रहा होता है, शायद वही दूसरे के मन में भी घटित हो रहा है। या यूँ कह सकते हैं कि दूसरों के भीतर जो दृश्य चल रहा है,वहीं अपने भीतर भी चल रहा है। सबकी लगभग एक जैसी मन:स्थिति।

मेरा दिल सुलग रहा है तो मैं समझता हूँ कि मेरी तरह दूसरों का भी दिल भी सुलग रहा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होगा। हम एलटीटई को यह बताकर ही दम लेंगे कि हम क्या हैं? हम एलटीटीई को उसकी औकात बता देना चाहते हैं। उसको अहसास करा देना चाहते हैं कि पहाड़ से टकराने का अंजाम क्या होता है। हमारी बिल्ली हमीं को म्याऊँ?

इतने में एक लड़का साइकिल पर आता हुआ दिखाई दिया। वह हमें देख अपनी साइकिल से उतरकर पैदल चलने लगा है। मैंने उससे बात करनी चाही, इसलिए तमिल जानने वाले एक जवान को मैंने बुलाया। और उससे बातचीत करने के लिए कहा। मेरे साथी ने उससे तमिल में दो-चार सवाल किए। अँग्रेजी में मैंने भी पूछा कि यहाँ कहाँ से आ रहा है और किस गाँव का रहने वाला है। उसने जो बताया वह हास्यास्पद था। वह बोला, ''मैं इंग्लैंड में पढ़ता हूँ और गर्मियों में अपने माँ-बाप से मिलने आया हूँ। इतना बताकर युवक ने साइकिल से दौड़ लगा ली। मुझे उस पर डाउट हुआ कि कहीं यह एलटीटीई का जासूस तो नहीं? एलटीटीई के जासूस आजकल गाँव-गाँव घूम रहे हैं। जासूसी करना उनका धर्म है। वैसे भी गाँव हैं इस काम को वहाँ आगे एक किलोमीटर चलने के बाद मुझे वह युवक फिर आता दिखाई दिया। इस बार वह अकेला नहीं है। उसके साथ दो-चार साइकिल वाले भी थे। वे साइकिलय सँभाले पैदल चले जा रहे थे। उन्होंने बड़ी गौर से हमलोगों की तरफ देखा। ''ये लोग एलटीटीई के आदमी लगते हैं।

''क्या पता?'' कैप्टेन ने धीमे से कंधे उचकाकर कहा।

अब हमारे कदम तेजी के साथ आगे बढ़ने लगे हैं। सामने से तेज धूप तिरछी होकर गिर रही है। इतने में फिर एक गाँव दूर से ही नजर आने लगता है। उसके अन्दर कदम रखते ही भारतीय सेना के तीन-चार जवान दिखाई देने लगते हैं। उन्हें देखकर खुशी हो रही है। पर, हमने यह भी देखा कि उनके चेहरों पर चिंता की गहरी लकीरें हैं। हमें गाँव के बाहर एक संतरी पोस्ट नजर आया, जिसमें मद्रास रेजीमेंट के जवान मीडियम मशीनगन के साथ तैनात थे। पोस्ट से थोड़ा आगे चलने पर एक मोड़ पर टूटा हुआ बीएमपी टैंक दिखाई दिया है। शायद एलटीटीई ने टैंक की धज्जियाँ उड़ा दी थीं। यह एक दहशतजदा मंजर था। सोच भी नहीं सकते थे कि एलटीटीई भारतीय टैंकों की यह गति कर देगी। मुकाबला कड़ा था और कहीं-कहीं पर एलटीटीई भारी पड़ रही थी। शायद इसकी वजह भारतीय सेना की सुस्त शुरुआत थी। उसे न भूगोल का ज्ञान था और न इतिहास का। एक बीएमपी टैंक औंधा पड़ा हमारा मुँह चिढ़ा रहा था।

गाँव से गुजरते हुए यह तो पता चल ही गया कि इस गाँव के पक्के मकानों की खैरियत नहीं रही। जगह -जगह से मकानों की दीवारें टूटी दिखाई दे रही थीं। यहाँ पर सिर्फ पाँच मिनट का हाल्ट रहा। इतने में पीछे से कुछ गाड़ियाँ आती दिखाई दीं, जिनमें एंबुलेंस की गाड़ी भी थी। मेडिकल के डॉक्टर और नर्सिंग असिस्टेंट साथ चल रहे थे। पक्की सड़क जैसे ही शुरू हुई, बड़े-बड़े मकानों का सिलसिला शुरू हो चला था। मकान इतने ऊँचे थे, जिनको देखकर यह अन्दाजा लगाया जा सकता था कि यहाँ के लोग धनी-मानी हैं। मगर, वे धनी-मानी अपने घरों में नहीं हैं। यहाँ तक कि आसपास कहीं कोई पुतरा भी नहीं नजर आ रहा है। जगह-जगह पर टेलीफोन के तार टूटे पड़े हैं। चारों और मरघट की-सी चुप्पी छाई हुई है। बस! इस चुप्पी में भारतीय सैनिकों के बूटों की प्रतिध्वनि सुनाई दे रही है। आगे देखा कि एक पेट्रोल पम्प भी टूटा-फूटा पड़ा है। आसपास की दीवारें भी बुरी तरह क्षतिग्रस्त थीं। यहाँ एलटीटीई और शान्ति सेना के बीच लगता है खूब गोलियाँ चली हैं। हवा में सड़ांध थी। थोड़ा आगे बढ़ने पर लावारिश लाश के अवशेष पड़े दिखाई दिए। कुछ अजीब-सा दृश्य था। चारों ओर बारूदी गंध है। गोलियों तथा बमों की मार से शहर वीरान हो गया है और एक नाजी सेना लाशों पर पैर रखकर आगे बढ़ती जा रही है। माल्लाकम बस्ती 'युद्ध के मैदान' लगती है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुछ जगहों पर दुकानों के खोखे टूटे हुए दिखाई दे रहे थे। ऐसा लगता था जैसे कि किसी ने इन्हें जान-बूझकर तोड़ा है। हो सकता है भारतीय सेना के जवानों ने ही ऐसा किया हो। तोड़कर खाने-पीने की चीजें निकाली हों। भूख-प्यास से बेहाल सैनिकों को जब कुछ नहीं सूझता तो वे यही काम करते हैं। बंदूक उन्हें बेखौफ बना देती है और फिर दुश्मन से बदला लेने की जो दबी-कुचली भावना होती है, ऐसे क्षणों में वह भी काम करती है। जैसे कि पाकिस्तान के सैनिकों ने किया था। सन् 1971 में सरेंडर के बाद पाकिस्तान के सैनिकों को जब भारतीय इलाका तत्काल खाली करने के लिए कहा तो उन्होंने भारतीय बंकरों को गंदगी से पाट दिया था।

मद्रास रेजीमेंट का एक जवान कंधे पर बंदूक रखे वहाँ से गुजर रहा था। उसके पास आने पर मैंने उससे पूछा, ''कितने दिन से कब्जा है यहाँ पर।''

''कोई तीन-चार दिन से'' उसने हँसकर कहा। बंकरों पर तैनात सैनिकों को देखकर लग रहा था कि स्थिति काफी गम्भीर है। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते जा रहे थे, सड़क की लम्बाई भी बढ़ती जा रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे सड़क खत्म होने का नाम ही नहीं ले रही है। थोड़ा और आगे बढ़ने पर खूबसूरत मकानों की कतार दिखाई दी। क्या शानदार बंगले थे। लखनऊ की सरोजनी नगर कॉलोनी की तरह। एक से बढ़कर एक बंगले। खूबसूरत लॉन और पोर्टिको। मैं सोच रहा था कि जब मकान इतने खूबसूरत हैं तो इनमें रहने वाले लोग कितने खूबसूरत होंगे। काश! हम उन्हें देख पाते। इन मकानों की छटा कुछ अलग ही थी। अन्दर गमले रखे हुए थे। कहीं-कहीं पर हमने पिंजरों में बन्द उन चिड़ियों को देखा जो बहुत शोर मचाया करती हैं। ये कौन से पक्षी हैं? कभी-कभी मैंने ऐसी चिड़ियों को बाजार में बिकते देखा हो। पिंजरों में बन्द इन नन्ही-नन्ही चिड़ियों की चहचहाहट बड़ी प्यारी लग रही है, मगर उससे हमारा मतलब हल नहीं हो रहा था। बंगले खाली पड़े हैं। उनकी खिड़कियों और जंगलों से डरावनी उदासी झाँक रही हैं। जिसके कई अर्थ थे। जवान इन मकानों की खिड़कियों को देख रहे थे। राहगीर की निगाह मकान की खिड़कियों पर होती है। वह खिड़कियों के उस पार न जाने क्या देखना चाहता है। कोई चाँद, कोई हुस्नपरी या उसे घूरती हुई दो आँखें।

बहरहाल! इन बंगलों का स्थापत्य बता रहा था कि यहाँ पहले पुर्तगीज भी रहे हैं। यहाँ की महिलाओं तथा लड़कियों का गोवानी पहनावा है—इसे हमने बहुत बाद में जाना। संस्कृति गोवा से मिलती-जुलती है—जैसा मैंने महसूस किया। पुर्तगालियों ने श्रीलंका में करीब डेढ़ सौ सालों तक शासन किया। सन् 1505 से लेकर 1658 तक। सिंहलीज जनता ने डचों की मदद से उन्हें बाहर निकाला। जाहिर है कि उनकी संस्कृति का कुछ न कुछ प्रभाव तो पड़ेगा ही। तब तक डचों ने श्रीलंका पर खूब मनमानी की। शायद 1796 में अँग्रेज पहुँचे। उन्होंने भी श्रीलंका का दोहन किया। श्रीलंका पर भी विदेशी शासकों का नियंत्रण रहा है। लम्बी यंत्रणा के बाद उसे आजादी मिली। इस आजादी में तमिल और सिंहलीज नेताओं की भूमिका कम नहीं रही। तमिलों को अँग्रेज लाए थे—मजदूर बनाकर, जिन्होंने श्रीलंका के उत्तर-पूर्व में अपना वर्चस्व स्थापित किया। यह लोगों का मानना है कि तमिल अपनी दूसरी आजादी के लिए लड़ रहे हैं, लेकिन यह एक प्रकार का खुला विद्रोह है।

प्रभाकरन ने पिछले दस सालों से श्रीलंका सरकार की नाक में दम किया हुआ है। उनके हिसाब से जाफना प्रायद्वीप को स्वायत्तता चाहिए। जाफना में कई राजनीतिक संगठन हैं। वे सब शान्तिपूर्वक इस समस्या का हल निकालने के पक्ष में हैं, मगर एलटीटीई इस विवाद को हथियार के बल पर सुलझाना चाहती है।

मैं यहाँ जिस कस्बे की बात कर रहा हूँ—इसका नाम मर्दनारमडम् है। मर्दनारमडम् जब हम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पहुँचे, दिन के डेढ़ बज चुके थे। घड़ी की बड़ी सुई घण्टे के आधे हिस्से को काट रही थी। हमें फिर एक मन्दिर के दर्शन हुए उसके चारों और घने वृक्षों की छाया थी। विश्राम के लिए यह स्थल काफी उपयुक्त लग रहा था। इस छाया को देख जवानों के पैरों की थकावट एकदम चेहरे पर उतर आई। वैसे भी लंच का समय हो रहा था, इसलिए ब्रेक की घोषणा हुई। इसी के साथ जवानों ने अनुशासन का जुआ अपने कंधों से उतार फेंका। जिसको जो जगह बैठने लायक दिखाई दी, उस तरफ बढ़ गया। कुछ लोग मन्दिर की तरफ चले आए। कुआँ एकदम पास था। जवान प्यासे थे। सब्र का बाँध टूट गया और वे पानी पीने के लिए कुँए की तरफ लपके। कुछ कुएँ की जगत पर चढ़कर पानी पीने लगे, कुछ बैठ कर सुस्ताने लगे।

मैंने मंदिर के बरामदे में आकर पीठ पर लदा पिट्ठू नीचे उतारकर रखा और सुस्ताने बैठ गया। मन्दिर के मुख्य द्वार पर परदा पड़ा था। जालीदार फाटक से मुझे शिवलिंग दिखाई दिए। बड़े बूटों से जकड़े पैरों को थोड़ी राहत देने का विचार आया, पर जूते उतारना खतरे से खाली नहीं था। इमर्जेंसी में कहीं भागना पड़ा, तब? मैं मन्दिर के खंभे से टिककर बैठ गया। मुझे एकबारगी लगा जैसे सर घूम रहा है। मैंने धीरे से आँखें बन्द कर लीं। नहीं, यह चक्कर नहीं था, यह आँखों में तैरने वाला एक दृश्य था जो पीछे छूट गया था। वह अभी तक आँखों में ठहरा हुआ है। आँखें बन्द करता हूँ तो वही दृश्य नजर आने लगता है। यह बहुत कठिन दृश्य था। आँखों के सामने आदमी के मरने का दृश्य। वह कार्बाइन मशीनगन दो गोलियों से ही धराशायी हो गया था।

हम सब धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। सड़क के किनारे जैसे ही मल्लाकम बस्ती आई, जवानों की आँखें तेज हो गई थीं। सबकी नजरें घरों की ओर थीं कि किसी जवान की नजर एक जगह रुक गई और जोर से बोला, वो देखो कोई आदमी झाँक रहा है। जवानों के पैर वहीं ठिठक गए। एक सूबेदार ने दरवाजे से झाँकते आदमी को इशारे से बुलाया। वह अधेड़ था। बदन नंगा और कमर में लुंगी। वह हाथ जोड़े धीरे-धीरे आगे बढ़ा।

''जासूसी कर रहा था?'' किसी ने चीखकर उस पर आपराधिक इल्जाम लगाया। वह तमिल में कुछ बोल रहा था। शायद वह गिड़गिड़ा रहा था कि मैं जासूस नहीं, बालबच्चे वाला सीधा-सादा आदमी हूँ। आपलोग भारत से श्रीलंका की धरती पर आए हैं। मैं आप सबका हार्दिक अभिनंदन करता हूँ। आप आए हैं तो मुझे विश्वास है कि अब गाँवों से आतंक का साया हमेशा-हमेशा के लिए खत्म हो जाएगा। हम वर्षों से आतंक के साए तले जी रहे हैं। आपलोगों के आने से यह उम्मीद बँधी है कि अब हम सुखपूर्वक रह सकेंगे। आप लोगों के खिलाफ मैं जासूसी क्यों करूँगा भला?

वह अधेड़ तमिल शायद यही कह रहा होगा। उसकी आँखों में याचना थी और शब्दों से भी वह प्राणों की भीख ही माँग रहा होगा। किसी ने कहा, ''सर, बूढ़ा है इसे जाने दो। यह क्या कर सकता है बेचारा!'' कुछ लोगों ने उस वृद्ध व्यक्ति को जाने के लिए कहा। वह हाथ जोड़े घर की तरफ जाने लगा। मगर मेजर साहब ने कहा, ''मारो साले को। क्या पता साला, खुफिया आदमी हो।'' इतना सुनते ही सूबेदार ने उसपर कार्बाइन मशीनगन से गोलियाँ दाग दी। दो गोली ही उसके लिए काफी थी। उसने अपने दोनों हाथ छाती पर जोड़ रखे थे। उसके हाथ ऊपर उठते चले गए। उसका शरीर स्लो मोशन में घूमने लगा जैसे चक्करघन्नी खाने के बाद कोई लट्टू धीमी गति में आकर बैठ जाता है। ऐसा ही उस व्यक्ति का हाल हुआ। मेरी आँखें चकरा गईं। दो चक्कर के बाद वह व्यक्ति कटे वृक्ष की तरह ढह गया।

मंदिर परिसर में बैठते ही मेरे दिमाग में यही दृश्य चल रहा था। लेकिन आँखें बन्द करने के बाद मैं नार्मल हुआ। अब मेरी आँखों में अपने नन्हें-मुन्नों के चेहरे थे। इनको अभी मेरी जिन्दगी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की जरूरत है—मैंने सोचा। इन्होंने तो अभी कुछ भी नहीं देखा। मीनू के जन्म के दो-तीन दिन बाद श्रीलंका जाने का आदेश मिल चुका था। लेकिन आने में पन्द्रह दिन लगे। अच्छा हुआ कि मैं वक्त की नजाकत को पहले ही समझ गया और उन्हें उनके नाना-नानी के घर छोड़ आया। लखनऊ में तो कबा जाते ये लोग।

मैंने देखा कि नायक बालाकृष्णन अपने हाथ में दो-तीन कोकाकोला की बोतलें और दो-तीन कच्चे नारियल उठाए चला आ रहा है। उसने यह सब मेरे हाथों में थमाते हुए कहा, ''सर आप कहाँ आकर बैठ गए। लोग वहाँ दुकानें तोड़ने में लगे हैं। आप भी जाइए न। जो चाहिए ले आइए, बिस्किट-नारियल वगैरा। पेप्सी-कोकाकोला चाहिए तो और ले आइए।''

''नहीं बालाकृष्णन मैं नहीं जाऊँगा वहाँ। तुम जो ले आए हो वह क्या कम है। ज्यादा क्या करना है। इतना बहुत है।'' इतना कहकर मैंने उसके हाथ से कोकाकोला की बोतलें लेकर रख लीं और एक नारियल भी रख लिया। उसने अपनी जेब से कुछ टाफियाँ भी निकालकर दीं। टाफियाँ देखकर मेरी आँखें चौंधिया गईं। भारत में हमने, कम से कम मैंने कभी इतनी सुन्दर चाकलेट और टाफियाँ नहीं देखी थी। बच्चे इन्हें देखकर पागल ही हो जाते।

मैं गटागट-गटागट कोकाकोला की दोनों बोतल पी गया, और बैठे-बैठे नारियल चबाता रहा। पिट्ठू में टिफिन कैरियर में सब्जी-पूड़ी भी पड़ी है। आगे काम आएगी सोचा मैंने।

विश्राम की घड़ियाँ समाप्त होने को थीं। सीटी बजी और हम फिर कतारबद्ध हो गए, अपनी टोली के साथ। हथियार सभी के पास हैं। कोई जवान छूट तो नहीं रहा आदि की चेंकिग हुई और हम एक ही पंक्ति में आगे बढ़ने लगे। हमेशा की तरह सबसे आगे माइंस डिटेक्टर के साथ इंजीनियर के जवान थे। उनके पीछे इंफैंट्री के जवान। इसके बाद मेडिकल वाले और सबसे पीछे सिगनल के जवान। हर टोली के साथ अफसर और सूबेदार और सूबेदार मेजर आदि चल रहे थे।

मरूदनारमडम् की मेन सड़क से हमारी दिशा बदली और हम लूप लाइन पर आ गए। सँकरी कच्ची-पक्की सड़क। इस पर मोटर वगैरह भी चलती होगी, मगर इस समय इसकी ऐसी हालत ठीक नहीं। करीब दो सौ गज की दूरी तय करने के बाद अचानक दायीं बाजू से गोलियाँ चलने लगीं। गोलियाँ दूर गाँव की तरफ से आ रही थीं। जिसकी दूरी दो मील से ज्यादा नहीं होगी। सड़क से नारियल के झुरमुट दिखाई दे रहे थे। शायद उन्होंने नारियल के पेड़ों पर चलकर गोलियाँ चलाई होगी। गोलियाँ सबसे आगे चलने वाले दो जवानों के पैरों में लगीं। उन्हें फौरन प्राथमिक उपचार के लिए एम्बुलेंस से अस्पताल भेजा।

गोलियाँ जिस दिशा से आ रही थीं, सभी जवानों ने उस पर पोजीशन सँभाल ली और दनादन गोलियाँ बरसानी शुरू कर दीं। मेरे पास एलएमजी थी। मुझसे कहा गया था कि जब सख्त जरूरत हो तभी एलएमजी का प्रयोग किया जाए। इसलिए मैं सड़क किनारे खड़ा हो गया। इतने में मेजर त्रिपाठी आए और बोले, ''गोलियाँ नहीं चलानी।''

''आप कहें तो मैं अभी शुरू कर देता हूँ, मगर मेरे ख्याल से इसकी जरूरत नहीं। कम से कम हजार गोलियाँ एक साथ जा रही हैं एक ही दिशा में। दुश्मन किसी भी गोली का शिकार हो सकता है। गोलियाँ क्यों बर्बाद की जाएँ।''

मेजर त्रिपाठी मेरे मशविरे से सहमत हुए। पास ही एक झोपड़ी थी। मेजर त्रिपाठी ने कहा, ''जाकर उस झोपड़ी के पास खड़े हो जाओ। वहाँ सुरक्षित रहोगे। या फिर लेट जाओ।''

मैं झोपड़ी और एक पेड़ की ओट में खड़ा हो गया। करीब पाँच मिनट तक गोलियाँ चलीं। जब दुश्मन की ओर से जवाबी गोलियाँ आनी बन्द हो गयीं, तब इस तरफ से भी गोलियाँ चलानी बन्द कर दी गईं। थोड़ी देर बाद सब एक साथ उठ खड़े हुए ओर फिर चल पड़े। जैसे कुछ हुआ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ही न हो। इस बार कहा गया कि आगे और भी खतरा है। सतर्क होकर चलें। इस घटना के बाद साथ चल रही एमएमजी पोस्ट की गाड़ियाँ आगे बढ़ गईं। आरसीएल गनों की गाड़ियों ने भी मोर्चा सँभाल लिया। उन्होंने गाँव की तरफ तीन-चार गोले दागे। बीस-पच्चीस कदम चलने के बाद फिर गोलियाँ आईं और आगे बढ़ते इंजीनियर के जवानों के निचले हिस्से पर लगीं। वे घायल होकर वहीं बैठ गए। कारवाँ एक बार फिर थम गया। मगर इस बार किसी ने गोलियाँ नहीं दागीं। सब पोजीशन सँभालकर उकड़ू बैठ गए। इतने में एम्बुलेंस की गाड़ी आई और घायलों को बिठाकर ले गई। घायलों के लिए हैलीकॉप्टर मर्दनारमडनम् बस्ती में लैंड हो चुका था। हमने उसे आकाश में उड़ते हुए देखा। यह सब पन्द्रह-बीस मिनट के अन्दर ही हो गया। लगातार इन दो घटनाओं से सबके चेहरे सफेद हो गए। यात्रा का वह उल्लास गायब हो गया। थोड़ी देर पहले बस्ती में जवानों ने जो धमाल मचाया था, उससे सबके अन्दर बेफ्रिकी-सी छा गई थी। पर अब वह बेफिक्री न जाने कहाँ सिमट गई थी।

इस बार यह आदेश हुआ कि जैसे ही बस्ती शुरू होती है गोलियाँ बरसाते हुए चलें। अभी तक टोलियाँ एक ही तरफ चल रही थीं। उन्हें दायें-बाये होकर चलने के लिए कहा गया। अफसर और जेसीओ (सूबेदार, नायब सूबेदार) भी जवानों की लाइन में चलने लगे थे। हमने दूर से ही देखा कि गाँव के बाहर कहीं आग लगी हुई है। जलते हुए मकान या कोई झोपड़ी में लगी आग की लपटें थीं वह। जैसे ही बस्ती नजदीक आई, जवानों ने गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं। यह एक प्रकार की आतिशबाजी ही थी। अपना डर भगाने के लिए, जो दिलों में बैठा हुआ था। कहीं से भी अटैक कर सकते थे एलटीटीई के लोग। दुश्मन के शहर से गुजरना हो और डर न हो, यह कैसे हो सकता है। खिड़कियों के शीशे चटाक्-चटाक् करके टूट रहे थे और किवाड़ों के सीने छलनी हो रहे थे। कार्बाइन मशीनगन की गोलियाँ निशान छोड़कर ठण्डी पड़ जातीं। किवाड़ छलनी हो रहे थे। गोलियाँ चलाने का यह बेतुका प्रदर्शन बराबर जारी रहा, जब तक कि हमलोग गाँव के दूसरे सिरे तक पहुँच न गए।

हम गोलियाँ तो चला रहे थे, पर हमारी नजर घरों में कुछ खोज-सी रही थी। जैसे लोग घरों के अन्दर ही छिपे बैठे हैं या फिर वे दीवार या फर्श के सहारे चिपके पड़े हैं। घर में लोगों के होने का आभास होता था। घर के बाहर या लॉन या बगीचों में छिपने के लिए बड़े-बड़े ट्रिंच खुदे हुए थे। निश्चित ही ट्रिंच गोलियों से बचने के लिए खोदी गई होगी। यह इलाका एलटीटीई की गतिविधियों का खास गढ़ रहा है—जाफना पहुँचने से पहले की एक दीवार, जिसे भारतीय सेना बड़ी होशियारी और चालाकी से ढहाना चाहती थी।

जैसे ही फायरिंग स्टाप करने आ आदेश हुआ, सबने अपनी बंदूकें बगल कर लीं। आगे अपनी सेना के जवान नजर आए। इतने में बीच सड़क पर किसी व्यक्ति की लाश पड़ी दिखाई दी। लाश से बदबू का तेज भभका उठा, जिससे नाक से साँस लेना मुश्किल हो गया। मैं साँस साधकर चुपचाप चलता रहा। जब तक लाश पीछे न छूट गई मैंने नाक से साँस नहीं ली। अचानक हमारे पैर धीमे पड़ गए। शायद कैंप एरिया आ गया था। यह ख्याल आते ही पैरों में थकावट-सी महसूस हुई। अभी तक कदम एक ही रफ्तार में पड़ रहे थे। मगर इस ख्याल ने पाँच लड़खड़ा दिए। शाम भी ढलने को आ रही थी। थककर चूर हो जाने का भाव तैर आया। शायद इस कारण जहाँ थे, वहीं पर हमें विश्राम करने का आदेश मिला।

इतने में कुछ जवान पानी भरी बाल्टियाँ लाए। जवानों ने छककर पानी पिया। कुछ जवानों ने अपने पिट्ठुओं से स्वादिष्ट टॉफियाँ निकालीं और चबाने लगे। मैंने कुछ जवानों के पास नीले रंग के पेन भी देखे। बचपन से ही मेरी रुचि अच्छी किस्म की कलमों में रही है। मैंने पहली बार [illegible] देखे। उनसे लिखने का शौक बाद में पूरा हुआ। ▫

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

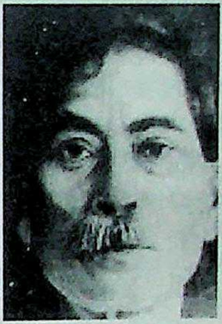

जीवनसिंह ठाकुर

सवा सौ साल के प्रेमचंद

उसके कहने का तरीका बड़ा ही लुभावना था। वह दर्द, तकलीफ, परेशानियों को बड़े ही सलीके से सुनाता था। लगता था जैसे उसे कोई परेशानी ही न हो, कोई दु:ख न हो। सुनाता भी ऐसे जैसे कहानी हो या किस्सा हो, सुनाते हुए उसकी आँखों में फैलाव आ जाता था, चेहरे पर सुकून भरी लालिमा छा जाती थी। कोई बात, भले ही वह सभी को पता होती लेकिन उसके मुँह से सुनने का एक अलग ही आनन्द था। इसमें एक बात यह भी थी कि उस बात को उसी से सुनकर हम अपने को तसल्ली-सी देते हुए लगते थे या जैसे अपनी ही बात की कोई तस्दीक, सील-ठप्पे लग कर आ जाती थी। उसके पास कहने को हमेशा बहुत कुछ रहता था। कहना भी कहने भर का नहीं होता था, उसके अपने विचार होते थे, एक नजरिया होता था। उसमें उसकी अपनी मौलिकता होती थी जो हमें कहीं बाँध लेती थी। हम सभी दोस्तों का समूह ऐसा था जिसमें न पैसा था न साधन थे। हम बेहद सामान्य परिवारों के लड़के थे, जिनके घर में माँ-बाप के पास अतीत की कहानियाँ थीं। वर्तमान को शालीन बनाने के लिए शिक्षाएँ थीं। देने को सपने थे। नैतिक शिक्षा से लबरेज, देखो बेटा! खुद ठगा जाना, लेकिन दूसरों को कभी ठगने का ख्याल भी मत लाना। यह तो बहुत वर्षों बाद साहित्य में पढ़ा कि कबीरदास जी ने इस पर दोहा कहा है—कबिरा आप ठगाइए और न ठगिए कोय...

हमें आश्चर्य होता कि कबीर की जड़ें कितनी गहरी हैं—जनमानस में। फिर इस पर बहस छिड़ जाती कि ठीक है हम ठगाएँ, हम दूसरों को ठगने का सोचे भी नहीं। लेकिन दूसरे तो तैयार बैठे हैं, लूटने को फरेब करने को। इस पर खूब बहस होती और अंतत:इस निष्कर्ष पर पहुँचते कि यह दोहा सभी के लिए है; ठगों-लुटेरों के लिए भी। खैर, बहस और किस्सागोई के आलम में कई बार इस पर बहस छिड़ गयी कि सन्-संवतों के फेर में क्यों पड़ा जाए, हम अपना वक्त किसी नये तरीके से भी बता सकते हैं—जैसे दादी बताया करती थी कि जब महाराज का महल किसानों ने घेर लिया था, बाबू फकीर गोली से मारा गया था, उसी रात पन्द्रह जवान लोग लटका दिये गये थे, दहशत की रात थी, उसी रात तेरे पिता का जन्म हुआ था। मैं दर्द से परेशान थी। अब आप ही बताइए कि जन्म का वर्ष और वक्त कैसे ढूँढ़ेंगे? बेशक सन्-संवत् गुम थे लेकिन दादी के पास उस संघर्ष की आग का इतिहास पूरी तरह था, उस इतिहास में सन्-संवत् खिंचे चले आते थे। बात सही थी...फिर हमने कई बार कोशिश की कि हमें अपने जन्मवर्ष, घटनाएँ, अपने तरीके से बताने चाहिए ताकि इतिहास बचा रहे। ये तारीखें, ये सन् बड़ा ही खिलवाड़ करते हैं और निरंतर करते ही रहते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसी ने इसमें नयी बातें जोड़ी थीं—देखो, मेरे भाई साहब का नाम अवनिन्द्र रखा था। बड़ा अजीब आपको देखने-सुनने में लगता हो। गुलामी के दिनों में जब पूरा देश ही अपना होते हुए अपना नहीं था। कुछ टुकड़ा जमीन पर बाप-दादा खेती कर लेते थे। लेकिन उस खेती के वे मालिक हैं या नहीं, ऐसा कोई कागज उनके पास नहीं था। एक रात तमाम खादीधारी चुन-चुनकर खदेड़ दिये गये। जमीन छीन ली गयी, जब उसकी फसल के इन्तजार में दादी सपनों की समृद्धि में ठण्डी-मीठी बयार महसूस कर रही थी। तिरंगे झण्डेवालों के लिए वहाँ कुछ नहीं बचा था। उस रात सब कुछ तोड़-फोड़ कर रियासत की सीमा के बाहर कर दिया। जिस कस्बे की सीमा में हमारा परिवार दाखिल हुआ वहाँ बड़े भाई का जन्म हुआ था। पिता ने नाम रखा था 'अवनिन्द्र' न 'अवनि' न 'इन्द्र' यानी राजा या मालिक, सब कुछ छिन जाने का नाम 'अवनिन्द्र'...माँ उस रात को टूटते घर को, रातों-रात भागते-हाँफते यादों के वक्त को याद करके भाई का जन्म याद रखती थी, सन् उसे बड़ी कठिनाई से याद आता है। पूरा दर्द लिये माँ अवनि भैया को याद रखती थी। ''उसने हमारे अन्दर भी मन्दिर की अखण्ड जोत की तरह वे यादें रख दी हैं।'' वह कहकर चुप हो जाता था। उसकी आँखों में वह मंजर डोलता था। हम सभी उस आँच को महसूसते थे। अजीब बात थी कि इन बातों की तस्दीक घर के बुजुर्ग तथा आस-पड़ोस के उम्रदराज लोग करते थे जिनमें उनके अपने दर्द जुड़ जाते थे। वह जोत लपलपाने लगती थी।

●

हम सभी ने अपने जन्मवर्ष, घटनाओं, महापुरुषों, आन्दोलनों से जोड़ लिये थे—एक तरह से नत्थी कर लिये थे। उसी ने बताया था कि उसके पिता ने उसका नाम 'निशान्त' कई लोगों से पूछ कर रखा था। लेकिन वे 'निशा अनन्त' कहते थे। आजादी के बाद निशा का अन्त होना था, लेकिन वह अनन्त हो उठी थी। पिता परेशान रहते थे मुल्क टूटना नहीं था लेकिन टूट गया। गाँधीजी को जिन्दा रहना था...मार दिया गया। जयप्रकाश और लोहिया को कांग्रेस में रहना था, नहीं रहने दिया। नेहरू को जिनके साथ होना था वे उनके साथ नहीं थे। जिनके साथ नहीं होना था वे उनके साथ थे। अजीब हालत थे। ऐसे में निशान्त को 'निशा अनन्त' कहते थे तो बुरा क्या था?

निशान्त हँसा, उसने कहा, यारो, मेरे पिता ने मेरा जन्मवर्ष बताने का एक तरीका ढूँढ़ा था। 'प्रेमचन्द के निधन के चौदह वर्ष बाद इस निशान्त का जन्म हुआ था।' कोई पूछता तो वे यही कहते। सुनने वाला अटपटा जाता था। कहते, यार तुम मुंशी प्रेमचंद को नहीं जानते? नेहरूजी को जानते हो तो प्रेमचंद को भी जानना चाहिए न! प्रेमचंद कब दिवंगत हुए तुम ढूँढ़ो, इस बहाने किताबें तो पलटोगे न! निशान्त ने ही बताया था कि पिताजी ने स्कूल में भर्ती कराते वक्त निर्धारित फार्म तो भर दिया था लेकिन ऊपर जो अर्जी लिखी थी उसमें लिखा था ''मेरा पुत्र निशान्त जो मुंशी प्रेमचंद के निधन के चौदह वर्ष बाद पैदा हुआ है इस वक्त पाँच वर्ष पूर्ण कर चुका है। मैं आपके विद्यालय में प्रवेश दिलाना चाहता हूँ।'' हेडमास्टर तथा शिक्षकों ने पढ़कर ठहाका लगाया था। लेकिन हेडमास्टर ने अपनी जानकारी बताकर पिताजी को सुकून से भर दिया था। यानी आपका बेटा 1950 में जनमा है।...

हमलोग अपने सन् अपने संवत बना रहे थे। इनमें न राजा थे न महाराज थे न सम्राट थे न ब्रिटिश दासता थी न आपाधापी थी। वक्त था, वक्त की सच्चाई थी। सच्चाई यह थी कि चीन का आक्रमण होते-होते काफी कुछ समझने लगे थे। पंचशील की धज्जियाँ उड़ाता चीन तेजपुर, बोमदिला आ गया था। नेहरू का चेहरा फक्क पड़ गया था। हार का मातम देश में था। नेहरू से भरोसा नहीं टूटा था...लेकिन नेहरू टूट गये थे। निशान्त की बहन अम्बिका के जन्म के एक साल पहले नेहरू दिवंगत हो गये थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निशान्त और हममें अब वक्त 'नेहरू के पहले और नेहरू के बाद' में थम गया था। 'निशान्त, नेहरू की मृत्यु के पूर्व तथा अम्बिका नेहरू की मृत्यु के पश्चात्' में हमारे बीच जानी जाती थी। प्रेमचंद के चौदह बरस बाद का काल अपनी जगह था ही, हम सभी वक्त की रफ्तार में से वक्त ढूँढ़ते थे। जिसे रफ्तार कहते थे वो किन्हीं खास लोगों की थी। वे कहते थे कि वक्त ने रफ्तार पकड़ ली है। निशान्त किस्सा सुनाता—कहाँ बदला? आज प्रेमचंद होते तो 'ठाकुर का कुआँ' और ज्यादा तीखा लिखते। कुआँ वही है...जोखू वहीं है उसे पानी आज भी नहीं मिला है। जोखू का क्या हुआ पता ही नहीं चला...'ठाकुर का कुआँ' ऑफिस-ऑफिस, कस्बे-कस्बे, पंचायत-पंचायत में खुद गया है, वह फैल गया है, कुएँ का मुँह विशाल हो गया है। उसमें सब समाता जा रहा है, दुनिया बड़ी चालाक है, हम सभी ने 'ठाकुर का कुआँ' कोर्स की किताब में पढ़ी थी, उसके प्रश्न-उत्तर लिखकर अंक लाए थे। लेकिन उन अंकों में जोखू का दर्द नहीं था। निशान्त बड़ा ही अजीब था। वह अंकसूची ढूँढ़ने पर मजबूर कर देता था कि इन अंकों ने बड़ा भ्रम खड़ा कर दिया है। जोखू को कुएँ से ही नहीं, इलाके से भी खदेड़ दिया गया है। उसे ढूँढ़ना पड़ेगा कि वह कहाँ है? वह जिस बस्ती में होगा वह उजाड़ दी होगी, आग के हवाले कर दी गयी होगी। हमारे मुल्क ने साहित्य को, कहानी को, कविता को, उपन्यास को कोर्स के कारागार में बन्द कर दिया है, कोर्स के माफियाओं के हवाले कर दिया है, बस कुछ मनमाने प्रश्न ओर बँधे-बँधाए उत्तर, एवज में कुछ अंक, छात्र खुश, माँ-बाप खुश, बात खत्म। परीक्षा पास और उत्तीर्ण का कागज हाथ में...

प्रेमचंद ने 'ईदगाह' इसलिए लिखी थी कि परीक्षा में प्रश्न बनाओ और उत्तर दो? अरे दूसरों के दर्द अपनों की तकलीफें समझो, दर्द समझने की कहानी है, जब दुःख और परेशानी हम नहीं समझेंगे तो दुनिया कैसे और किस तरह की बनाएँगे? हम सभी खूब सोचते और निशान्त से सहमत होते थे और बात सच्ची थी। 'पंच परमेश्वर' का क्या हुआ? इस कहानी में 'ईमान' खास है, ईमान हमें कायम करना है, कोर्ट कचहरियों के झूठे तिलस्म से मासूमों को मुक्त करना है। प्रेमचंद कचहरी के खूनी पंजों से लोगों को आगाह कर रहे थे कि अपने ईमान को, अपने न्याय को अपने से दूर मत जाने दो, फरेब की गुंजाइश मत रहने दो। आज कहानी बच्चों की किताबों में प्रश्नों-उत्तरों के जाल में उलझ गयी है। कचहरी का तिलस्म खूनी हो उठा है। चारों तरफ खून ही खून है लाल-लाल और लालिमा गायब है...

उन दिनों हमारे जेहन में साहित्य को खंगालने की, उसकी प्रासंगिकता, उसके लोक महत्त्व पर काफी बातें होती रहती थीं। और हम बुरी तरह दुःखी हो उठते थे। अन्दर ही अन्दर खदबदाते रहते कि साहित्य का हश्र कैसा हुआ है आजाद मुल्क में।

'कफन' हम सभी के बीच हमेशा फड़फड़ाता रहा। गहरी टीस देती रही यह कहानी। निशान्त हमेशा की तरह कहता 'कफन' क्या यूँ ही लिखी गयी थी? कफन क्या थी? कफन महज तीन-चार लोगों की दास्ताँ तो नहीं थी, कफन को गिनाने भर के लिए ही तो नहीं लिखी गयी थी। तड़पती उस औरत का आर्तनाद, भूख का विकराल चेहरा, गरीबी की लपलपाती आग, सभ्यता के क्रूर पंजों की जकड़न को समझाने का कफन ने दरवाजा मुहैया कराया था, खूनी पंजों के खिलाफ मोर्चा खोलने, दिल-दिमाग को खोलने की बात थी। क्या हुआ कफन का? नोच ले गये न लोग...विश्वविद्यालय, बुद्धिजीवी, किताबों की दुनिया के मालिकों ने कफन में सुनहरी किनारियाँ लगाकर काँच के बर्तन में धर दिया। हमारे बीच सन्नाटा खिंच गया था। ठिठुरन-सी भर गयी थी जैसे 'प्रसव की रात' हो। कफन की औरत पीड़ा भोग रही थी, भोगना भी क्या पीड़ा का राग गा रही थी। अब दुनिया कहाँ पहुँच गयी, नंगी नचवाई जाती औरतों के बीच; नाम क्या रखा औरत की आजादी? ये आजादी है या औरत को 'सर्वसुलभ' बनाने का कथित सभ्य तरीका!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कदम-दर-कदम यह दुनिया भ्रूण तक पहुँच गयी, औरत भ्रूण में ही मारी जा रही है खूबसूरत उन्नत तरीकों से। वाकई कफन कितना बड़ा और विशाल हो गया है पूरे मुल्क पर, दुनिया पर फड़फड़ा रहा है। कैसी जंग छिड़ी है कफन को कब समझेंगे? अब माँ नहीं, बहन नहीं, पत्नी नहीं सिर्फ देह, दर्शना, बाजार में सजी औरत रिश्तों से खारिज होती औरत...औरत को हड़पने का पढ़ा-लिखा आधुनिक तरीका है। क्यों है न!

निशान्त की बातों में, उसके कहने के तरीकों में बड़ा दम था। वह होरी को आज भी देखता था, 'गबन' की जालपा, गोदान के होरी, 'सेवासदन' की सुमन को परखता था। 'कर्मभूमि' की तलाश करता था। फिर पता नहीं क्या हुआ वह कई महीनों से नहीं दिखा। फिर हमलोग अपनी-अपनी रोजी-रोटी की खोज में बिछड़ गये थे। घरों से निकल गये थे। लम्बे समय तक एक दूसरे की खबर नहीं ले पाये। बहुत बरस बाद मालूम पड़ा कि निशान्त के पिता आपात्काल के दौर में किसी हवालात में मरे पाये गये थे। अवनिन्द्र भैया ने 'नौकरी जाने' के डर से पिता की लाश पहचानने से इंकार कर दिया था। यह बात अखबार से पता चली थी बाद में 'इन्दिरा हत्या' के बाद के दंगों के बाद निशान्त ने हमें बताया था।

हमने निशान्त को काफी खोजा लेकिन उसका पता नहीं चला था। अगर दंगों में आपाधापी में वो घटना नहीं घटती तो निशान्त का हमें पता नहीं चलता। बात यूँ हुई कि आपात्काल के बाद के वर्षों में मोरारजी, चरणसिंह प्रधानमंत्री बनकर इतिहास में बतौर नाम सूची में अटक गये थे। इंदिरा गाँधी का परचम लहरा रहा था। खालिस्तानी आंदोलन खूनी हो उठा था। घर में ही इंदिरा गाँधी की हत्या हो गयी थी। वाकई देश में सन्नाटा खिंच गया था। देश में अजीब किस्म के दंगे शुरू हो गये थे। रेलों, बसों पर हमले होने लगे थे, ट्रेन ग्वालियर से चली ही थी कि एक भीड़ ने हमला किया था और अवनिन्द्र भैया अन्य लोगों के साथ मारे गये थे। अखबार में छपी खबर पढ़कर निशान्त लाश लेने पहुँचा था। तभी निशान्त का पता चला था। वह दिल्ली के आसपास कहीं है। राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बन गये थे। इन्दिरा हत्याकांड और दंगों के सदमे से मुल्क बाहर आ रहा था। उबर रहा था। आरोप-प्रत्यारोप से अखबार भरे थे।

●●

जैसे-तैसे हम दोस्त इकट्ठा हुए थे। निशान्त को ढूँढ़ते हुए पहुँचे —वह किसी खाद्य विभाग में बैठा हुआ मिला था। जहाँ उसे पहले तो पहचानने में कई मिनट लग गये थे। उसके बाल सफेद हो गये थे, बीच से बाल झड़ चुके थे। वह हमें भी पहचानने की कोशिश करता रहा। हम पर भी वक्त ने अपने निशान छोड़े थे। अंततः हमें कहना पड़ा ''तुम्हीं हो वो महान व्यक्ति जिसका जन्म मुंशी प्रेमचंद के चौदह बरस बाद हुआ था।'' उसकी आँखों में चमक लौट आयी थी। चेहरे पर वही गली-मुहल्ले वाली अल्हड़ चमक दीखने लगी थी। वह वाकई खुश नजर आया। वह गले मिला फिर टेबल के आसपास बैठा लिया। वह हमें देखे जा रहा था। शायद अपने को समेट रहा था। समेट कर एक ऐसा ढेर बनाना चाह रहा था जिस पर चढ़कर वह बात शुरू कर सके। बात हमने ही शुरू की। निशान्त! बाबूजी का आपात्काल में इस तरह मरना वाकई दिल दहलाने वाली घटना थी...वह चुप रहा...उसकी आँखों में हल्की-सी नमी नजर आयी। अवनि भैया का दंगों में मारा जाना बहुत ही दुखद है...उसकी पलकों से नमी बूँदों के रूप में टपकने लगीं...लेकिन वह सँभल गया था...खैर छोऽऽऽड़ोऽऽ याऽऽऽर...उसने एक लम्बी साँस ली। जो होना था हो गया...अवनि भैया के बच्चे मेरे साथ हैं। भाभी भी यहीं हैं। वे कुछ ट्यूशन, सिलाई वगैरह का काम कर लेती हैं। मेरे दो बच्चे थे। हम उसके 'थे' कहने पर चौंके...हमारे बीच चुप्पी थी, ऐसी कगार पर थे, जहाँ से किसी भी तरह की [illegible] हो सकती थी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अभी भी चुप्पी हमारे बीच थी। सँभलकर पूछा...'थे' का क्या मतलब? वह हल्का-सा मुस्कुराया जैसे...क्या कहें यार कह रहा हो। उसने कहा एक लड़का एक लड़की थी। प्रेमचंद के इक्यावन बरस बाद एक घटना घटी थी। लड़की होशियार थी। खूब पढ़ती थी। लेकिन स्कूल क्या है...तुम जानते हो...स्कूल क्या है? जेल है...जेल हैऽऽ...अंडमान की जेल से ज्यादा घातक, खूब होमवर्क, सैकड़ों प्रश्नों की रटाई, दिन भर पढ़ो, रात में रटो, सुबह उठना, स्कूल में डाँट-डपट...इधर मैं रोटी की जुगाड़ में था, पत्नी भी बेचारी कुछ काम-धाम करती लड़ती-थकती-हारती चली गयी...वह रुका उसने अपना सीना दबाया, एक गहरी साँस ली जैसे बहुत दूर से दौड़ता आ रहा हो...उसने हमें बेहद बूढ़ी और बुझी-बुझी निगाहों से देखा...देखता रहा...जैसे तैयारी कर रहा हो! हाँऽऽ तोऽऽ एक दिन ढेर सारा होमवर्क, डाँट-डपट खाकर स्कूल से लौट रही थी।...साली रेल किस काम आती...बेटी ने पटरी पर सर रख दिया था...वह हिचकियों में डूब गया था। हम अपनी आँखें पोंछ रहे थे। टेबल पर पानी की केटली रखी थी। हमने उसके कंधे थामे...पानी पिलाया। उसने पानी पिया...पानी अंदर गया तो जैसे वह तैरता हुआ बाहर आया। खैर जो हुआ क्या करते...एक लाचारी उसकी हकीकत के खाने में बैठ गयी थी। हमने पूछा, लड़का यानी हमारा भतीजा कहाँ है? वह बोला, हाँ वह है...शायद कहीं होगा...क्यों वह साथ नहीं रहता है? क्या पत्नी को लेकर अलग हो गया है? वह जैसे काँटों की झाड़ी से निकला। नहीं यार, नहीं, वह है शायद इसी बड़े शहर में कहीं है। हो भी, नहीं भी हो...उसने हमें गहरी निगाहों से देखा...गीली-गीली आँखों में मुस्कुराया...जहाँ सिर्फ दर्द लहरा रहा था...बोला...कोई 'नमक के दारोगा' के साथ रहता है? लड़के ने साफ-साफ कहा था, मैं इस ईमानदारी भरी गरीबी के साथ मरना नहीं चाहता। यारो तुम्हीं बताओ कोई अलोपीदीन है जो दारोगा के लिए मुहब्बत लेकर आये...अब दारोगा अकेला है।... हमारे बीच चुप्पी जैसे बर्फ की मानिन्द जम रही थी। सर्द और ठण्डी...मेरा बेटा डेढ़ कमरे के क्वार्टर में कैसे रहता? अवनि भैया के बच्चे भी हैं...भाभी हैं...उसने पत्नी के बारे में कुछ कहा नहीं था...निशान्त! भाभी यानी तुम्हारी पत्नी कैसी है? उसे खाँसी का ठसका आया और उसमें उलझ गया...उसका चेहरा लाल हो गया था वह हाँफने लगा था...सँभला और फिर बोला...रुका दो घूँट पानी पिया...मेरी पत्नी...ठीक है...हाँ जिस हालत में तुम मुझे देख रहे हो...वह इससे ज्यादा हीं नजर आएगी...वह दुःखी हो गया था। खैर छोड़ो, वह उठ खड़ा हुआ, बोला, कैंटिन चलते हैं। बाहर ठण्डी हवा में थोड़ा हल्कापन लगा...उसने हम सभी के घरों, परिवारों, बच्चों के बारे में पूछा था। हम कैंटिन के बाहर रुक गये थे। बाहर दो टेबल रखी थीं...जिस पर पेड़ों से टूटी कुछ पत्तियाँ पड़ी थीं। हल्की-सी ठण्डी हवाएँ चल रही थीं।

गिलासों में चाय आ गयी थी। हम चाय पीने लगे...वह अन्दर से खदबदा रहा था। हमारे दिलों में हलचल मची थी। चाय खत्म हो रही थी। हमने चाय खत्म की। उसने हमें पैसे नहीं देने दिये। कैंटिन वाले ने किसी डायरी में नोट किया था। हम पेड़ के नीचे आ गये। सड़क पर ट्राफिक था...लेकिन ज्यादा नहीं...देखते नहीं...वह बोला क्या? हमने उसे देखा...प्रेमचंद के अड़सठ बरस बाद ये दुनिया क्या हो गई है। कफन फड़फड़ा रहा है वही पूस की रात है वही ठाकुर का कुआँ है, दंगे हैं बलात्कार हैं, उजड़ती बस्तियाँ हैं। आत्महत्याएँ है, कांड दर कांड हैं, जनमवर्ष मानो तो सवा सौ बरस हो गये। अभी तुम भी हो...हम भी हैं...उसकी आँखों में फिर एक हौसला-सा दिखा। वह कुछ कहना चाहता था। हमने ही कह दिया...हम तुमसे मिलने आये थे। हमें अभी पाँच बजे की गाड़ी से ही लौटना है। कल सभी को अपने-अपने काम धंधों पर जाना है। हो सका तो फिर कभी आएँगे...वह दुखी और हताश नजर आया...हम गले मिले थे...भाभी को नमस्ते कहना...हम सभी ने उसे देखा, उसने नम आँखों से देखा...एक झटके से हम पलटे और शहर की भीड़ में से गुजरते हुए...स्टेशन आ गये थे... ◼

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आँगन

पंजाबी लोकगीत

विनी तेरी हरी-भरी फुलाँ दी चंगेर भरी

मूली दा पत हरिया-भरिया
वीर सौदागर घोड़ी चढ़िया
आ वीरा, तू जा वीरा
विनी तूं सदा वीरा
विनी तेरी हरी-भरी
फुलाँ दी चंगेर भरी
इक फुल जा पेया
राजे दे दरबार पेया
राजा बेटी सुत्ती-सी
सुत्ती नूं जगाया-सी
रत्ते डोले पाया-सी
रत्ता डोगा काई-दा
सभो वीर व्याही दा

(मूली का पत्ता हरा भरा
वीर सौदागर घोड़ी चढ़ा
आ मेरे वीर, तू जा मेरे वीर
तू सदा जिये, मेरे वीर
तेरा जीवन रहे हरा-भरा
फूलों भरी चंगेर थी
उसमें से इक फूल गिरा
राजा के दरबार में
राजा की बेटी सोई थी
सोई बेटी को जगाया था
सुर्ख डोले में बिठाया था
सूर्ख डोला किस का था
सब वीर ब्याहने पड़ते हैं)

प्रस्तुति : सुरजीत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तात्याना तोलस्ताया

रात

रूपान्तर : पंकज मालवीय

सुबह-सुबह अलेक्सेई पित्रोविच की मामच्का जोर-जोर से जँभाई लेती है : हुररा, नई सुबह दस्तक देती है सामने खिड़की पर, चमक उठते हैं कैक्टस, पर्दे हिलते हैं, बन्द हो जाता है दरवाजा रात की हुकूमत का, समा जाते हैं फिर से जमीन में ड्रैगन, कुकुरमुत्ते और अजीबोगरीब बौने, जी उठती है जिन्दगी और बजने लगती है अग्रदूत की तूतूहरी नए दिन के आगमन में—तू रू रू रू उ रू रू उ उ...।

जल्दी-जल्दी खुजाती है अपने गंजे सिर को मामच्का। ऊँचे पलंग से बाहर रखती है अपने खुरदरे पैर—यूँ ही लटके रहें ये, सोचे, उन्हें कैसे ढोना है दिन भर एक सौ पैंतीस किलोग्राम का वजन जो मामच्का के शरीर पर पिछले अस्सी सालों में चढ़ गया है।

अलेक्सेई पित्रोविच आँखें खोलता है, धीरे से बाहर आता है सपना शरीर से, खो जाता है वह, उड़ता है अँधेरे में आखिरी कौवा, अपनी भ्रमित, दुअर्थी गठरी समेटे रात के मेहमान छोड़ जाते हैं नाटक को बीच में ही अगली बार शुरू होने के लिए। धीरे-धीरे सहलाती है हवा अलेक्सेई पित्रोविच के गंजे सिर को और दुखती है हथेली उसकी दाढ़ी के कड़े बालों से। उठने का वक्त नहीं हुआ क्या? मामच्का कहती है। ऊँची आवाज वाली भारी-भरकम है मामच्का और छोटा-सा है अलेक्सेई पित्रोविच। मामच्का सब कुछ कर सकती है। सर्वशक्तिमान है वह। जैसा वह कहेगी वैसा ही होगा। अलेक्सेई देर से हुआ, बेडौल छोटा-सा, कुदरत का मारा, सड़ा बीज, साबुन का बचा टुकड़ा, शैवाक, जलाऊ छिलका और अपने तंदुरूस्त भाइयों के बीच अकस्मात् टपका घुसपैठिया पैदा हुआ था, जब सृष्टिकर्ता ने यूँ ही बिखेर दिया था जमीन पर खून से सने बीज को। अब उठना है या अभी भी जल्दी है? झाँको मत। सुबह की कवायत पूरी करती है मामच्का, नाक साफ करती है रूमाल से, कसी स्टाकिंग्स को पैरो में ऊपर खींचकर उन्हें सूजे घुटनों पर सफेद प्लास्टिक की पट्टी से बाँधती है। पन्द्रह बटन वाली कोटी उभरे वक्षस्थल पर कसी रहती है। पीछे से उन्हें बन्द करना शायद आरामदेह नहीं है। मामच्का के सिर पर जूड़ा बँधा है, रात में रखे साफ गिलास से खिलते हुए झाँकते हैं सफेद दाँत। मामच्का के आगे का शरीर ढँका रहता है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किनारीदार सफेद कमीज से। पीछे के नाड़े, बगले, पिछवाड़ा, सीढ़ियाँ, आकस्मिक द्वार को छिपाते हुए मोटी, नीली जैकेट, पूरी भव्य इमारत को ढँके रहती है। महल खड़ा हुआ है।

मामच्का तुम जो करती हो अच्छा करती हो। सही करती हो। फ्लैट के सभी लोग जाग चुके हैं, उनके काम और बातचीत का शोर कानों में पड़ता है, दरवाजे की भड़भड़, पानी का उबलना और दिवारों के पीछे का हो-हल्ला साफ है। निकल चुका है गोदी से नीले पानी को चीरता सुबह का जहाज, हवा से भर गया है पाल, बातें करते हैं डेक पर खड़े खूबसूरत लिबास में पर्यटक। आगे कौन-सी धरती है? मामच्का पतवार सँभाले हैं। वह कभी कैप्टन के ब्रिज पर तो कभी मस्तूल पर खड़ी निहारती है, चढ़ती-उतराती लहरों को।

अलेक्सेई, उठो। दाढ़ी बनाओ, दाँत साफ करो, कान साफ करो, साफ तौलिया लो, टूथ पेस्ट का ढक्कन ठीक से बन्द करो। पानी बहाना मत भूलना। कुछ और मत छूना ठीक है?

ठीक है, ठीक है, मामच्का। तुम सब ठीक कह रही हो। समझ आ गया है सबकुछ साफ-साफ। क्षितिज महक उठा है। कितना भरोसेमन्द है तजुर्बेकार पायलट के साथ तैरना। पुराना रंगीन नक्शा खुला है, रास्ते रेखांकित हैं लाल-लाल बिन्दुओं से, स्पष्ट हैं सब खतरे समझ आने वाले उभरे चित्रों से, यहाँ गरजता शेर, और इस किनारे पर रायनों, यहाँ छोटा-सा फुव्वारा बनाती व्हेल और वहाँ कुटिल मुद्रा में टेढ़ी खड़ी खतरनाक, बड़ी-बड़ी आँखों और पूँछ वाली चालाक जलपरी।

अब अलेक्सेई पित्रोविच मुँह धोकर अपने आपको ठीक करेगा, मामच्का आकर देखेगी, वहाँ गन्दगी मत करना, नहीं तो पड़ोसी फिर से डाँटेंगे; और फिर आकर खाना खाना। आज खाने में क्या बनाया है मामच्का ने? रसोई से होकर बाथरूम में जाना पड़ता है। बूढ़ी औरतें रसोई में खड़ी बड़बड़ाती हैं, अजीब-अजीब घास की जड़ों को पतीले में डालकर जहर उबालती हैं। जाते हुए अलेक्सेई को वे हिकारत की नजरों से देखती हैं। मामच्का। मुझे उनसे डर लगता है।

फर्श पर ही वह थोड़ा पेशाब कर देता है। ओ ऐ!

गलियारे में शोर-शराबा है। जोर-जोर से बातें करते, चाबियाँ और पर्स खँगालते लोग आते-जाते हैं। कोने का धुँधले शीशेवाला दरवाजा बड़ा हो जाता है। दहलीज पर खड़ी ढीठ जलपरी कुटिल मुस्कान से आँख मारती है अलेक्सेई पित्रोविच को। सिगरेट पीते हुए टेढ़ी खड़ी पैर दिखाती है। ''मैंने जाल बिछाया है, फँसोगे नहीं तुम इसमें, बोलो? मामच्का बचायेगी मुझे। वह लाल-लाल पहियों वाली गाड़ी लायेगी, सीटी मारेगी और रास्ता साफ हो जायेगा।''

''बेशरम, मैं कहती हूँ, हटो यहाँ से, तुम्हें कोई दूसरा नहीं मिला सिवाय इस बीमार आदमी के...।'' —हा, हा, हा! जलपरी डरती नहीं है।

अलेक्सेई कमरे में घुस जाता है। बचाओ, उफ...। औरतें बड़ी भयानक हैं। क्यों हैं ऐसी वे, पता नहीं। बहुत सताती हैं। सामने से गुजरती हैं, महकती हैं...उनके...सुन्दर-सुन्दर पैर! बहुत हैं सड़क पर ऐसी, हर घर में, यहाँ-वहाँ हर दरवाजे के पीछे छिपकर कुछ-न-कुछ करती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं, झुकती हैं, खोजती हैं, मुट्ठी भींचे खी-खी करती हैं। जानती हैं सब कुछ, पर अलेक्सेई को नहीं बताती हैं। मेज के पास बैठा अलेक्सेई औरतों के बारे में सोचता है।

एक दिन मामच्का उसे अपने साथ शहर के बाहर ले जाती है समुद्र के किनारे : वहाँ कई बीच होते हैं। वहीं उसे दिखाई देती है लहराती कुत्तेनुमा एक जलपरी। अलेक्सेई को भा जाती है वह। अलेक्सेई उसके पास जाता है और उसे घूरने लगता है।

''क्या चाहिए तुम्हें, हैं?'' परी जोर से पूछती है, ''भाग जाओ यहाँ से शैतान!''

मामच्का गर्म पैन लिए अन्दर आती है। अलेक्सेई उसमें झाँकता है। उसमें गुलाबी गुलाबी सॉसेज के टुकड़े पड़े होते हैं। वह खुश हो जाता है। मामच्का पैन रखती है। उसे खिसकाकर मेज पोंछती है। अलेक्सेई की उँगलियों से छूटकर चाकू किनारे टेबल क्लाथ में घुस जाता है।

''हाथ से..., हाथ से खाओ।''

आहा, मामच्का, रास्ता बताने वाला चमकीला तारा है। मामच्का, तुम सब कुछ कर सकती हो, अक्लमंद हो, सारी गुत्थियाँ सुलझा सकती हो। उलझे, अभेदीय संसार की सब भूल-भुलैया नेस्तनाबूत कर सकती हो अपने मजबूत हाथों से। पोत भीत को ध्वस्त कर सकती हो—यह रहा सटीक, सपाट मैदान! मजबूती से बढ़ाओ एक और कदम! आगे-अंधड़ से गिरे पेड़।

अलेक्सेई पित्रोविच की अपनी दुनिया है उसके दिमाग में। वहाँ कुछ भी हो सकता है। और यह बाहरी दुनिया—बकवास, दिखावा! क्या अच्छा है और क्या बुरा, याद रखना बहुत मुश्किल है। उनकी अपनी शर्ते हैं, समझौते हैं और उलझे उसूल। उसकी याददाश्त अच्छी है। पर दूसरों की तर्ज पर जीना अलेक्सेई के लिए मुश्किल है।

मामच्का कॉफी उड़ेलती है। कॉफी की महक उठती है। पीते हुए वह सीधे नाक में घुसती है। क्यों न पाइप की तरह होटों को फैलाओ, आँखों से मुँह को देखो और महक खींच लो। मामच्का को दूसरे काम करने दो।

अलेक्सेई, ठीक से बैठो।

नाश्ते के बाद साफ होती है मेज। गोंद, गत्ता, और कैंची रखी जाती है, अलेक्सेई पित्रोविच के गले में बिब बाँधा जाता है। वह डिब्बा चिपकायेगा। सौ के करीब डिब्बे बनायेगा, जिन्हें दवाखाने ले जाया जायेगा। पैसा मिलेगा। अलेक्सेई पित्रोविच को ये डिब्बे बहुत अच्छे लगते हैं। उनकी जुदाई उसके लिए बहुत दुःखदाई है। वह चुपके से कुछेक डिब्बे छिपाकर अपने पास रखना चाहता है। लेकिन मामच्का की तेज निगाहें उन्हें पकड़ लेती है।

फिर दवाखाने से उन डिब्बों को ले जाते हैं लोग, उसमें से खाते हैं गोलियाँ और डिब्बों को फाड़कर फेंक देते हैं सीधे कूड़ेदान में। घर, रसोई और कूड़ेदान में सिगरेट के टुकड़ों से भरे मुसड़े फटे डिब्बों को देखकर अलेक्सेई का पारा ऊपर चढ़ जाता है, उसकी आँख निकल आती है, मुँह फेन से भर जाता है, हकलाने लगता है वह, आँखों के सामने भयानक दृश्य घूमने लगते हैं। गला घोंट दूँगा, टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। किसने किया है यह सब? किसकी हिम्मत है इतनी? बाहर निकल साले। वह बाँहें चढ़ाता है। कहाँ है वह?

मामच्का भागती हुई आती है। पुचकारते हुए अलेक्सेई को वहाँ से ले जाती है। उसके हाथ से चाकू और उँगलियों में कस कर पकड़े हथौड़े को छीन लेती है। लोग अपने-अपने कमरों में सहमे, डरे चुपचाप बैठे रहते हैं।

सूरज दूसरी खिड़की पर पहुँच जाता है। अलेक्सेई काम खत्म करता है। कुर्सी पर बैठे-बैठे मामच्का की आँख लग जाती है। खर्राटे लेते समय उसके गाल फूलते हैं और नाक से श श...की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सीटी बजती है। अलेक्सेई चुपके से दो डिब्बे लेकर दबे पाँव, होशियारी के साथ पलंग के पास आता है और डिब्बों को तकिये के ठीक नीचे रख देता है। रात में उन्हें वहाँ से निकालकर सूँघता है। क्या महकती हैं गोंद! सोंधी-सोंधी कुछ खट्टी-सी, अघोष जैसे अक्षर 'फ'।

मामच्का जागती है। अब टहलने का वक्त हो गया है। नीचे जाना है सीढ़ियों से, लिफ्ट से बिल्कुल नहीं—अलेक्सेई को लिफ्ट में बन्द नहीं होना है, वह भड़भड़ करता है, खरगोश की तरह चिल्लाता है, पैर खींच -खींच कर उसे बाहर निकलना पड़ता है।

मामच्का जान-पहचान वालों से दुआ-सलाम करती आगे चलती है। आज डिब्बे ले जाये जायेंगे। अलेक्सेई को अच्छा नहीं लगता है। वह जानबूझ कर पैर में पैर फँसा लेता है, उसे दवाखाने नहीं जाना है।

अलेक्सेई, जीभ अन्दर करो।

धूप ऊँचे-ऊँचे घरों के पीछे चलती जाती है। छतों के ठीक नीचे सुनहरे शीशे चमकते हैं। वहाँ खास लोग रहते हैं। हम लोगों की तरह नहीं। एक बालकनी से दूसरी बालकनी में पंख फड़फड़ाते सफेद कबूतर उड़ते हैं। चिकना बदन, ऊनी गोला, आदमी-सा चेहरा—अगर ऐसी कोई चिड़िया सिर अन्दर किये चहचहाती हुई आपकी रेलिंग्ज़ पर बैठी हो तो उसकी आँखों में आँखें डालकर देखो, आदमी की जुबान भूल जाओगे और खुद-ब-खुद चिड़िया-से चहचहाने लगोगे और बालों वाले पैरों से लोहे के खम्भे पर फुदकोगे।

क्षितिज के पार, तश्तरीनुमा जमीन के नीचे विशालकाय पहिये घूमने लगते हैं, भीमकाय बेल्ट ड्राइव और घूमते हुए दँतीले पहिये सूरज को खींचकर नीचे लाते हैं और चाँद को ऊपर। दिन थक गया है। अपने सफेद पंख समेटे, ढीले-ढाले कपड़ों में वह हाथ हिलाता, तारों को बिखेरता, ठण्डी धरती पर आने-जाने वाले लोगों को आशीर्वाद देता पश्चिम की ओर उड़ता जाता है : फिर मिलेंगे, फिर मिलेंगे, कल फिर मिलेंगे।

सड़क के कोने में आइसक्रीम बिकती है। आइसक्रीम खाने का बहुत मन करता है। लोग, खास कर औरतें—चाकोर खिड़की में पैसे सरकाकर साफ्टी आईस क्रंच लेती हैं। हँसती हैं, जमीन पर टपकाते हुए गोल चिपचिपे कागज को दीवार पर चपकाते हुए, मुँह खोल-खोलकर अपनी लाल-लाल जीभ से मीठी कोननुमा ठण्डी आइसक्रीम को चारों ओर से चाटती हैं।

मामच्का, आइसक्रीम

नहीं, तुम्हें मना है। तुम्हारा गला बैठा है।

नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं।

लेकिन मुझे आइसक्रीम चाहिए ही चाहिए। ओह हो, बहुत मन कर रहा है। काश, इन लोगों की तरह मेरे पास भी इतना पैसा होता। सुनहरे, चमकीले या पीले कागज। ब्रेड से महकते इन पैसों को इस चाकोर खिड़की में ले लेते! ओह, कितना मन कर रहा है आइसक्रीम खाने को! सब लोग खा रहे हैं।

अलेक्सेई, सिर मत खाओ।

ठीक है, मामच्का को सबकुछ मालूम है।

मामच्का का कहना मानूँगा। केवल उसे ही इस घोर संसार में रास्ता मालूम है। काश, मामच्का मुड़ जाये...पूश्किन चौक पर।

मामच्का, पूश्किन—लेखक है?

हाँ, लेखक है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं भी लेखक बनूँगा।

जरूर! चाहोगे तो जरूर बनोगे।

अभी क्यों नहीं? —चाहते हो? कागज और पेंसिल लो और लेखक बन जाओ। सब कुछ तय हो गया। वह लेखक बनेगा। यह ठीक है।

शाम को मामच्का आरामकुर्सी पर बैठती है। नाक पर चश्मा नीचे किये धीरे-धीरे पढ़ती है :

'आँधी आसमान को ढँक लेती है धुँध से,
तूफान बर्फानी घुमड़-घुमड़ करता है,
चीखता कभी जानवर -सा वह,
तो कभी बच्चों-सा रोता है।'

अलेक्सेई को यह कविता बहुत अच्छी लगी। अपने पीले-पीले दाँत दिखाते हुए वह खुलकर हँसता है और मारे खुशी के पैर पटकता है।

'चीखता कभी जानवर-सा वह
तो कभी बच्चों-सा रोता है।'

इस तरह ये शब्द आखिर तक जाते हैं और फिर पीछे मुड़ते हैं, फिर से आगे जाते हैं। और फिर पीछे मुड़ते हैं।

'आँधी-आ, समान को, ढकले, तीहैधु, न्धसे,
तूफानब, फर्नीघु, मड़घु, मड़क, रता है,
चीखताक, भी जानवर-सा वह,
तो कभी, बच्चों-सा, रोता है।

बहुत अच्छा! वह ऐसे चीखता है : ऊ ऊ ऊ...।'

धीरे-धीरे, अलेक्सेई, चुप हो जाओ।

आसमान अभी भी सितारों से पटा पड़ा है। अलेक्सेई पित्रोविच उन्हें जानता है : छोटी-छोटी चमकती मोतियाँ, अँधेरे शून्य में अपने-आप चमकती हैं ये। अलेक्सेई जब पलंग पर लेटकर सोना चाहता है तो उसके पैर खुद-ब-खुद नीचे ही नीचे बढ़ते जाते हैं और उसका सिर ऊपर ही ऊपर उठता जाता है काले गुम्बद तक, और ऊँचा, तूफान में पेड़ की फुनगी-सा झूलने लगता है वह। तारे उसकी खोपड़ी पर बालू जैसे रगड़ खाते हैं। अन्दर दूसरा अलेक्सेई पित्रोविच और सिकुड़ता है, भींचता है, गिरता है पोस्ते के दानों पर, सूई की नुकीली नोंक पर, जीवाणु पर, और कहाँ नहीं। अगर उसे कोई न रोके तो वह वहाँ हमेशा के लिए चला जायेगा। लेकिन बाहरी भीमकाय अलेक्सेई जहाज की तरह डोलता है, उठता है, अँधेरे गुम्बद में गंजे सिर को पीटता है, छोटे अलेक्सेई को भागने नहीं देता। ये दो अलेक्सेई पित्रोविच एक ही हैं। यह समझ आता है, और सही भी है यह।

घर में मामच्का कपड़े बदलती है। दिन का लिबास फेंकती है और लाल गाउन पहनती है। वह गर्म, सहज और आरामदेह महसूस करती है। अलेक्सेई पित्रोविच गोदी में बैठना चाहता है। क्या बकवास है। मामच्का रसोई में चली जाती है। बहुत देर तक वह वहाँ रहती है। अलेक्सेई पित्रोविच कमरे में देखता है कि डिब्बे वहाँ हैं या नहीं। गोंद सूँघता है और खतरा उठाकर बाहर गलियारे में आ जाता है। कोने का दरवाजा जहाँ रात में जलपरी के मेहमान खड़े खी-खी करते हैं, थोड़ा-सा खुला रहता है। वहाँ से सफेद पलंग दिखाई देता है। मामच्का कहाँ है? शायद वहाँ? अलेक्सेई पित्रोविच होशियारी से दरवाजे के दरार से अन्दर झाँकता है। वहाँ कोई नहीं है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जन्म : 3 मई 1951 को सेण्ट पीटर्सबर्ग में। विश्वविख्यात रूसी लेखक लेव तोलस्तोय की परपौत्री। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद की प्रमुख यूरोपीय कथाकार, उपन्यासकार व निबन्धकार। लेनिनग्राद स्टेट यूनिवर्सिटी के शास्त्रीय भाषा विज्ञान संकाय से शिक्षा प्राप्त कर सन् 1980 में मास्को लौटीं और नाऊका पब्लिशिंग हाउस में काम किया। पहली कहानी 'सुनहरी बरसाती पर' 'अवरोरा' पत्रिका में सन् 1983 में प्रकाशित। कृतियाँ : 'रात'(1987), 'कोहरे में निद्राचारी' (1992)। कहानी संग्रह : 'स्लिनख'(2000), 'किस'(2000) उपन्यास और 'पुश्किन के बच्चे'(2003) निबंध-संग्रह प्रकाशित। सम्प्रति : प्रसिद्ध रूसी टेलीविजन शो 'द स्कूल आव स्कैण्डल्स' की सह-मेजबान।

मामच्का शायद अलमारी के पीछे छिप गई होगी? घुसूँ? कमरा खाली है। जलपरी की मेज पर खुले डिब्बे, ब्रेड और जूठे खीरे पड़े हैं। इसके अलावा पीला कागज और चमकते सिक्के। पैसा-पैसा उठाकर अँधेरी सीढ़ियों से उतर कर सड़क पर भाग जाऊँ, चाकोर खिड़की खोजूँ, मीठी, ठण्डी आइसक्रीम खरीदकर खाऊँ!

अलेक्सेई पित्रोविच झपट कर पैसा उठाता है, खनखनाता है, लड़खड़ाता, दरवाजे से भिड़ता हुआ भागता है। जोर-जोर से हाँफता हुआ खड़ा हो जाता है। सड़क। अँधेरा। कहाँ जाऊँ? इधर या उधर? मुट्ठी में क्या है? पैसा। दूसरे का पैसा। बालवाली मुट्ठी से बाहर झाँकता है पैसा। जब में हाथ डालता है फिर भी पैसा दिखता है। दूसरे का पैसा! उसने दूसरे का पैसा लिया है। आने-जाने वाले लोग मुड़ मुड़कर उसे देखते है और एक दूसरे से फुसफुसाते हैं। उसने दूसरे का पैसा लिया है। लोग धक्कामुक्की करते खिड़की से झाँकते हैं? मुझे देखने दो। कहाँ है वह? वह रहा। उसके हाथ में पैसा है। ओए तुमने पैसा लिया है? अलेक्सेई पित्रोविच अँधेरे में भागता है। पैसा जेब में खनकता है। सारा शहर सड़क पर आ जाता है। शटर खुल जाते हैं। हर खिड़की से लोग हाथ हिलाते हैं, आँखें चटकाते हैं, जोर-जोर से चिल्लाते हैं, उसने पैसा लिया है? कुत्ते छोड़ दो। दमकल टन-टन करती आती है। होज पाइप खोलते हैं। कहाँ वह? वह राह। उसके पीछे जाओ। चकराया अलेक्सेई भागता है। नोट फाड़कर फेंक देता है और पैर से उन्हें कुचलता है। ये तो रहे पैसे। खत्म कर दिया। मर गये, खप गये ये। चेहरा पोछता है। हूँ। अब कहाँ जाऊँ? रात है। महक आती है। मामच्का कहाँ है? रात है। आगे गेट पर काली लाइन से भेड़िये खड़े है : इंतजार में। उल्टे पाँव जाऊँगा। चकमा दूँगा। ठीक है। साँस फूलती है। बटन खोलता है। सारे बटन...। अब? दूसरी ओर से आती हुई औरतें मुँह बनाकर मुड़ जाती हैं। ओफ्...पागल है यह...। मैं...मैं भेड़िया हूँ। उल्टे पाँव चलता है...आह, डर गई। अभी पकड़ता हूँ, झपटूँगा, फिर देखूँगा कितनी खूबसूरत है ये। भागता है। चीखता है..आह...! एक घूँसा। मत मारो, फिर एक और घूँसा। आदमियों से सिगरेट की बदबू आती है। पेट में, दाँत पर, घूँसा मारते हैं। मत मारो मुझे...। छोड़ दो, पागल है, चलो।

अलेक्सेई पित्रोविच नाली के पाइप पर टेक लगाकर खड़ा होता है, थूकता है तो मुँह से खून निकलता है। जोर से चीखता है। बच्चे, तुम अकेले सड़क पर खो गये हो, गलती से इस दुनिया में आ गये हो। यहाँ से भाग जाओ, यह तुम्हारे लिये नहीं है। अपने बेडौल चेहरे को सितारों की ओर ऊपर उठाये वह चिल्ला -चिल्ला कर रोता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मामच्का-मामच्का कहाँ हो तुम? अँधेरा...सुनसान रास्ता है। पगडण्डी दूर दलदल को जाती है। मामच्का, तुम्हारा अकेला, प्यारा, दु:खी बच्चा चीख-चीख कर मर रहा है। मामच्का...!

मामच्का दौड़ती-हाँफती आती है। बाँह फैलाये, चिल्लाती हुई, झपटकर उसे अपनी छाती से लगा लेती है। पुचकारती है, चूमती है, सिसकती है—मिल गया, मिल गया, मेरा बच्चा मिल गया।

मामच्का, अलेक्सेई को जैसे लगाम से पकड़कर गर्म अस्तबल में, सफेद पंख पकड़कर मुलायम नर्म घोंसले में लाती है।

सूजे चेहरे को धोती है। गले में बिब बाँधे अलेक्सेई मेज के पास बैठा सुबकता है।

उबला अण्डा खाओगे? उबला, आधा उबला?

अलेक्सेई सिर हिला देता है : हाँ, खाऊँगा। घड़ी टिक-टिक करती है। शान्ति है। स्वादिष्ट गर्म-गर्म दूध, तरल जैसे अक्षर 'न'। मन में कुछ-से-कुछ चलता है। मामच्का, मुझे एक कागज और पेंसिल दो। जल्दी। मैं लेखक बनूँगा।

हे भगवान! मेरे बच्चे। ये तुम्हारे बस का नहीं...अच्छा रो मत, शान्त हो जाओ। मैं दूँगी : थोड़ा इन्तजार करो। पहले नाक साफ करो।

सफेद कागज, नुकली पेंसिल। जल्दी। इसके पहले कि मैं भूल जाऊँ। वह सब कुछ जानता है। उसने दुनिया को समझ लिया है। दुनिया के दस्तूर को जान गया है। जान गया है घटनाओं के गुप्त सम्बन्ध को। समझ गया है असमन्वित विषयों की लाखों उलझनों के सिलसिलेवार नियमों को। बिजली कौंध गई है उसके दिमाग में। तनाव से वह बड़बड़ाता है। कोहनी से गिलास खिसकाकर कागज लेता है और खुद अपनी खुशी के अभिनय से भौचक्का जल्दी-जल्दी बड़े-बड़े अक्षरों में अभी-अभी खोजे सच को लिखता है...रात, रात, रात....।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भाषान्तर

गुजराती कहानी

लता हिराणी

जूही

रूपान्तर : मीनाक्षी जोशी

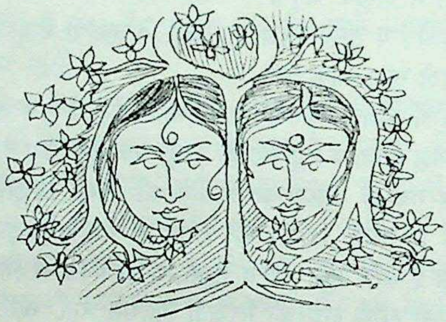

शाम अभी ढली न थी। उस पर दिन का बोझा और रात का उतरता हुआ अंधकार लदा हुआ था। चारों ओर उड़ती हुई धूल ने थकी हुई शाम को अस्त-व्यस्त कर डाला था। मैदान में चार-पाँच वृक्ष अपने सूखे-पीले पत्तों के साथ मानो गिर पड़ने की तैयारी में ही थे। उनकी दो-चार डालियाँ कभी हवा के झोंके से झूल कर अपने अस्तित्व को प्रमाणित कर जातीं।

सरू, राहत कैम्प के टीन के दरवाजे से टिक कर खड़ी थी। उसकी सूनी रिक्त आँखों में थकी हुई शाम का अँधेरा छाया था। होंठ सूख गये थे। त्वचा में शुष्कता आ गयी थी। बहुत मुश्किल से ही वह किसी से बात करती। बोलते वक्त उसे लगता मानो गले की नमी हमेशा के लिए सूख गयी है।

इस राहत कैम्प में आए उसे लगभग सात महीने हो रहे थे। कैम्प के व्यवस्थापकों ने बताया था कि अब दो-तीन महीने ही उन्हें यह सुविधा मिल सकेगी। इसके बाद सबको अपनी-अपनी व्यवस्था स्वयं करनी होगी। सरू सोचने लगी, कहाँ जायेगी वह? उसे खुद पता न था। शहर में हुए साम्प्रदायिक दंगे में उसका सब कुछ खत्म हो गया था। उसका किराए का घर जल कर राख हो गया था। उसने सुना था कि उस जगह पर दूसरों ने कब्जा जमा लिया है। अब वहाँ जाकर कोई लाभ नहीं। वैसे तो अब शहर में शान्ति थी पर राहत कैम्प में रहने वालों की दहशत खत्म न हुई थी। वे अब भी भय से काँपते थे। उनके लिए शान्ति एक छलावा थी।

सात महीने!! उसकी पूरी जिन्दगी से भी कहीं अधिक लम्बा समय। रोज सुबह आँख खुलते ही उसके हृदय में धीरे-धीरे कुरेदती हुई एक धारदार चकरी-सी घूमने लगती। अतीत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसकी नजरों के सामने दृश्य बनकर उभरने लगा। वह संजय के साथ पहले प्रेम की और फिर विवाह की गाँठ में बँधी थी। बिन माँ-बाप के संजय के पालन-पोषण की जिम्मेदारी चाचा-चाची ने अनिच्छा से निभा ली थी। संजय, अनाथ सरू से शादी करना चाहता है यह सुनकर उन्हें रहा-सहा बोझ भी झटकार देने का अवसर मिल गया।

विवाह के बाद एक छोटा-सा घर, हथेली भर सपने और सागर-सा छलकता प्रेम—बस यही थी उसकी दुनिया की शुरूआत। सरू को अपना घर बहुत अच्छा लगता। बरामदे की सीढ़ियों के पास धनुषाकार में झुकी हुई जूही उसे विशेष रूप से पसन्द थी, प्रिय थी। घर के काम-काज से फुरसत होते ही वह जूही के साथ बतियाने लगती—''तुम इतनी नाजुक क्यों हो? सुन्दर तो हो पर तेज हवाओं को झेल नहीं सकती। कोई बात नहीं। मैं तुम्हारी देखभाल करूँगी। तुम रोज अपने छोटे-छोटे सुगंधी श्वेत फूलों से मेरा दिल भर देती हो न!''

जूही की हरी-हरी पत्तियों में भी सरू को फूलों की खुशबू आती। वह कभी क्यारी से मिट्टी लेकर अपने शरीर पर मलती, फिर नहाती और संजय से कहती—''देखना अब कल मैं फूलों से लद जाऊँगी।'' संजय पूरी रात जूही की सुगंध के नशे में डूबा रहता। जूही के साथ सरू की आत्मीयता देख कभी-कभी संजय उस पर नाराज हो जाता। ''इतनी अधिक माया अच्छी नहीं सरू। यह तो लता है। पता नहीं कब सूख जाये या तेज हवाओं में टूट जाये!''

''तुम मुझे नहीं सँभालोगे?'' सरू तुरन्त पूछ बैठती।

''मजाल है किसी की जो तुम्हें कुछ कर सके।''

संजय उसे अपनी बाँहों में भर लेता।

शाम के भोजन के बाद कैम्प में सभी अपने-अपने कोनों में झपकियाँ लेने लगे थे। सरू अकेली वहाँ खड़ी थी। कड़कड़ाती ठण्ड के दिन थे। ठण्डी हवाएँ कातिल-सी चल रही थीं। सरू के तन-मन में अंधकार गहराने लगा। उसे लगा यह अंधेरा उसे निगल ही जाये तो अच्छा। इस तरह तिल-तिल मरने से तो मुक्ति मिल जायेगी। तभी कहीं शिशु के रोने की आवाज उसके कानों में पड़ी। उसे एक धक्का-सा लगा। उसने अपने पेट की ओर देखते हुए अपनी हथेली उस पर घुमाई। पूरे बदन में एक सिहरन-सी दौड़ गयी। वह कुछ नहीं कर सकती। घुटनों के बल बैठ कर हिचकियाँ भरने लगी। संजय के पास बैठकर वह कभी इसी तरह रोया करती थी। संजय बिना कुछ बोले उसकी पीठ सहलाता रहता। संजय के स्पर्श से छलकता प्रेम उसे राहत पहुँचाता। मन शान्त हो जाता और उसका रूदन धीरे-धीरे थम जाता। संजय के पास सरू की आँखों में बार-बार आने वाली आँसुओं की इस बाढ़ को रोकने का कोई उपाय न था। विवाह के सात वर्षों बाद भी वे निस्संतान थे। कई डॉक्टरों से वे मिल चुके थे। सबसे एक ही जवाब मिलता। संजय सरू को सन्तान नहीं दे सकता। वह विवशता पूर्वक सरू के जीवन को रेगिस्तान बनता हुआ देखता रहा। सरू भी बहुत संयमपूर्ण व्यवहार करती। ज्यादातर वह मस्ती-मजाक के मूड में रहती। वह संजय से कहती—

''इस घर में कितने मधुर स्वरों का जन्म हुआ है, जो हमारे आस-पास हमेशा नृत्य करते रहते हैं। ये सब हमारी संतान ही तो हैं। एक नहीं अनेक। सुन्दर, सुकोमल, नटखट, मधुरा...!''

''हाँ! तुम्हारी तरह।'' संजय कुछ निराशा से उसके सुर में सुर मिलाता। दोनों ने मिलकर घर के पास एक छोटा सुंदर-सा बगीचा बनाया था। पतझर के मौसम में वह संजय को बगीचे में लगे झूले पर खींच ले जाती। दोनों के ऊपर छोटे-बड़े सूखे-सुनहरे पत्तों की बरसात होती। वह संजय से जौनपुरी राग छेड़ने का अनुरोध करती। संजय आना-कानी करता, तब वह कहती—''ये सारे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुनहरे पत्ते तुम्हारे स्वयं से हरे-भरे हो जाएँगे। पर संजय सात निस्संतान वर्षों का बोझ अपने कंधे से नहीं उतार पाता। वह कहता—''पत्तों को सुनहरा ही रहने दो सरू, तुम्हारे हरे-भरे सपनों को मेरा साथ नहीं फलेगा।'' लेकिन सरू पलभर में ही उसे विषाद-मुक्त कर देती। वातावरण में पंचम स्वर खिल उठते। सागर की गर्जना-सा संजय का बुलन्द स्वर सरू के अस्तित्व को हरा-भरा बना देता।

सरू जब अकेली होती तब झूले पर जा बैठती। शाम की ढलती धूप पत्तों के बीच से छनकर सरू के चेहरे पर फैल जाती और उसे ऐसा महसूस होता कि वह गर्भवती हुई है। उसके पेट में एक मीठा-मधुर सुर गूँज रहा है। वह हाथ-पैर उछाल रहा है,बातें कर रहा है...वह जन्म लेने को आतुर हो रहा है। सरू का हाथ स्वत: पेट पर चला जाता है और ओठों से सरकने लगता कोई गीत।

सरू का ध्यान टूटा। चारों ओर सन्नाटा। वातावरण में डरावनी नीरवता छाई थी। किसी अज्ञात भय के साथ वहाँ अंधकार फैला हुआ थ। अचानक दूर से एक भीड़ उसे अपनी ओर आती दिखाई दी। डर के मारे वह अपनी जगह से खड़ी भी न हो सकी। उसके पैर जूही की तरह जमीन में जैसे गड़ गये। वह पसीने से तर-बतर हो गई। भीड़ इसी ओर आ रही थी। थोड़ा पास आने के बाद भीड़ दूसरी ओर मुड़ गई। सरू की जान में जान आई। उस दिन सुबह तेज आँधी आई थी। घर के पास की झोपड़ियों के छप्पर उड़ गये थे। उसकी प्यारी जूही आँगन में गिरी पड़ी थी। उसके फूल और पत्ते टूटकर जमीन में बिखरे पड़े थे। दोपहर होने तक दंगों की अनेक अफवाहें फैल रही थीं। सबके घरों के दरवाजे फटाफट बंद और लोग घर की कैद में। भय और आशंका से सरू तथा संजय भी घर में बंद हो गए। जैसे तैसे दिन बीता। रात्रि का अँधेरा पूरी तरह से उतरने के पहले उनके घर का दरवाजा जोर से खड़खड़ाया। दोनों काँप उठे। कौन है? पूछने की जरूरत न पड़ी। बाहर की चीखती-चिल्लाती आवाजें दीवाल को भेदती हुई उनके कानों में पड़ रही थीं। उन लोगों ने दरवाजा खुलने की प्रतीक्षा न की, दरवाजा तोड़ डाला। चार पाँच मवाली आ धमके। उसमें से एक संजय को खींच कर बाहर आँगन में घसीट ले गया। सरू की एक-दो चिरौरी, विनती...और टूटी हुई जूही के सफेद फूल लाल रंग में रंग गए। सरू की चीखें पड़ोसियों के बहरे कानों से टकराई तो थीं, लेकिन सबको अपनी जान प्यारी। कौन किसे बचाए?

इस भयानक खेल का दूसरा दृश्य भी शीघ्र सम्पन्न हुआ। उन राक्षसों के कदम आगे बढ़े। पिशाची हास्य के साथ एक गुण्डे ने घर को लूटना शुरू किया। कुछ खास मिला नहीं तो तोड़-फोड़ करने लगे। यत्नपूर्वक संभालकर रखे गये सरू के सितार के एक-एक तार तोड़ डाले। बाकी गुण्डे भयभीत सरू की ओर बढ़े। सरू लुट गई। वह बेहोश हो गई। उसे किसने उठा कर राहत कैम्प में पहुँचाया, नहीं जानती।

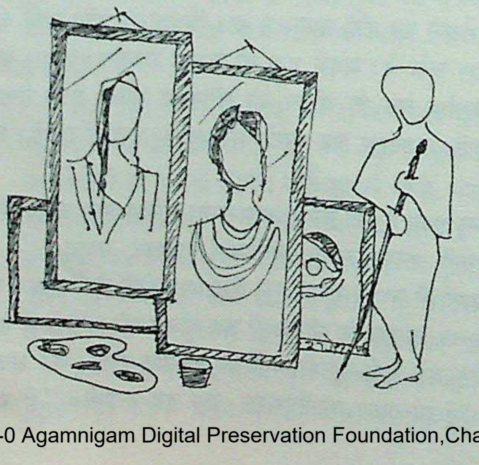

इन सात महीनों में सरू ने उस यातना को असंख्य बार भोगा था। वह सब कुछ भूल जाना चाहती थी, पर भयानक भूतकाल उसके आस-पास राक्षसी नृत्य

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करते रहते। सुख की स्मृति, सागर में उठे झाग की तरह मिटती जाती। दु:ख और व्यथा के पल मनुष्य के हृदय में पत्थर की तरह जम जाते हैं।

कैम्प में आने के बाद कुछ दिनों तक तो उसके आँसू थमते ही न थे। लोग उसे आश्वासन देते, पर उसकी पीड़ा कम न होती। राहत कैम्प में आए सभी लोगों की अपनी पीड़ा किसी से कम न थी। सब एक दूसरे की करुण कथा सुनकर ही अपना दु:ख हल्का करते।

एक शाम सरू कैम्प से बाहर कुछ दूर एक कोने में जाकर बैठ गई। उसके गर्भ में हलचल-सी हो रही थी। सरू ने पूरी ताकत लगाकर अपना पेट मसलना आरंभ कर दिया। वह पेट पर जोर-जोर से मुक्के मारने लगी। बहुत देर तक वह इसी तरह करती रही। अंततः तन-मन की पीड़ा रूदन में फूट पड़ी। सामने ही एक दूसरा राहत कैम्प था। एक स्त्री वहाँ से दौड़ती हुई आई। उसने सरू के हाथ पकड़ लिए और चुपचाप उसके पास बैठ गई। बहुत देर तक बिना कुछ बोले वह सरू के चेहरे और पीठ को सहलाती रही। सरू उसकी गोद में सिर रखकर रोती चली जा रही थी। उस स्त्री ने बहुत ही कोमलता से सरू के पेट पर हाथ फिराया। सरू फटी आँखों से अपने पेट को ताक रही थी। ठण्डी हवा के झोंके से बचाने के लिए उसने अपने आँचल से पेट ढाँक लिया। उस स्त्री ने राहत की साँस ली, नीचे झुककर उसने सरू के पेट को प्यार से चूमा।

दोनों का मिलना अब रोज का क्रम बन गया। शाम होते ही सरू अपने कैम्प से बाहर आ जाती। ठीक उसी समय वह स्त्री भी उसके पास आ जाती। दोनों के बीच कोई बातचीत नहीं होती। फिर भी उनकी व्यथा मौन होकर आपस में बँट जाती। कभी उस स्त्री की नजरें चारों तरफ कुछ ढूँढ़ती-सी लगतीं। सरू को उसकी आँखों में कई बार एक भय भी दिखता। ऐसे समय सरू उसका हाथ पकड़ लेती। उनकी अँगुलियाँ परस्पर बँध जातीं और दोनों के दिल में जिन्दगी का एक नया सुर जाग उठता। एक दूसरे के सहारे आश्वस्त जीवन के दिन गुजरने लगे। उनके बीच केवल नजरों से और स्पर्श से संवाद होता। उन्हें इतना ही पर्याप्त लगता।

सरू की नजरें जमीन खोद रही थीं। उसकी आँखें शायद टूटकर चकनाचूर हुई जिन्दगी का एक टुकड़ा ढूँढ़ रही थी। तभी वह स्त्री भी आ गई। दोनों समवयस्क थीं। दोनों के बीच आज पहली बार मौन टूटा। उस स्त्री ने पूछा।

''तुम्हारा नाम क्या है?''

''सरू। तुम्हारा नाम?''

''तुम्हें सबसे अच्छा क्या लगता है?''

''फूल और संगीत।''

''तो मेरा नाम चंपा!''

बातचीत खत्म। सरू को कुछ और जानने की आवश्यकता न लगी। चंपा कभी उसके लिए कुछ खाने को ले आती। राहत कैम्प में कभी सेवा-संस्थाओं के लोग खाने-पीने की और अन्य वस्तुएँ लेकर आते। बिस्तर के पास पड़ी उन चीजों को सरू कभी देखती भी नहीं।

एक दोपहर चंपा दौड़ती हुई आई। सरू ने उसकी ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि डाली। चंपा के चेहरे पर हल्का हास्य था। उसने सरू से कहा, ''आँख बंद करो।'' सरू ने आँखे बंद की। जब आँखे खोली तो उसे एक छोटे-से आइने में अपना चेहरा दिखाई दिया। सूखा हुआ निस्तेज चेहरा। उसके होठों पर छोटी-सी स्मित रेखा खिंच गयी। चंपा सरू के पीठ के पीछे बैठ उसके बालों में कंघी करने लगी। उसकी अँगुलियाँ सरू के बालों में घूमती रही। तभी बाजू वाली माँजी ने आवाज लगाई, ''अरे...बाइयो, खाना तो ले आओ, भूखी रह जाओगी।'' दोनों की समाधि टूटी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"सात महीने हो गए" चंपा बोली। सरू चुप थी।

"और दो-तीन माह कैम्प इसी तरह चालू रहेगा।"

सरू की नजर अँधेरे को काट रही थीं।

"तुम चिंता मत करो, मैं सब सँभाल लूँगी।" चंपा बोलती चली जा रही थी। "पर मुझे यह बच्चा नहीं चाहिए।" सरू झुँझालाकर बोली।

"अब बहुत देर हो चुकी है।" कहते हुए चंपा ने सहारा देकर धीरे से सरू को खड़ा किया। उसे बिस्तर तक ले जाकर सुला दिया। उसे आश्वासन देने की इच्छा को चंपा ने बलपूर्वक दबा दिया। भरी आँखों से वह वापस लौट गई। कुछ दिनों बाद चंपा अचानक अदृश्य हो गयी। शाम होते ही सरू रोज उसे ढूँढ़ती, पर वह कहीं नहीं मिलती। सरू के मन में प्रश्नों का पहाड़ खड़ा होता जा रहा था। सामने के कैम्प के वह कितने चक्कर काट चुकी। उसने चंपा से सिवाय नाम के कभी कुछ पूछा ही नहीं था। उसे खुद पर खीझ आने लगी। पीड़ा के महासागर में चंपा का सहारा उसके लिए एकमात्र टापू था। तपते-जलते रेगिस्तान में वही तो एक ठण्डक देने वाली थी। कितनी मूर्ख हूँ मैं! मूर्ख नहीं महामूर्ख! कभी उसके विषय में कुछ जाना ही नहीं। अब किसी से उसके बारे में पूछे तो कैसे?

यदि चंपा वापस नहीं आई तो क्या होगा? क्या करेगी वह? कैम्प छोड़ने के बाद कहाँ जाना है, इस विषय पर कभी उससे बात ही नहीं हुई थी। सरू को महसूस हुआ कि वह किसी छोटे बालक की तरह थी, जो माँ के भरोसे रहता है। अनजाने ही वह सब कुछ चंपा के भरोसे छोड़ बैठी थी। उसकी आँखों के सामने बार-बार अँधेरा-सा छा जाता। रहा-सहा आधार भी छिन गया। बिना खाए-पीये वह चुपचाप दिनभर लेटी रहती। शाम ढलते ही उसके मन में उम्मीद जागती। चलो बाहर। चंपा आज तो आ ही गयी होगी। घण्टों बीत जाते। निराश, लड़खड़ाते कदमों से वह वापस आ जाती।

चंपा को गए सात दिन हो गए। सरू अब जंग हार रही थी। आज उसने निश्चय किया कि वह बाहर नहीं जायेगी। किन्तु शाम होते ही उससे अन्दर रहा नहीं गया। शरीर से खत्म होती ताकत इकट्ठी कर वह मुश्किल से दरवाजे तक पहुँची। दोनों कैम्प में रोज की तरह चहल-पहल थी। जिसकी खोज थी, वह चेहरा कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। वह एक ओर जाकर ऐसे बैठ गयी, मानो चंपा के आने तक अब वहाँ से उठेगी नहीं।

अँधेरा घना होने लगा। सामने से कोई आ रहा था। सरू की आँखों में आशा की ज्योति जल उठी। उसके रोम-रोम में चेतना का संचार होने लगा। अपनी ओर आती इस आकृति की चाल से वह परिचित थी। सरू खड़ी होकर दौड़ पड़ी। वह चंपा ही थी। चंपा के पैरों में भी मानो पंख लग गए। दोनों मिलते ही लिपट गईं। चंपा के तन-मन से प्रवाहित शक्ति सरू के शरीर में प्राण फूँक रही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थी। बहुत देर तक उसने चंपा को छोड़ा नहीं। चंपा ने सरू का हाथ पकड़ते हुए कहा— ''चलो।''

सरू चौंक गयी। ''तू कहाँ चली गयी थी?''

''कुछ पूछने की जरूरत नहीं। तुम्हें सब मालूम हो जाएगा। चलो मेरे साथ।''

जन्म : 27 फरवरी, 1955। गुजराती की प्रतिष्ठित कथाकार-कवयित्री और लोकप्रिय टेलीविजन कार्यक्रमों की प्रस्तोता। कहानियों-कविताओं की आधा दर्जन पुस्तकें प्रकाशित। कई महत्त्वपूर्ण पुरस्कारों से सम्मानित।

सरू के पैरों में न जाने कैसी ताकत आ गयी थी। चंपा उसे कैम्प के भीतर ले गई। सरू के यहाँ-वहाँ पड़े कपड़े और उसका सामान समेटने लगी।

''क्या कर रही हो तुम?''

''हम लोगों को जाना है।''

''कहाँ?''

''तुम्हें क्या काम? मैं जहाँ ले जाऊँ वहाँ तुम्हें चलना है।''

प्रेम एक साथ एक को अधिकार और दूसरे को समर्पण किस प्रकार दे देता है? चंपा ने थाली-कटोरी बाहर छोड़कर बाकी का सारा सामान बाँध लिया। सरू विस्मय और विश्वास भरी नजरों से उसे देखती रही।

''चलो हम अब खाना खा लें।'' चंपा खाना लेकर आई। थाली दोनों के बीच रख दी। ''लो अब खा लो।'' चंपा एक के बाद एक हुक्म देती जा रही थी और सरू किसी आज्ञाकारी बालक की तरह उसका पालन करती जा रही थी। दोनों ने एक ही थाली में खाना खाया। सरू की समझ में नहीं आ रहा था कि चंपा क्या करना चाहती है।

''अब तुम सो जाओ। हम सुबह उठकर जल्दी ही यहाँ से निकल जायेंगे।'' सरू की आँखों में कौतूहल बढ़ता जा रहा था। उसकी दुविधा समझ कर चंपा बोली—''चलो आज मैं भी यहीं सो जाती हूँ।'' सरू बच्चे की तरह उससे लिपट गयी।

सुबह की ठण्डी पवन ने पहले चंपा को जगाया। हल्के से सरू का हाथ छुड़ाती वह खड़ी हो गयी। आजू-बाजू नजर डाली। सब गहरी नींद में थे। उसने सरू को जगाया।

''उठो जल्दी, सब जाग जायेंगे तो पूछताछ शुरू हो जायेगी। कहाँ जा रही हो? कहाँ रहोगी? और पता नहीं क्या क्या। इससे पहले ही हम निकल जाएँ।''

सरू खड़ी हो गई। पिछले सात माह से घर बन गए इस कैम्प पर उसने एक नजर डाली। दूसरी नजर गई अपने पेट पर।

''इसका कैसे करेंगे?''

''इसकी सब व्यवस्था करके आई हूँ।''

''क्या?'' सरू की आँखों में चिन्ता छाई थी।

''तुम चलो तो सही।''

धीरे से फूटती सूर्य की किरणों ने दोनों के पैरों में एक नई शक्ति भर दी। आधे घण्टे चलने के बाद वे एक चाल जैसी जगह पर पहुँचे। एक खोली के पास जाकर दोनों रुकीं। चंपा ने कमर में खोंसी हुई चाबी निकाल कर ताला खोला। चाल के पिछले भाग से किसी स्त्री की मीठी आवाज

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में जादव कृष्ण गोवाणिया की प्रभाती सुनाई दे रही थी। बाजू की खोली का दरवाजा खुला। एक औरत हाथ में दिया लिए तुलसी की क्यारी में रखने के लिए बाहर निकली। उसकी नजर दोनों पर पड़ी। वह खुशी से बोली—

''अच्छा हुआ जरीना, तुम वापस आ गयी। मुझे तुम्हारे बिना अच्छा नहीं लगता था। अब तुम कहीं मत जाना। हम सब हैं न।'' चंपा का होठों पर अँगुली रख उसे चुप रहने का इशारा करना असफल रहा। सरू एक पल के लिए दुविधा में पड़ गयी। अगले ही क्षण उसकी दुविधा सुबह के कोहरे की तरह छँट गयी। जरीना उर्फ चंपा को वह पूरी श्रद्धा से देखती रही। चंपा उसे अन्दर ले गयी। खोली में एक पालना रखा था और उसके पास एक गुड़िया। सरू ने चंपा की ओर देखा।

''मुझे पता है तुम्हें बेटी ही होगी'' चंपा बोली।

''तुम्हें कैसे पता चला?''

''तुम्हारी चाल से। पर यह तो बताओ तुम्हारी बेटी का नाम क्या रखेंगे?''

''जूही...।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जन्म : 8 मार्च 1979 बलिया (उ.प्र.) में। शिक्षा : एम.ए. (भूगोल व हिन्दी साहित्य), पी.जी. डिप्लोमा (पत्रकारिता)। लेखन-प्रकाशक : छिटपुट कविताएँ प्रकाशित-प्रसारित।

आरसी चौहान

कठघोड़वा नाच

रंग-बिरंगे कपड़ों से ढका
कठघोड़वा घूमता था गोल-गोल
गोलाई में फैल जाती थी भीड़

ठुमकता था टप-टप
डर जाते थे बच्चे
घुमाता था मूड़ी
मैदान साफ होने लगता उधर

बैण्ड-बाजे की तेज आवाज पर
कूदता था उतना ही ऊपर
और धीमे, पर ठुमकता टप-टप
जब थक जाता
घूमने लगता फिर गोल-गोल

बच्चे जान गये थे काठ के भीतर
नाचते आदमी को
देख लिये थे उसके घुँघरू बँधे पैर
किसी-किसी ने तो घोड़े की पूँछ ही
पकड़ कर खींच दी थी
वह बचा था लड़खड़ाते-लड़खड़ाते गिरने से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह चाहता था कठघोड़वा से
निकलकर सुस्ताना
—कि वह जानवर नहीं है
लोग मानने को तैयार न थे
—कि वह घोड़ा नहीं है
बैण्ड-बाजे की अन्तिम थाप पर
थक कर गिरा था
कठघोड़वा उसी लय में
धरती पर
लोग पीटते रहे तालियाँ
बेसुध होकर

उसके कंधे पर कठघोड़वा के
कटे निशान आज भी हरे हैं
जबकि कठघोड़वा नाच और वह
गुमनामी के दौर से
गुजर रहे हैं
इन दिनों। ज्ञा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाराखड़ी

ज्ञान चतुर्वेदी

रात में अँधेरा और कहानी में भी

'रात अँधेरी है'—लिखा उसने।

रचनाकार ने प्रथम पंक्ति कागज पर गोदकर अंगड़ाई ली।

इत्ती जल्दी थक गए रचनाकार? एक पंक्ति के बाद ही अंगड़ाई वगैरह होने लग गये?

''नहीं-नहीं बंधु'' (लेखकों के बीच बंधु संबोधन अभी भी चला आ रहा है, सो बंधु, और नहीं को दो बार कहने से बात का वजन बढ़ता है—ऐसा भ्रम भी चला आ रहा है, सो 'नहीं-नहीं), बात थकने की नहीं है। बात अटकने की है। वास्तव में लेखक यहाँ अटक गया है। प्राय: लेखक बहुत सारा लिखने के बाद अटकते हैं। ये, यहाँ, शुरू में ही फँस गया है। जैसे किसी गाड़ी में स्टार्टिंग ट्रबुल हो न, ठीक वही स्थिति। दिमाग घर्र-घर्र करके रह जाता है। 'रात अँधेरी है'—यह बात तो मन में एकदम तय है। आगे रचना यहीं से बननी है। या कहें कि बनानी है। पर अभी तो पता नहीं चल पा रहा कि रचना किस दिशा में जायेगी। मन में रात के अँधेरे-सा ही कुछ मचा है। एक जमाने में वो कविताएँ रचता था। तब आसान था। प्रथम पंक्ति भर सूझ जाये। उससे आगे की रचना किसी ऑटोमेटिक मशीन की भाँति खटाखट-खटाखट करती चल पड़ती थी। अभी वो 'अँधेरी' की तुक पसेरी, घनेरी, उधेरी से मिलाकर, और बाद में तुक न मिलने पर उससे मिलती जुलती चीज तेरी, मेरी, बहुतेरी, ऐरी, कैरी, ऐरी, गैरी, फेरी आदि में निकालकर एक ठीक-ठाक-सी कविता बना सकता था, जो काव्य के क्षेत्र में व्याप्त अँधेरी रात का फायदा उठाकर, किसी आलोचक या मंच संचालक की बाँह गह कहीं भी कब्जाकर बैठ लेती। परन्तु अफसोस कि वह कविता छोड़कर कथा में आ गया है। दरअसल मारपीट के दो-तीन अवसर इधर कुछ ज्यादा ही संगीन होते-होते बचे। कविता के श्रोता इस कदर गुस्सा भी हो सकते हैं, यह अनुभव एकदम नया तथा डरावना रहा।

सो वह कथा लिख रहा है, पर 'रात अँधेरी है' के बाद अटक गया है।

मौन हो विचार कर रहा है वो।

मान लो कि रात अँधेरी चल ही रही है कि तभी एक साया कहीं से दबे पाँव निकले और दूसरे साये के पीछे दबे पाँव चल दे। आपको पता ही है कि कथाओं में सायों के बीच दबे पाँव

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चलने का रिवाज चला आता है। अगर ये दो साये चल दें, तो कहानी भी चल पड़े। हो सकता है कि नहीं? क्यों बधु? है ना? एक बार कहीं से तो भी दो ठीकठाक सायों का इंतजाम हो जाये, तो एक बढ़िया-सी रहस्य कथा बनती है। है कि नहीं? इससे बढ़िया मौका बाद में फिर नहीं मिलने का। रात तो पहले से अँधेरी है ही। बस, दो साये मिल जायें कहीं से। लगा दो एक के पीछे एक। माहौल बनाने के लिए कुत्ते तो भौंकने ही लगेंगे। कुत्तों को कहानी में घुसने ही इस शर्त पर दिया गया है कि वे बीच-बीच में, जहाँ भी लेखक इशारा करेगा, भौंकेंगे। सो वे तो भौंकेगे ही। न भौंके, तो मारो स्सालों को दो लात। आप मार सकते है। कुत्ते लेखक को नहीं काटेंगे। वे इतने कुत्ते भी नहीं। मालिक को पहिचानते हैं। लेखक सायों के इंतजाम तथा कुत्तों को लतियाने में मुब्तिला था कि काले बादलों को चीरता हुआ चाँद अचानक ही टीकमगढ़ के आसमान में निकल आया। अब? अब हो गई न गड़बड़। बादलों में चाँद छुपा था तो रात अँधेरी थी। कहानी में ऐसे अचानक चाँद निकाल दोगे, तो बेचारे सायों की तो ऐसी तैसी हो गई न बंधु। वे तो बेचारे अँधेरी रात के भरोसे जासूसी कथा में निकल आये थे। अब अचानक चाँद निकल आया तो साये चौंककर अँधियारी गली में घुस गये हैं कि जहाँ संकरी गली में चाँद भी नहीं घुस पाता। चौकन्ने साये सतर्क कदमों से गली में चल रहे हैं। सतर्क कदमों से क्यों बंधु? सतर्क होकर न चलें तो अभी नाली में घुस जायें। या सुअर पर पांव आ जाये। वैसे भी जासूसी कथा में सतर्क कदमों से चलने का नियम है। फिर दुश्मन की निगाह भी तो है साये पर। यार, किस साये पर? पहले पर कि दूसरे पर? यार कन्फ्यूजन न पैदा करो बंधु। हम अगले साये का जिक्र कर रहे हैं कि जिस पर पिछले साये की नजर है। ठीक?...अच्छा-अच्छा, तो क्या पिछला साया अगले वाले का दुश्मन है? तभी तो। वो तो हम कहें। यार, बढ़िया बढ़ा रहे हो कहानी को। कहाँ तो तुम्हारे हाथ में बस एक जरा-सी अँधेरी रात भर थी। और अब देखो—दो-दो साये, कुत्ते, चाँद, दुश्मन...देखते-देखते, कित्ता सामान इकट्ठा कर डाला बंधु।

लेखक प्रसन्न है कि कथा खड़ी हो रही है। जासूसी कथा ही सही।

पर लेखक उतना संतुष्ट भी नहीं। जासूसी या रहस्य कथाओं को साहित्यिक हलकों में बहुत इज्जत की निगाहों से नहीं देखा जाता। जानता है लेखक। तो कहानी आगे लिखे कि न लिखे? बंधु इज्जत तो आज के जमाने में आदमी अपने बाप की भी नहीं करता। इस कारण लोगों ने बाप बनना बन्द कर दिया था। फिर? तुम तो लिखो। अभी चाँद बादलों में कहीं वापस घुस गया, तो फिर मुसीबत। फिर कुत्तों का कोई भरोसा? अभी दूर कहीं कुकरहाव होने लगे, तो तुम्हारी कहानी छोड़कर उस तरफ दौड़ जायें। और सायों को गुम होते देर लगती है क्या? समझा रहे हैं लेखक को। पर वो अच्छी खासी बन रही जासूसी काहनी को छोड़कर दलित विमर्श वाला कोई माल तैयार करने की हंडिया धर रहा है। रात अँधेरी है का मतलब यह नहीं कि लेखक को जासूसी कहानी ही लिखनी होगी। उधर 'रात अँधेरी' है, तो इधर दलित विमर्श का अँधेरा भी तो कम नहीं। इस अँधेरे में कितनों ने कहानी के मकान में सेंध मार ली, यह पता भी है आपको बंधु?

लेखक ने जासूसी कथा का इरादा त्याग कर दलित कथा लिखने का इरादा किया है, जैसा कि आजकल सभी कर रहे हैं। वह 'रात अँधेरी' है को ही आगे बढ़ाकर एक दलित कथा बनाने को कृतसंकल्प है, क्योंकि दलित कथा बनाने में सामग्री से अधिक आपके बुलंद तथा जिद्दी इरादे का रोल होता है।

सो नये सिरे से कोशिश में जुट गया है रचनाकार।

'रात अँधेरी है' और अब अँधेरी रात में ही दलित विमर्श को घुसेड़कर कहानी बनानी है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चलो, इसी 'रात अँधेरी है', से दलित विमर्श निकालते हैं। अपुन को तो जैसी हवा चल रही हो, वैसी कहानी लिखनी है। आजकल दलित विमर्श का जलवा है। वही सही। वही करते हैं। ...इन सायों को तो चलता करो यार। 'रात अँधेरी है'—अभी तो बस इत्ता ही रखो। और इन कुत्तों को भी लतियाओं की साले भौंकना बंद करें। कुत्तागिरी करते हुए पट्ठों की पूरी उम्र निकल गई, पर एक जरा-सा अँधेरा क्या होता है कि भौंकना शुरू कर देते हैं। कुत्ते कहीं के और बंधु, यह स्साला चाँद कहाँ से निकला चला आ रहा है?...यार आप कथा में एक तरफ तो चाँदनी बिखेर देंगे, प्रेमकथा का वातावरण रच देंगे और फिर हमसे उम्मीद करेंगे कि दलित विमर्श की कहानी खड़ी करे। मजाक बना रखा है क्या?...तुम दलितों की प्रेमकथा क्यों नहीं रचते हे रचनाकार! वैसे दलित भी प्रेम करते होंगे, अभी इस बात को हिन्दी कहानी वाले अफवाह मात्र मानते हैं। पर तुम तो लिखो। पर कितना भी कहो, हमारा रचनाकार झाँसे में आने को तत्पर नहीं। बता रहा है कि कहीं दलितों की कोई प्रेमकथा लिखी तो हिन्दी आलोचना के दलित विमर्श के थोक तथा रिटेल एजेन्ट उसे कथा की मंडी से बाहर करवा देंगे। दलित की हर कथा अंततः दलित पर जुल्म की कथा बननी लाजिमी है। इधर रात बढ़िया अँधेरी है ही। बस एक-दो अत्याचार का कोण निकल आये तो दलित विमर्श तैयार करते देर कितनी लगनी है। रात अँधेरी है। दलित पर अत्याचार तो खैर दिन में भी होते ही हैं, फिर अपने पास तो एक अदद अँधेरी रात का इंतजाम है। इसका तो कहना ही क्या। अच्छी बात यह है कि इधर कहानी में अँधेरी रात है उधर दलितों की बस्ती में भी रात अँधेरी ही है। लेखक को दलितों के विषय में एक धेले की खबर नहीं। न तो स्वानुभूति, न सहानुभूति। फिल्में में, या उड़ते-उड़ते कभी कहीं कोई दलित देखा हो तो स्साला अभी याद नहीं आ रहा। लेखक अंदाज से दलित के कष्टों का एक ठाठ खड़ा कर रहा है कहानी में।...लिख रहा है लेखक।...भूखा लेटा है घीसू। दलित को भूखा दिखाना आवश्यक। दलित विमर्श के गजट में लिखा है। वरना कहानी ही न बनेगी।...दलित पानी पी पीकर पेट भर रहा है। वह उचक-उचक कर चल रहा है अपनी झोपड़ी में। घड़े से कथरी के बीच। उचक कर क्यों बंधु? वह सवर्णों के जुल्मों का शिकार है न। अभी हम फ्लैश बैक में जाकर बतायेंगे न कि कैसे दौड़ा-दौड़ा कर मारा है इन लोगों ने। देखते तो चलो। दलित की कहानी लिखने के लिए कलम, कागज तथा एक डण्डा चाहिए, जिससे दलित की ठुकाई चलती रही। अभी तो रात अँधेरी है ही और सुबह होने में तीन चार घण्टे बचे हैं। कम लगा तो और ठुकवा देंगे। कहानी की प्रामाणिकता के लिए करना पड़ेगा।

परन्तु बंधु, यह तो बड़ी दकियानूसी किस्म की दलित कथा हुई जा रही है। ऐसी पचासों लिखी जा चुकीं। दलित के विषय में न तो आपको कुछ पता, न उससे कोई सहानुभूति। कहानी के बाहर वो जहाँ भी आपको मिला है, आपने उसे लतियाया है या उस पर ध्यान ही नहीं दिया है।

आप एक फैशनेबुल दलित विमर्श की कहानी रचने के प्रयास में वैसे ही दयनीय नजर आ रहे हैं जैसे कि कुछ बड़े कहानीकार हाल ही में नजर आये हैं।...

तो क्यों नहीं आप अपना भोगा हुआ यथार्थ लिखते? दलित विमर्श त्यागकर आप स्त्री विमर्श को क्यों नहीं पकड़ते? उसका भी खेल बड़ा है। फिर इस मामले में आपके अनुभव काफी रंगीन तथा संगीन किस्म के रहे हैं। आप एक प्रेमकथा लिखिये तो किसी भी कथापत्रिका के बलात्कार-विशेषांक में छप जायेगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रचनाकार उस स्थिति में है, जिसे देवकीनंदन खत्री भूतनाथ का तरद्दुद में पड़ना कहते थे। क्या करे? वापस तो वहीं आ खड़ा हुआ है कि रात अँधेरी है।

अब? चलो स्त्री विमर्श वाला फार्मूला फोर्टी-फोर वापरते हैं।

रात अँधेरी है और अँधेरे में एक प्रेमकथा पक रही है।

चाँद अभी बादलों में है। परन्तु प्रेमकथा का यही तो मजा और सुभीता है कि चाँद बादलों की ओट में हो, तब भी काम का और जो निकल आये तो फिर तो कहना ही क्या। सो चाँद की परवाह नहीं रचनाकार को। रहा आये बादलों की ओट में या भाड़ में जाये। कुत्तों को अलबत्ता चुप कराना पड़ेगा। बंधु! ये भौंके, तो नायिका घबराकर लौट भी सकती है। या इनका भौंकना सुनकर नायिका का बाप बाहर निकल आया, तो नायक को भागना पड़ जायेगा। प्रेमकथा में कुत्ते न ही रहें, तो बेहतर। तो थोड़ा देखिये इनको मित्र। रात अँधेरी है। नायक प्रतीक्षारत है। लेखक भी। नायिका आये तो कहानी शुरू हो।

●

रात अँधेरी है।

लेखक ठानकर बैठा है कि वह इस एक पंक्ति से एक कहानी बनाकर ही उठेगा। वह कहानी उसके अन्दर से नहीं उठेगी बल्कि कहानीजगत में व्याप्त आलोचना, फतवेबाजी, विमर्शों और संपादकों की अपनी सनक के अँधेरे से निकलेगी। जब तक कहानी में यह अँधेरा है, लेखक किसी भी पंक्ति को कहानी में तब्दील कर सकता है। 'रात अँधेरी है' का तो हमने उदाहरण के लिए जिक्र किया, वरना रात इतनी अँधियारी भी नहीं—न यहाँ, न कहानी में।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जयवर्धन

रंगजगत पर दुसाध्य प्रलेखन

जयदेव तनेजा की पुस्तक 'रंगकर्मी कोश'

पुस्तकें रोज लिखी जा रही हैं, प्रकाशित हो रही हैं, लेकिन एक पुस्तक जो न कविता है, न कहानी, न नाटक है, न उपन्यास, न कोई शब्द कोश है और न ही किसी ज्ञान विशेष या पाठ्य-क्रम में है, उसको भला कोई क्यों लिखेगा? ऐसी पुस्तक अगर लिखी भी गयी तो उसको प्रकाशित करने का जोखिम भला कोई क्यों उठायेगा, जबकि व्यापार, माँग और खपत पर बहुत हद तक निर्भर करता है।

जयदेव तनेजा लिखित, 'रंगकर्मी कोश' (भरत मुनि के आधुनिक वंशज) पुस्तक रंगजगत का प्रलेख है, जो आने वाले कल के लिए धरोहर साबित होगी। इस पुस्तक में देश की लगभग डेढ़ दर्जन भाषाओं एवं बोलियों के 251 रंगकर्मियों का उपलब्ध आत्म-विवरण वर्णाक्षर क्रम में दिया गया है। इसमें प्रतिष्ठित एवं स्थापित नाट्य निर्देशकों, अभिनेताओं को ही नहीं अपितु नेपथ्यकर्मियों को भी यथोचित स्थान दिया गया है। पूरे देश से इस तरह का विवरण समेटना, लिखना और संकलित करना एक दुरुह कार्य है। दरअसल यह कार्य सरकारी कला-संस्थाओं का है, जहाँ साधन और स्रोत की कमी नहीं होती। एक अकेले के लिए यह कार्य वाकई भगीरथ प्रयास है। नेपथ्य कथा में डॉ. तनेजा ने एक जगह लिखा है कि जब उन्होंने इस पुस्तक की तैयारी के बारे में अपने शुभचिंतकों से जिक्र किया तो उनकी स्पष्ट प्रतिक्रिया थी कि 'ये तो गधों वाला काम है...।' यही गधों वाला काम, अब जब यह पुस्तक प्रकाशित हो गई है, ऐसा ही कुछ करने के लिए कई लोगों को उकसा सकता है।

जयदेव तनेजा को इस पुस्तक के अधूरेपन का बोध है, इस बात को उन्होंने बहुत ही विनम्रता से स्वीकार किया है। उनको पता है कि यह गिलहरी प्रयास निर्विवाद नहीं होगा। अनचाही नाराजगी से बचने के लिए डॉ. तनेजा ने पुस्तक के आरम्भ में ही लिखा है, ''नाट्य कर्म को समर्पित उन सभी निष्ठावान और समर्पित रंगकर्मियों को सादर-सप्रेम, जिनके नाम इस कोश के अगले संस्करण में होंगे।'' पुनश्च के अनुसार लगभग 277 रंगकर्मियों के नाम छूट गये हैं। रंगकर्मी कोश के आदि और अन्त में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से सम्बद्ध देवेन्द्रराज अंकुर और लोकेन्द्र त्रिवेदी है। लोकेन्द्र त्रिवेदी का नाम छूटे हुए नामों की सूची में भी है। अगर सबसे विस्तृत आत्म-विवरण स्व. मनोहर सिंह का है तो सबसे संक्षिप्त आत्म विवरण असगर वजाहत का है। हो सकता है कि किसी रंगकर्मी की वरिष्ठता और ख्याति से सब लोग परिचित हों, लेकिन कोई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जरूरी नहीं कि सब उसके समस्त रंगकर्म को सविस्तार जानते हों। प्रतिष्ठित लोगों का सोचना है कि अपने बारे में क्या बतायें? सब जानते हैं। नये लोगों का सोचना है कि कम से कम जानने के लिए ज्यादा से ज्यादा बताना ही होगा। यही कारण है कि हबीब तनवीर, श्यामानन्द जालान, एमएस सत्थ्यू, स्व. उत्पल दत्त, स्व. बी एम शाह एवं रतन थियम की अपेक्षा अरविन्द गौड़ का आत्म विवरण अधिक विस्तार से है। निश्चित रूप से सामग्री उपलब्ध न होने के कारण ऐसा हुआ होगा। डॉ. तनेजा ने पुस्तक के शुरू में ही लेनिन के एक वाक्य को उद्धृत किया है; ''तथ्य क्रान्तिकारी होते हैं। प्रेक्षक-पाठक की समझ बढ़ाने के लिए उन्हें पेश करना ही पर्याप्त है।''

रंगकर्मी कोश कोई इतिहास नहीं, जिसमें चरित्र और समय निश्चित हो। कोई काव्य नहीं, जिसमें भाव निश्चित हों। कोई कहानी या उपन्यास नहीं, जिसमें घटना और चरित्र निश्चित हों। इसमें कुछ भी निश्चित नहीं है। मैं और जगह की बात नहीं करता, दिल्ली को ही लीजिए। हर साल यहाँ अनेक रंगकर्मी आ रहे हैं और अनेक यहाँ से बाहर जा रहे हैं। कुछ सक्रिय हैं तो कुछ रोजी-रोटी के चक्कर में कहीं अन्यत्र व्यस्त हो गये हैं। ऐसी आवाजाही में सबको सूचीबद्ध करना कठिन ही नहीं, असम्भव है। डॉ. तनेजा न कोई नाटककार हैं और ही रंगकर्मी हैं, फिर भी विगत 20 वर्षों से रंगकर्मी कोश की संकल्पना में सतत प्रयत्नशील रहे। इस पुस्तक के माध्यम से अनेक भूले-बिसरे रंगकर्मी सदैव जीवित रहेंगे। डॉ. तनेजा को इस पुस्तक के लिए भरत मुनि के आधुनिक वंशजों की हार्दिक बधाई!

प्रकाशक : तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली-2, प्रथम संस्करण : 2006, मूल्य : 600रुपये।

श्यामसुंदर दुबे

मौत के खेल में समीक्षा की हिकमत और हुरमत

वागीश शुक्ल की आलोचना पुस्तक 'शहंशाह के कपड़े कहाँ हैं'

भारतीय दर्शन में मृत्यु ही जीवन के आर-पार है। जीवन में उतरना भारतीय चिंतन परम्परा में न केवल अभिशाप है, बल्कि जीवन स्वयं मृत्यु के साथ सतत है, इसलिए भारतीय चेतना जीवन से छुटकारा पाने की साधना को महत्व देती है। 'दुःखालयं शाश्वतेऽयम्' से जो निष्कर्ष निकलता है वह जीवन से मुक्ति का नहीं, बल्कि जिन्दा होते हुए भी मरे हुए की तरह रहना है। इसी को जीवनमुक्त कहा जाता है। मृत्यु की इस केन्द्रीयता का जिक्र मैं वागीश शुक्ल की कृति 'शहंशाह के कपड़े कहाँ है?' के आधार पर कर रहा हूँ। साहित्य के अनेक संदर्भों को दूरारूढ़ किन्तु विवेक संयत और तर्कानुमोदित तरीकों से विमर्श का आधार बनाते हुए वागीश शुक्ल हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में एक ऐसे प्रस्थान का अन्वेषण कर रहे हैं जो हिन्दी समीक्षा-परम्परा की अनेक सरिणियों के अंतर्ध्वंस से उपजता है। यह अंतर्ध्वंस वागीश के यहाँ एक यज्ञ है। यज्ञाग्नि में भस्मसात होती अनेक-वर्णी समिधायें जिस इदन्नमम् की असंलग्नता से इच्छापूर्ति का यजनमहोत्सव रचती है, उसमें याज्ञिक की उपस्थिति निरन्तर अनुपस्थिति में तब्दील होती रहती है। ठीक उसी तरह जैसे यजमान आहुतियाँ देते-देते स्वयं निर्वेद में चला जाता है। वागीश शुक्ल आलोचना-कर्म में भी मृत्यु के इसी सर्वग्रही सर्वांतशायी स्वरूप को केन्द्र में रखते हुए रचनाकार और आलोचक की मृत्यु को ही आलोचना की नियति मानते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'शहंशाह के कपड़े कहाँ हैं?' शीर्षक इस पुस्तक में संग्रहित अधिकांश निबंधों में भाषा की चीरफाड़ को रचना की पाठ-विवृति जैसा ही माना गया है। लेकिन यह प्रक्रिया उत्तरसंरचनावाद के विकेन्द्रणवाद की वकालत नहीं है। विकेन्द्रणवाद अर्थ की अनिश्चितता की घोषणा करता है तथा रचना के साथ ही रचनाकार की मृत्यु को घोषित कर देता है। वागीश उत्तरसंरचनावाद के पेंचोखम की सीमाएँ जानते हैं। वे उसे खारिज करें कि इसके पहले ही वह अपनी ही जन्म-भूमि में खेत रहा है। भारतीय काव्य-शास्त्र प्रणालियों की उदात्त परंपराओं के मद्देनजर लेखक वागीश न तो उत्तरसंरचनावाद को विदूषित करने की मंशा रखते हैं, और न ही वे उसकी प्रासंगिकता को चिन्त्य मानते हैं। वे भारतीय काव्य-शास्त्र प्रणाली में ही रचनाकार की मौत और आलोचक की मौत को खोजते हैं।

दरअसल वागीश के लेखन में जो चतुर्दिक मौत है, वह जीवन की अनुपस्थिति का इजहार नहीं है। वह जीवन के ताने-बाने डालने वाली सच्चाई है। मौत अपने चारों ओर एक कहानी बुनती है। साहित्य इसका अनुकार इस रूप में है कि वह इस असत् को असत् के रूप में ही प्रस्तुत करता है। इस प्रक्रिया को वागीश साहित्य और जीवन का वैरानुबंध कहते हैं। साहित्य इसी अर्थ में मृत्यु का सामना करने की विधि भी है। साहित्य और जीवन एक तरह से शब्द और अर्थ की नांई एक दूसरे से तने रहते हैं। तने रहते हुए भी चिपके रहते हैं। शब्द और अर्थ का यह संबंध जीवन और मृत्यु के अर्थ में लिया जा सकता है, अर्थ की सत्ता शब्द की भूख मिटाने के लिए है। इस प्रक्रिया में ही रस का आविर्भवन होता है, जिसे ब्रह्मानंद सहोदर कहा गया है। परीक्षित मृत्यु के घेरे में हैं। मृत्यु की निर्दिष्ट समयावधि में हिलगे वे श्रीमद्भागवत के श्रोता बनकर मृत्यु का सामना करते हैं। और देवताओं द्वारा आनीत अमृतघट को यह कहते हुए अस्वीकार कर देते हैं कि 'क्व सुधा क्व सुधा पेता।' कहाँ घट में भरा अमृत और कहाँ अमृत का झरना! यह अस्वीकार इसलिए कि 'पिबत भागवतं रसमालयं मुहरहोरसिकाभुवि भावुका :।' ये जो अमृत रस है, साहित्य के भीतर छिपी सहने की ताकत का मूल स्रोत है—मौत के अँधेरे में ही यह रस झिरपता है। बहरहाल रस और ध्वनि दोनों ही घोर अंधकार से, रसातल से, जमींदोज होने से जुड़े हुए हैं। साहित्य एक ऐसी अर्धनारी देह है जो बुभुक्षा और रिरंसा की मजबूरियों के तहत चिपके हुए शब्द और अर्थ नाम के दो खोखलों के बीच घोर अंधकार (ध्वनित ध्वंत) को मुहरबंद किये हुए है। फिर यह नितांत स्वाभाविक और नितांत विश्वसनीय है कि काव्यानंद को ब्रह्मानंद का सहोदर कहा गया क्योंकि ब्रह्मानंद भी ऐसे ही घोर अंधकार का नाम है। इस अमृत-स्रोत अर्थात सहस्रार तक पहुँचने की प्रक्रिया को ही आलोचना कहा जा सकता है। इस तक पहुँचने के लिए आलोचक को चिता पर लेटना पड़ता है। इस तथ्य को प्रकट करने के लिए वागीश योगवाशिष्ठ के एक रूपक को सिद्ध करते हैं। इसलिए मैं यह कहता हूँ कि व्याख्या का काम है—भाषा चिंतन की सुलगाई हुई आग में और लकड़ियाँ डालते जाना, क्योंकि उस आग से उठता हुआ धुआँ जब नेवले से डरी नागिन की तरह नाक में घुसने लगेगा तभी आलोचक की लाश रचना के संकल्प का अमृत चख सकेगी। लेकिन बात शायद धुएँ की शक्ल में बदल चुकी नागिन तक ही सीमित नहीं है, बात शायद उस नेवले तक पहुँचने की भी है, जिससे डरकर वह बिल में घुसना चाहती है। यह साँप और नेवले का खेल ही रचना-पाठ है, जिसे धुएँ में बदलकर आलोचक पी लेना चाहता है। जिसके फरेब को वह अपनी नाक में समाने की राह देकर अपने मस्तिष्क में सहस्रार तक पहुँचना चाहता है, ताकि वहाँ से अकुलाकर रचना के संकल्प का अमृत टपकने लगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रचना का आस्वाद रचना की भाषा को निरंतर अनावृत करके ही किया जा सकता है। यद्यपि यह आस्वादन भी पूर्ण नहीं है। रचना की अनंत सामर्थ्य का अनुमान इसी आधार पर किया जा सकता है कि अलंकारों, छंदों, ध्वनि के भेदों के प्रसार से उस टेक्स्ट की देह को काटते जाना, निरावरण करते जाना। और कर्म की निरंतरता ही रस तत्त्व है। यह निरंतरता ही रचना के अन्तिम पाठ तक कभी नहीं पहुँचने देती है। भारतीय भाषा-चिंतन में वागीश उन बिन्दुओं को तलाशते हैं जिनमें पाठ की अनंतिमता का जिक्र बार-बार आता है। वैदिक उपमा है कि वाणी अपने को सहृदय के सामने उसी तरह अनावृत करती है, जैसे स्त्री अपने को प्रेमी के सामने (जामेव पत्य उशती (सुवासा) अनावृत करती है। ये आवरण, ये आभूषण अलंकार हैं। काव्य-शास्त्र इन्हीं कपड़ों के उतारने की प्रक्रिया है, जिसकी निरंतरता रस तत्त्व के रूप में नाम पाती है। और यदि वाणी को अनावृत करना है तो सहृदय को उसके चीर-हरण की लीला के लिए पहल करनी होगी। यही काव्य-शास्त्र की जरूरत है। इस प्रक्रिया को वागीश अनेक रूपकाभासों में व्यक्त करते हैं। देह के घड़े में काव्यानंद के लिए जगह बनाते हुए प्राण वायु निकलते जाना। रचना का वध, उसका रंधन और आस्वादन। रचना के शव को चाकू से काटकर खाता-पचाता हुआ आलोचक। वागीश अपनी कृति 'शहंशाह के कपड़े कहाँ है?' के आलोचना विषयक निबंधों में साहित्य, रचनाकार, आलोचक, रचना-आस्वादन, रचना विधा आदि पर विमर्श करते हुए अनेकश: उद्धरणों के बीच अपनी मौलिक स्थापनाओं को अक्सर अघोर लहजे में प्रस्तुत करते हैं, जबकि ऐसा करते हुए वे कहीं भी अपनी स्थापनाओं का श्रेय नहीं लेते हैं।

वागीश अधीत आलोचक हैं। उनके पास विभिन्न भाषाओं के साहित्यिक संदर्भ-स्रोतों का जखीरा है। इसका इस्तेमाल वे अपने प्रतिपाद्य को सिद्ध करने के लिए अक्सर करते हैं। वे अपनी शाब्दिक मीमांसा के लहर पटोरों के कटे अंग-विन्यासी टुकड़ों को तर्क के तकुओं को महीन सुई बनाकर ऐसा सिलते हैं कि वह सांग सलूका बन जाता है। वागीश अपनी दृष्टि भारतीय सौन्दर्यशास्त्र पर केन्द्रित किये हुए भी पाश्चात्य मान्यताओं के साथ भारतीय तंत्र और दर्शन की अनेक परिधियों से उसे जोड़ते हैं। ऐसा करते हुए वे एकदम अभिनव हैं—अपने निष्कर्षों में, इसलिए हिन्दी आलोचना में वे कुछ-कुछ अद्वितीय-से हो उठते हैं।

अपने साहित्य-चिंतन में वे भारतीय समीक्षा शास्त्र की समकालीन प्रासंगिकता के उद्घाटन के निमित्त, रचना की संरचना को, उसके पाठ को और उसकी समस्त इयत्ताओं को रचना में ही खोजने की पक्षधरता के चलते रचना के भाष्य की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं, "लेकिन कोई भाष्यकार यह नहीं कहता कि पाठ एक ही हो सकता है। भारतीय आलोचना विद्या का एक ऐक्सिऑमैटिक है, टेक्स्चुयल मल्टिप्लिसिटी। भारतीय आलोचना विद्या के ये तीन अभिगृहीत हैं—अनेक पाठिता (मल्टिप्लिसिटी ऑफ इण्टरप्रेजेशन), अनेकाख्यता (मल्टिप्लिसिटी ऑफ टेक्स्ट) और प्रमापाठिता (इन्फैलविलिटी ऑफ टेक्स्ट)। जाहिर है कि इस प्रक्रिया में सहृदय की अपनी प्रतिक्रियाओं को नकारा नहीं गया है। यही वजह है कि वागीश की रस-संबंधी विचारणा में सहृदय प्रमाता का अस्तित्व भी है।

इस कृति के अन्तिम हिस्से में कुछ निबंध 'स्त्री-विमर्श' पर केन्द्रित हैं। इन निबंधों में वागीश की समाज विषयक चिंतना में स्त्री-शक्ति की केन्द्रीयता है। वागीश ने भारतीय लोक में नारी की भूमिका की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया है कि भारतीय सन्दर्भ में नारी का आत्मबोध रचना में निरन्तर जागृत होता रहा है। और यह आत्म-बोध यदि कभी खोया रहा है तो वे आश्वस्त है कि भारतीय नारी अपने आत्म-बोध को फिर प्राप्त कर लेगी-"शताब्दी के अन्त की स्त्री अपनी निजता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

को बेपर्द देखेगी और अपनी गुमशुदा देह को खोज निकालेगी, वह उन सारी लिखावटों को अभिलेखागारों में पुन: दर्ज करेगी, जिन्हें इतिहास के शब्द संसाधक ने प्रोग्रामनीय और इस कारण विलोपनीय सूचनाओं में बदल दिया है; उन सारी लिखावटों को जो उसकी आत्मा को उसकी देह से अपृक्करणीय रूप में लिखती है।''

वागीश शुक्ल की यह कृति अपने संपूर्ण संभार में सूत्रों को सुलझाने, उन्हें समायोजित करने और उन्हें नई अर्थच्छवियों से मंडित करने का जटिल प्रयास है। इस जटिलता में रमने के लिए यद्यपि उन्होंने अनेक दृष्टांतों का अधिरोपण किया है, फिर भी इसको पढ़ने के लिए सावधान पाठक की जरूरत रहेगी। वागीश के ये निबंध समीक्षा के क्षेत्र में एक अनूठा पाठ तैयार करते हैं और अनेक शब्दों-दृष्टांतों से टकराती उनकी मेधा का सर्जनात्मक आख्यान भी प्रस्तुत करते हैं।

प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-2, प्रथम संस्करण : 2006, मूल्य : 225 रुपये।

रोहिणी अग्रवाल

हादसों से उपलब्धियों तक

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे'

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे' उनके आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, आत्मदृढ़ता, निर्भीकता, दुर्धर्ष संघर्ष-क्षमता एवं अपराजेय जिजीविषा का पूँजीभूत रूप है। वे 'सेकेण्ड सैक्स' की लेखिका सीमोन द बुवा की इस बात से सहमत हैं कि औरत पैदा नहीं होती, बनाई जाती है। लेकिन अपने बचपन और तरुणाई की घटनाओं को स्मृतिबद्ध करते हुए इस तथ्य को बलपूर्वक रेखांकित करती हैं कि लड़की चाहे तो स्वयं को औरत बनाने के सामाजिक षड्यंत्र के खिलाफ डट कर लोहा ले सकती है। सामाजिक दबाव तभी कामयाब होते हैं जब उसमें न अपने को समझने का, न हवा के विपरीत चलने का इरादा और विवेक हो और न अपनी शर्तों पर जीने का माद्दा। यानी ग्लैमरस छवि में परितृप्ति पाने के लोभ में जीवन के मर्म और गरिमा से शून्य हो वह बन जाए साँसों के बंधन में बँधी एक कैदी। रमणिका गुप्ता कैदी नहीं, जीवन की रवानगी से भरकर अपनी राहों का अन्वेषण स्वयं करना चाहती हैं, बिना किसी सहारे और हस्तक्षेप के। अवांछित हस्तक्षेप हों तो उनका पुरजोर विरोध। प्रतिपक्ष के रूप में चाहे माँ-बाप हों या पूरा सरकारी अमला। उनमें है जान पर खेल कर खौफनाक सच्चाइयाँ उद्घाटित करने का जाँबाज हौसला, जो उन्हें 'औरत' के संस्कारों में दीक्षित स्त्री से अलग एक जुझारू मनुष्य की भास्वरता से आलोकित करता है। हर देश और काल के लिए अनुकरणीय आदर्श 'मनुष्य।'

राजेन्द्र यादव ने 'हादसे' को 'स्त्री के अपने चुनाव की कहानी' कहा है, लेकिन रमणिका गुप्ता ने समूचे जीवन को निर्णायक हठों की शृंखला में पिरो कर जिस प्रकार अनवरत अपनी परिधि और क्षितिज का विस्तार किया है, वह उनकी वैयक्तिक उपलब्धि न रहकर अरसे से सीमोन की निष्पत्तियों में जकड़ कर जड़ हो गए स्त्री विमर्श को रवानगी देने का सकारात्मक आंदोलन बन जाता है। आखिर कब तक षड्यंत्रों की दुहाई देकर अपनी बेचारगी को कैश करती रहेगी औरत।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खुदमुख्तारी विद्रोह की भंगिमा के रूप में यथास्थितिवादी समाज को प्रतिहिंसक जरूर बना देती है, लेकिन स्त्री के आगे कितने ही सकारात्मक नियामतों का ढेर लगा देती है, जिनके स्वाद से वह सदियों से वंचित रही है—स्वाभिमान, निर्णयस्वतंत्रता, स्वावलम्बन, पारदर्शिता तथा चुनौतियों से जूझ कर नई उपलब्धियाँ हासिल करने का तोष ओर सर्जनात्मक क्षमता। यही नहीं, इसमें अंतर्निहित है लता न बनकर पेड़ बनने का आनंद और सदियों के स्याह अँधेरों को पलट कर दमकती सच्चाइयों को सामने लाने का रोमांच। फिर क्यों न अपरिहार्य हो जाएँ पुनर्व्याख्याएँ कि "मैं औरत के संदर्भ में पतित शब्द की परिभाषा से सहमत नहीं हूँ। यह शब्द औरत के चरित्र से जोड़ा जाता रहा है और चरित्र का अर्थ केवल औरत के यौन सम्बन्धों को लेकर ही समझा जाता है। औरत के संदर्भ में चरित्र के अन्य गुण या लक्षण जैसे नैतिकता, शालीनता, ईमानदारी, परस्पर सद्भाव या संवेदनशीलता तथा बहादुरी और निडरता आदि को नजरअंदाज कर दिया जाता है।" क्यों न जरूरी हो जाए आत्मदया और अपराधबोध से पीड़ित औसत औरत के मनोविज्ञान की पड़ताल का क्रम कि "दरअसल प्राय: सभी स्त्रियाँ अपने समाज या परंपराओं अथवा रूढ़ियों के विरुद्ध या पुरुष और परिवार की इच्छा के विपरीत कुछ भी करती या सोचती है तो वे तत्काल अपराध बोध की ग्रंथि से ग्रसित हो जाती है। वे अपने आचरण को गलत मान कर खुद को दोषी मानती रहती हैं। इसी गलत का अहसास ही उन्हें असुरक्षित और भयभीत करता रहता है। आत्मदया की ग्रंथि उन्हें अपने को शरीर मानने तथा शरीर होने के लिए प्रेरित करती रहती है।" ऐसा नहीं कि रमणिता गुप्ता के भीतर की स्त्री औरत बना दिए जाने की प्रक्रिया में आरोपित कर दिए जाने वाले दबावों-संस्कारों-वर्जनाओं से मुक्त रही है। उनके रूढ़िग्रस्त सामंती परिवेश ने तमाम अन्य वर्जनाओं के साथ आत्मदया एवं अपराध बोध जैसी ग्रंथियों को एक कवच के रूप में उनकी शख्सियत पर आरोपित कर दिया था। लेकिन द्वंद्व और संघर्ष के बीच संतुलन बनाने और अडिग खड़े रहने के हठ ने उन्हें आत्मसाक्षात्कार के लिए प्रेरित किया।

'हादसे' का पाठ रमणिका गुप्ता के बहाने रचनात्मक ऊर्जा से भरपूर एक ऐसी अपराजिता स्त्री की लोहमर्षक दास्तान है जो लैंगिक चेतना से आक्रांत समाज को लिंगगत पहचान भूलने को बाध्य कर एक कर्मठ राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में रेखांकित करती है। कुछ लोग इसे उनके राजनीतिक संघर्षों एवं उपलब्धियों की डायरी कहकर आत्मकथा के दायरे से निष्कासित करने की पैरवी भी कर सकते हैं, क्योंकि आत्मकथा में व्यक्ति के गोपन जीवन के बारे में अधिकाधिक रसीली वर्जनाओं में ढकी जानकारी पाने का लोभ यहाँ एक गहरी निराशा में ढल जाता है। रमणिता गुप्ता का कसूर यह है कि दाम्पत्य सम्बन्ध एवं प्रेम सम्बन्धों की चर्चा को सायास बचा कर वे 'लीला' एवं 'क्रीड़ा' के भोगपरक आनंद से साहित्य को तरबतर नहीं करतीं। लेकिन आत्मकथा में शयनकक्ष की प्रधानता क्यों हो? आत्मकथा की सार्थकता न पीत पत्रकारिता में है न 'ब्लू फिल्म' बन जाने में। वह मूलत: और अंतत: एक प्रेरक शक्ति है जो दबी-कुचली अदना-सी हस्ती के आकाश की बुलंदियों तक पहुँचने का लेखाजोखा रखती है। बैसाखियों के सहारे नहीं, भीतरी अंत:शक्तियों के संधान, संवर्धन और सर्जनात्मक उपयोग के सहारे। अपनी अन्तिम परिणति में, आत्मकथा लेखक के जीवनानुभवों का निजी आख्यान न रहकर समूचे पाठक वर्ग (मनुष्य) का स्वप्न और संकल्प बन जाती है। वह आत्मकथाकार के जीवन की तिथियों और तथ्यों में बंधा जीवनवृत्त नहीं होती, समय की ऐतिहासिक परम्परा में एक खास शक्ल अख्तियार किए समाजशास्त्र की वैज्ञानिक पड़ताल भी बन जाती है। रमणिका गुप्ता की कर्मभूमि रहा है छोटानागपुर का इलाका और ट्रेड यूनियन के जरिए कोयला खदानों में खटने वाले मजदूरों के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आंदोलन का नेतृत्व करना। साठ और अस्सी के दशक के दरम्यान फैला यह ऐसा आंदोलन है जो मालिकों, ठेकेदारों उनके लठैतों और पहलवानों के दौर से गुजरता हुआ राष्ट्रीयकरण में बँधकर यूनियनों के आपसी या भीतरी झगड़ों को झेलता हुआ अभी भी माफिया लीडरों, छोटे-बड़े रंगदारों, महाजनों और सूदखोरों से जूझ रहा है। कहना न होगा कि उनकी आत्मकथा अपने समग्र प्रभाव में कोयला खदानों के मजदूरों के संघर्ष की प्रामाणिक दास्तान बन जाती है। बेशक लेखिका ने यहाँ अपनी राजनीतिक उपलब्धियों के रूप में घाटो हाई स्कूल आंदोलन, पानी की लड़ाई, लाठा-छानन-जलावन की लड़ाई, जल-जंगल-जमीन की लड़ाई, ठेकेदारी उन्मूलन आंदोलन, कोयला खदानों के राष्ट्रीयकरण की लड़ाई आदि सफलताओं का विस्तृत वर्णन किया है, लेकिन इनकी प्रस्तुति इस ढंग से की गई है कि वे उनकी निजी उपलब्धियाँ न रहकर पूरे आदिवासी क्षेत्र के सहयोग और समर्थन, संघर्ष और चेतना का विस्तार बन गई है। रमणिका गुप्ता का राजनीतिक कैरियर एक ओर उन्हें स्वाभिमान की रक्षा में तत्पर जुझारू योद्धा की भंगिमा देता है। (1967 में जब वे स्त्री कार्यकर्ताओं को कलेवा मानने वाली कांग्रेसी मानसिकता को लात मार कर अपना रोष प्रकट करती हैं कि "मैं कांग्रेस से त्यागपत्र दे रही हूँ। मैं अपना रास्ता खुद बनाने में सक्षम हूँ। इसलिए अपना रास्ता खोज लूँगी, नहीं तो रास्ता ही मुझे खोज लेगा।" तो दूसरी ओर व्यापक जनाधार बनाने के लिए आदिवासी मजदूर के मनोविज्ञान की गहरी थाह लेकर अपनी निर्भीक छवि बनाती कूटनीतिज्ञ की गरिमा भी देता है। ("पहलवान का भय दिखा कर वार्ता करना मजदूर पसन्द नहीं करता। वह अपने नेता को उस पहलवानी शक्ति को चुनौती देने में सक्षम देखना चाहता है, परिणाम चाहे जो हो।") काबिले गौर है कि राजनीतिज्ञ से पहले रमणिका गुप्ता स्वयं को आंदोलनकारी मानती हैं। लगभग तीन दशक आदिवासियों के बीच गुजार देने के कारण उनकी प्रतिबद्धता किसी खास राजनीतिक दल या दर्शन से नहीं, आम आदमी के प्रति रही है। उसके दुख, अभाव और पीड़ा को दूर कर स्वस्थ सामान्य जिन्दगी देने के निश्छल स्वप्न के रूप में। इसलिए उनकी राजनीतिक समझ और निष्पत्तियाँ वामपंथियों की हार्ड लाइन या आदर्शवादियों के यूटोपिया से दूर जनता के मनोविज्ञान की गहरी पकड़ से उपजी हैं। वे बहाव में बह कर नक्सलवाद जैसी सशस्त्र क्रांति के बलबूते देश की सामाजिक-आर्थिक सांस्कृतिक व्यवस्था में समानता एवं समन्वय लाने के प्रयास को शेख चिल्ली का सपना मानती हैं, क्योंकि भारत में अभी श्रम की गरिमा को समझने की परिपक्व मानसिकता पनपी ही नहीं है। अभी भी मेहनतकश जातियों को नीच जातियाँ मानने का संस्कार भारत के सामंती चरित्र में मौजूद है। उनके अनुसार हमारे देश में पैटी बुर्जुवा लोग शोषण के साधन हैं जो साथ ही गरीब वर्ग के हैं पर खुद को अन्य गरीबों तथा छोटी जातियों से श्रेष्ठ अथवा बड़ा समझते हैं चूँकि शास्त्रों के अनुसार वे जाति में उनसे बड़े माने जाते हैं। निम्न जाति और निम्न वर्ग का बंधुआ मजदूर भी भारत में पैटी बुर्जुवा बनने या अभिलाषा रखता है। भारत में अभी वे जमींदारी खत्म करने या सबको मेहनतकश बनाने का सपना नहीं देखते, क्योंकि मेहनत-मजदूरी करना भारत में छोटी जाति का काम माना जाता है। अत: पैटी बुर्जुवा...लोगों को मारना संभव नहीं। उनका मन बदलना जरूरी है। मजदूरों के बलबूते पर जमींदार पूंजीपति घरानों को समाप्त किया जा सके, अभी वह स्थिति भारत में पैदा नहीं हुई है चूँकि मध्यवर्गीय सामंती बिचौलियों की जमात पूँजीपतियों, जमींदारों एवं सर्वहारा के बीच बफर की तरह खड़ी है।" कहना न होगा कि जड़ों से जुड़कर और जमीन में जज्ब होकर काम करने की अंत:शक्ति ने रमणिका गुप्ता के व्यक्तित्व को पुख्ता आधार दिया है। यही उनके व्यक्तित्व को सघन, संश्लिष्ट एवं गत्यात्मक बनाए रखने की कुंजी भी है।

'हादसे' का महत्त्व कोयला खदानों के मजदूरों के संघर्ष के प्रामाणिक दस्तावेज के रूप में ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं है। इससे आगे बढ़कर वह समय और समाज का सृजन करता है। अत: दो दृष्टियों से इसे संग्रहणीय रचना माना जा सकता है। एक, स्वतंत्रता, अधिकार, चेतना की चीत्कार के बावजूद स्त्री मुक्ति आंदोलन-स्वर स्त्री को निष्क्रिय और मानसिक रूप से परावलम्बी बनाए हुए हैं। यह कृति एक सार्थक हस्तक्षेप करते हुए स्त्रियों को सबसे पहले मानसिक मुक्ति का मूलमंत्र देती है, जिसके बिना आर्थिक स्वावलम्बन, सामाजिक हैसियत और कानूनी सुरक्षा सब बेमानी हो जाते हैं। दूसरे, यह राजनीति को स्वार्थ एवं नकारात्मकता का पर्याय मानने वाली हताश मानसिकता का विरोध करती है। मिशन के प्रति समर्पण हो तो कीचड़ में कमल क्योंकर नहीं उगाए जा सकते? आशा, उत्साह, ऊर्जा, संघर्ष और जिजीविषा से भरपूर हादसे युद्धरत सिपाही का प्रयाण गीत है, इसमें कोई संदेह नहीं।

प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-51, प्रथम संस्करण : 2005, मूल्य : 125रुपये।

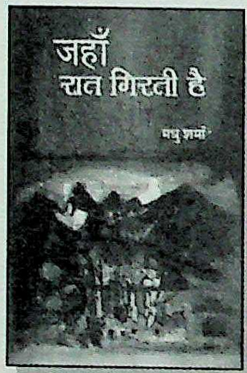

अच्युतानंद मिश्र

जीवन को कविता से भरते हुए

मधु शर्मा का कविता-संग्रह 'जहाँ रात गिरती है'

मधु शर्मा का चौथा कविता संग्रह 'जहाँ रात गिरती है' की कविताओं के केन्द्र में अपनी अभिव्यक्ति और उपस्थिति की खोज में जुटी स्त्री है, जो प्रचलित स्त्री-विमर्श के तंग गलियारे में अपनी दुनिया नहीं तलाशती, बल्कि खुले आसमान के नीचे फैली इस विस्तृत दुनिया में अपने लिए वास्तविक जगह तलाशती है।

प्रेम में कुछ ऐसा है जो ऐंद्रिकता के बाहर है, जो अक्सर छूट जाता है। इसी छूटे हुए को पकड़ने की कोशिश हर कवि करता है, प्रेम के इस अमूर्त को मूर्त कर प्रस्तुत करना किसी भी कविता में पाठक को चमत्कृत कर देता है। ऐसा ही चमत्कार मधु शर्मा की कविताओं में देखा जा सकता है। जटिल और अमूर्त संवेदनाओं की इतनी ठोस अभिव्यक्ति हिन्दी कवयित्रियों में दुर्लभ है। यहाँ कविताओं में कुछ रिक्त स्थान है, ये रिक्त स्थान बगैर शब्द के बोलते हैं। यह शैली शमशेर के यहाँ भी थी, पर शमशेर की जटिलता मधु शर्मा के यहाँ नहीं है। शायद इसकी वजह मधु शर्मा का स्त्री होना हो सकता है। पर यह स्त्री होना किसी कुण्ठा को जन्म नहीं देता, बल्कि एक विश्वास से भर देता है। कवयित्री अपने अस्तित्व बोध को अभिव्यक्ति का प्रस्थान बिन्दु मानती है। वह मानती है देह मात्र एक स्थूल वस्तु नहीं बल्कि प्रकृति की तरह गतिशील है। वह आत्मा के प्रकाश पुंज से सराबोर है। यही गतिशीलता उसकी देह में रचनाशीलता की प्रेरणा को जन्म देता है। वह कहती है 'यह आत्मा सौंपती हूँ मैं/ इस देह के साथ/यह कुंद न हो/ और चमक बनी रहे/ हर युद्ध इसी धार से लड़ना है मुझे।' यहाँ कवयित्री स्वीकार करती है कि वह देह के साथ-साथ आत्मा भी है। यह आत्मा की चमक उसमें एक धार ला देती है। उसे मात्र देह नहीं अपितु आत्मा के साथ सम्पूर्ण स्वीकारना होगा। अपने पूरे अस्तित्व का एहसास कवयित्री मात्र चार पंक्तियों में करा देती है।

ये कविताएँ स्त्री मन की समग्रता और व्यापक विस्तार की बात करती हैं, एक गहरी अन्तर्लय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में डूबी ये कविताएँ समय के साक्ष्य को बेहिचक प्रस्तुत करने का जोखिम उठाती हैं।

मधु शर्मा की कविताओं में बिम्ब या तो अनुपस्थित हैं या फिर हैं भी तो कविता के केन्द्र में नहीं। यहाँ कविताएँ सीधे-सीधे दृश्य प्रस्तुत करती हैं, बावजूद इसके कविता सपाटबयानी नहीं लगती। एक गूढ़ वक्तव्य इन कविताओं में लक्षित किया जा सकता है। इस कारण ये कविताएँ पूरे ठोसपन और अपनी सम्पूर्ण अर्थवत्ता के साथ पाठक के हृदय में उतरती हैं। प्रेम स्त्री का मुख्य चरित्र है। यही प्रेम उसकी रचनाशीलता, उसकी प्रेरणा, उसकी चेतना के केन्द्र में है। पर पुरुष वर्चस्ववादिता ने स्त्री के इस चारित्रिक गुण को उसकी निर्बलता प्रमाणित करने का सदैव प्रयास किया है। बावजूद इसके स्त्री प्रेम करती है। वह मानती है कि वह इस प्रेम के बगैर नहीं रह सकती, चाहे इसके लिए उसे असहाय ही क्यों न समझा जाए। कवयित्री कहती है, 'मैंने प्रेम किया/सिर्फ प्रेम/कुछ बचा ही नहीं था/क्या करती।' प्रेम की इतनी तीव्र और स्पष्ट अभिव्यक्ति हिन्दी प्रेम कविता में दुर्लभ है। यहाँ स्त्री किसी करूणा या विलाप का प्रदर्शन नहीं करती, बल्कि अपने प्रेम करने की नैसर्गिक योग्यता की ओर आकृष्ट करती है।

रघुवीर सहाय ने कभी एक कशमकश महसूस की थी, जब उन्हें चलती बस में बच्चे को गोद में लिए चढ़ती स्त्री दिखी थी। वहाँ स्त्री मात्र कविता की वस्तु थी या दृश्य थी। हलचल कवि के भीतर था, स्त्री निर्लिप्त या स्थिर थी। पर यह स्त्री ढाई दशकों बाद जब मधु शर्मा की कविता में आती है तो वह एक खामोश चित्र नहीं रह जाती। वह दर्ज करती है अपना गतिशील अस्तित्व। यहाँ औरत की इच्छा मात्र कविता की वस्तु न रहकर एक पूरी गतिशील कविता बन जाती है। स्त्री यहाँ दृश्य न रहकर एक चलता-फिरता जीवन प्रस्तुत करती है। कवयित्री कहती है, 'वे आना चाहती है दृश्य में।' कहना न होगा कि ढाई दशकों में स्त्री मन में आए परिवर्तन को इन कविताओं में लक्षित किया जा सकता है। स्त्री मन का सामयिक यथार्थ इन कविताओं में स्पष्ट तौर पर उभर कर आया है।

धर्म और संस्कृति की मार स्त्री ही सबसे ज्यादा भोगती है। 'कार्तिक स्नान' कविता में स्त्री रात्रि के आखिरी पहर में कड़ाके की सर्दी में बाहर जाती है, स्नान करते हुए गीत गाती है और अँधेरे का तिलिस्म टूटने से पहले मन पर दु:ख और विषाद का लबादा ओढ़े लौट आती है- 'सूरज उगने से पहले/ उन्हें लौट आना होता घरों में/ छलकते बिम्ब उनके चेहरों के/ पानी में टूटते।' एक घनीभूत संवेदना इन कविताओं को एक ऐसे संसार में ले जाती है जहाँ कविता अनुभूत यथार्थ से सामाजिक यथार्थ की ओर प्रस्थान करती है।

मधु शर्मा की कविताएँ स्त्री मुक्ति की तीव्र आकांक्षाओं की कविता है। वह मुक्ति के घर की तलाश भीतर और बाहर दोनों जगह करती है। बगैर अकेलेपन का वैभव उठाए वह सबको साथ लेकर चलती है। वह सबमें भरती है जीवन। वह अपने इस रचनात्मक सच को कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। वह जीवन की तमाम खाली जगहों को कविता के माध्यम से भरने की कोशिश करती है।

प्रकाशक : मेधा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2006, मूल्य : 150 रुपये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पाठक मंच

एकान्त श्रीवास्तव (कलकत्ता) : ज्ञानोदय का नया अंक (जुलाई 06) मिला। धन्यवाद! हमेशा की तरह पठनीय और स्तरीय सामग्री से भरपूर। पर चार रचनाओं का विशेष उल्लेख करना चाहूँगा।

सर्वप्रथम तो सम्पादकीय बेहद दिलचस्प है। दिलचस्प इसकी भाषा है लेकिन है यह बेचैन करने वाला आलेख। सच है कि अँधेरनगरी का अन्धकार अभी खत्म नहीं हुआ बल्कि और सघन हुआ है। ऐसे समय में जब आज का महान लेखक कल भुला दिया जा रहा है, 125 वर्षों बाद 'अँधेरनगरी' के बहाने भारतेन्दु को याद करना अभिभूत कर गया। परम्परा को प्रणाम करते हुए ही हमारी 'आधुनिकता' अपने भवितव्य को प्राप्त कर सकती है। ठीक लिखा है अपने—'यदि बुद्धि के क्षेत्र में यह हालत हैं तो कर्म के क्षेत्र में क्या होगी?'

दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना कवि अग्निशेखर की लम्बी कविता 'जवाहर टनल' है। उल्लेखनीय है कि अग्निशेखर के नागरिक अनुभव त्रासद और विलक्षण हैं। कविता में एकबारगी वे नए, ताजे और काफी हद तक अनोखे लगते हैं। ऐसे नागरिक अनुभव हिन्दी के किसी कवि के पास नहीं। इसलिए उनके तल्ख अनुभव कविता में विचलित कर देने वाली भाव सम्पदा में बदल जाते हैं। कविता अनुभव से बड़ी बनती है, मात्र भाषा की नक्काशी से नहीं। सुखद है कि अग्निशेखर अनुभव व भाषा—दोनों धरातलों पर सम्पन्न हैं। काव्य विषय का चयन ही काबिल-ए-तारीफ है—जवाहर टनल में फँसी हुई बस। भागे हुए, मजबूर, विस्थापित और दुःखी लोगों से भरी हुई, भयावह अतीत और अनिश्चित भविष्य के नीचे यह फँसा हुआ वर्तमान है जिसके पास—'ओढ़ने को आसमान था/ सोने को हिन्दुस्तान था/ मेरा देश महान था।' कमीज के अन्दर छिपाए गए चिनार के पत्तों की तरह यह कविता लम्बे समय तक स्मृति में रहेगी।

तीसरी उल्लेखनीय रचना भाई के नाम विंसेन्ट वान गॉग का पत्र है। राजुला शाह का अँग्रेजी से रूपान्तरण बहुत अच्छा है। भ्रम हो सकता है कि यह किसी महान चित्रकार नहीं बल्कि किसी समर्थ रचनाकार का पत्र है। भाषा पर उनकी पकड़ देखते बनती है और जीवन के प्रति उनके विचार मार्मिक और गहरी अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण हैं—'कठिन परिस्थितियाँ हम मनुष्यों के लिए वैसी ही हैं जैसे पंख बदलने का वक्त पक्षियों के लिए।' पढ़ने की भूख को पेट की भूख से जोड़कर देखना रोमांचकारी है—'पढ़ने की ऐसी लालसा मेरे भीतर है जैसे रोटी की।' जुलाई 1880 में लिखा गया यह पत्र प्रमाण है कि एक कलाकार या लेखक जैसे संवेदनशील व्यक्ति की आत्मा किस तरह समाज की प्रतिकूल परिस्थितियों की कंटीली झाड़ियों में रक्त रंजित होती रहती है—'हम हमेशा यह बतलाने की स्थिति में नहीं होते कि वह क्या है जिसने हमें ढाँप रखा है, बंदी बना रखा है, जो हमें दफन किये देती है...हालाँकि हम उन चट्टानों, उन दरवाजों, उन दीवारों को बखूबी पहचानते हैं।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अन्त में जिस रचना की चर्चा करना चाहूँगा, वह हिन्दी के वरिष्ठ और अत्यंत महत्त्वपूर्ण कवि लीलाधर जगूड़ी की लम्बी कविता है—'दुनिया का सबसे बड़ा रचनात्मक झूठ।'

श्री जगूड़ी ने कुछ अत्यंत महत्त्वपूर्ण लम्बी कविताओं का उपहार हिन्दी कविता को दिया है—चाहे वह 'बलदेव खटिक' हो चाहे 'मंदिर लेन'। बावजूद इसके वे महाकाव्यात्मकता का दावा नहीं करते। उल्लेखनीय है कि अपनी लम्बी कविताओं की पुस्तक का शीर्षक ही उन्होंने दिया था—'महाकाव्य के बिना'। इसकी भूमिका में उन्होंने चिन्ता जताई थी कि हमारा समय छोटी कविताओं का समय होता जा रहा है। नंदकिशोर नवल के अनुसार वे कविता में 'कठिन सौन्दर्य के स्रष्टा' हैं। उनकी भाषा समकालीन काव्य भाषा से अलग है और उनका काव्य-मुहावरा भी। किसी आलोचक ने उनपर 'शब्दों' का सरकारी धन की तरह दुरुपयोग करने का आरोप लगाया था, लेकिन सच्चाई यह है कि भाषा के विस्तृत फलक पर यथार्थ की जैसी चीरफाड़ उनके यहाँ दिखाई देती है, वह प्रायः दुर्लभ है। प्रकृति और पहाड़ों के अनुभव भी उनकी सम्पदा रहे हैं।

प्रस्तुत कविता उनकी अन्य लम्बी कविताओं की तुलना में अपेक्षाकृत 'सरल' है। अर्थगत जटिलता चाहे यहाँ हो। वे अपने पाठकों से एक प्रज्ञा की माँग करते हैं। किसी पुस्तक की भूमिका से उनका यह कथन प्रसिद्ध हुआ है कि वे 'पाठकों की माँग पर नहीं' बल्कि पाठकों के भीतर नई माँग पैदा करने के लिए कविता लिखते हैं। यह कविता भी उनकी उसी काव्यधारणा और कठिन काव्य प्रयास का प्रतिफल है। खरगोश और कछुए की कथा का लाभ उठाने के कारण ही कविता एक हद तक सरल और कुछ अधिक ग्राह्य हुई है। यह कथा कविता को एक अन्विति या तारतम्यता देती है। खरगोश यहाँ प्रतिभा का प्रतीक है। निःसन्देह दौड़ में उसकी प्रतिभा निर्विवाद है, विलक्षण भी। सबको लोहा मनवाने वाली। लेकिन धीमी गति के कछुए को उसका प्रतिद्वंद्वी बनाकर उसकी पराजय का आनंद लेने वाली कथा जो 'झूठ' रचती है, उसे संसार का सबसे बड़ा रचनात्मक झूठ कहना कतई असंगति नहीं। बावजूद इसके 'अभी भी रचनात्मकता के खिलाफ नहीं हुए हैं खरगोश।' यह जरूर है कि इस 'झूठ' से उसके 'कान विस्फारित आँखों जैसे बड़े हो गए हैं।' फिर भी खरगोश 'एक बार जीतना चाहता है।' दिक्कत यह कि दोनों दोस्त हैं—खरगोश और कछुआ। समान रूप से चतुर और मूर्ख। और 'दोस्त को भला ज्यादा से ज्यादा क्यों हराना चाहेगा कोई दोस्त,' इसलिए हार का वास्तविक कारण वह नहीं जो कथा बताती है। न अतिरिक्त आत्मविश्वास, न अहंकार, न मूर्खता या लापरवाही। वास्तविक कारण था—'प्रतिस्पर्धी का ऐतिहासिक इंतजार!' इस लम्बी कविता की नाभि में अर्थात मध्य में केन्द्रीय (निष्कर्ष) बिन्दु मात्र एक पंक्ति में है। जैसे इस जटिल कविता की अर्थ-कुँजी हो—'अनवरत प्रयत्न की विजय दिखाने के लिए प्रतिभा की पराजय जरूरी नहीं थी।' आगे की पंक्तियों में कविता अपने शिखर का संस्पर्श करती है—'वह पीछे रहकर भी कछुवे को पछिया सकता है/ पर वह क्रमशः अगियाना चाहता है अपनी दौड़ को/ वह पहले से ही आगे रहकर आगे नहीं होना चाहता/ वह अपनी दौड़ को भी फूल की तरह विकसित करना चाहता है।'

'दौड़ को फूल की तरह विकसित करना'—अत्यंत समर्थ काव्य-प्रयोग। क्या कहने! और इसके तुरन्त बाद कोष्ठक की पंक्तियों में तो इस लम्बी कविता का काव्य-मर्म सचमुच फूल की तरह ही खुला, खिला और स्पष्ट है—'शायद ऐसे ही विकसित होता है एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रचनाकार भी। भले ही अपने उद्देश्य में उसे हारना पड़ जाए। और फूल को मुरझाना।' अपने उद्देश्य में हारकर भी यदि एक रचनाकार अपने 'विकास' को प्राप्त करता है; मुरझाकर, झड़कर भी एक फूल यदि अपनी 'सद्‌गति' को प्राप्त करता है तो यह हारना भी स्वीकार्य है और मुरझाना भी—क्योंकि दोनों ही एक कर्मशील जीवन की दीप्ति से दीप्त हैं। इति शुभम!

वेद राही (मुंबई) : मैं जवाहरलाल नेहरू टनल से बीसियों बार गुजरा हूँ, परन्तु वैसे दम साधे कभी नहीं गुजरा जैसे अग्निशेखर की कविता पढ़ते हुए गुजरा। यह लम्बी कविता पढ़ने के बाद मैं कई दिन तक उस लम्बी सुरंग के गीले और घने अँधेरे में लिथड़ा रहा हूँ, संकरी श्वास नली में अवरूद्ध हवा के समान। असहनीय पीड़ा का स्वानुभव इस कविता को लिखते हुए अग्निशेखर को दोबारा उसी सुंरग से गुजरना पड़ा होगा। समग्र हिन्दी साहित्य में ऐसी कविताएँ कम लिखी गई हैं। आपका सम्पादकीय 'अँधेरगर्दी का वक्त और अँधेर नगरी' मुझे जवाहर टनल की सीलन में घुसा हुआ महसूस हुआ है। यह विस्तार असीम है। इसी अंक में 'रंग दे बसन्ती' के लेखक कमलेश पाण्डेय कह रहे हैं—'नेहरू ने विश्वास दिलाया था कि हर करप्ट व्यक्ति को निकटतम खम्बे से लटका दिया जाएगा...सारे खम्बे खाली रहे। शायद चाचा नेहरू करप्ट लोगों की तलाश कर रहे हैं।' 'नया ज्ञानोदय' में ऐसी सामग्री प्रकाशित करने पर मैं आपकी सम्पादकीय दृष्टि की दाद देना चाहता हूँ।

राजेन्द्र राजेश (भागलपुर) : इस अंक (जुलाई 06) की सबसे बड़ी उपलब्धि है 'प्रस्तुति' के अन्तर्गत प्रस्तुत मेराज अहमद की कहानी 'सुरसत्ती'। वर्षों बाद किसी कहानी का अन्त रुला गया। हालाँकि इस बीच कई अच्छी कहानियाँ आईं, अच्छी भी लगीं, पर रुलाने का माद्दा...सुभान अल्ला! दलित-विमर्श पर लेखनी चलाने वाले और हल्ला मचाने वाले इस कहानी को पढ़ें, चिन्तन करें और अमल करें तो मैं समझता हूँ सारा परिदृश्य ही बदल जाएगा। कोई भी विमर्श एक-दूसरे को गाली देकर अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता। ऐसी बात नहीं है कि सवर्णों में सब बुरे हैं और दलितों में सब अच्छे। अच्छाई-बुराई तो सभी जगह है। जो बात हम जिससे कह रहे हैं, वह उसके मन को छुए, तभी बात बन सकती है। हाँ, यह बात सही है कि दलित (कमजोर?) सदियों से सताये जा रहे हैं, पर प्रकृति की प्रवृत्ति बहुत हद तक बदल चुकी है। हमें इतिहास को दुहराकर नहीं उससे सीख लेकर भविष्य का निर्धारण करना होगा, अन्यथा हम वहीं पहुँच जाएँगे, जहाँ पहले थे। दलित-विमर्श पर ऐसी सार्थक कहानी कम-से-कम अब तक देखने में नहीं आई, चाहे यह मेरी कूपमंडूकता ही क्यों न हो। और हाँ, महान चित्रकार विंसेन्ट वान गॉग की लेखनी में कूची का मजा आ गया। ऐसा लगा जैसे आकाश की ऊँचाई और पाताल की गहराई पढ़ी नहीं जा रही, बल्कि देखी जा रही है। वैसे भी, नया ज्ञानोदय की सारी रचनाएँ अनुपम होती हैं। पूर्वाग्रह और पाण्डित्य से बिल्कुल विमुक्त, आकाश में विचरण करते हुए स्वतंत्र पक्षी की तरह।

हरिशचन्द्र पाण्डे (इलाहाबाद) : 'नया ज्ञानोदय' का जुलाई 06 अंक देखा। अग्निशेखर की लम्बी कविता 'जवाहर टनल' लचर नीति के परिणामस्वरूप त्रासद परिस्थितियों के हवाले करती कश्मीरी शरणार्थियों की गाथा है—उनके जीवन के जद्दोजहद के आरोह-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अवरोहों को लिए हुए। लीलाधर जगूड़ी की कविता 'दुनिया का सबसे बड़ा रचनात्मक झूठ' अपने तरह की अलग कविता है। जगूड़ी की कल्पनाशक्ति देखते बनती है। कहानी का अन्त यह होना था कि इंतजार बुरा है। पर हो यह गया कि 'खरगोश ने आलस से काम लिया' या 'अनवरत प्रयत्न की विजय दिखाने के लिए प्रतिभा की पराजय जरूरी नहीं थी' जैसी पंक्तियाँ कथा को देखने का भिन्न कोण देती है। यह कविता एक लोकप्रिय कथा का काव्यात्मक पुनर्पाठ लगी। अँधेरनगरी का अँधेर तो आपने संपादकीय में दिखाया ही है। विंसेन्ट वान गॉग का पत्र भाई के नाम (अनुवाद : राजुला शाह) 'क्या ग्रीक दर्शन पश्चिम की विरासत है' (ललित मोहन बहुगुणा) 'युद्ध के दिनों में प्रेम' (अर्चना वर्मा) उल्लेखनीय हैं। संजीव श्रीवास्तव तथा 'नवान्न' के अंतगर्त स्मिता झा की कविताएँ अच्छी लगीं।

विवेक द्विवेदी (रीवा) : ज्ञानोदय का जुलाई 06 अंक पढ़ा। संपादकीय की जितनी तारीफ की जाए, कम है। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा एक पुराना नाम है। पढ़ने के बाद उस उम्र में उनकी जटिलता ने प्रभावित किया। भाषान्तर के अन्तर्गत विंसेन्ट वान गॉग का पत्र बहुत रोचक लगा। कविता खण्ड में लीलाधर जगूड़ी और संजीव श्रीवास्तव की कविताएँ यथार्थ को परिभाषित करती लगीं। मिता दास की कहानी 'तस्वीर' भी अच्छी लगी। 'उसने कहा था' के प्रतिपुर्नपाठ के बहाने अर्चना वर्मा के दृष्टिकोण की तारीफ की जानी चाहिए। अर्चना जी ने कहानी के मर्म को करीब से पकड़ने की कोशिश की है। अंक बेहतरीन बन पड़ा है।

सरोजनी कुलश्रेष्ठ (नोएडा) : 'नया ज्ञानोदय' का जुलाई 06 अंक प्राप्त हुआ। इसका संपादकीय पढ़कर मन भारतेन्दु हरिशचन्द्र की 'अँधेर नगरी चौपट राजा' के वातावरण में पहुँच गया। आपने बेबाक टिप्पणी दी है। इससे पहले महादेवी जी के विषय में प्रचलित मान्यता का आपने खंडन किया है। पढ़कर आनन्द आया। संपादकीय किसी भी पत्रिका का प्राण होता है। आगे आनेवाली सभी रचनाओं में उसकी खुश्बु रहती है। श्रद्धेया चन्द्रकिरण सौनरिक्सा पर साक्षात्कार प्रकाशित करके आपने बड़े पुण्य का काम किया है। टेलीविजन और सिनेमा का साहित्य और समाज से रिश्तों का बदलना, वर्तमान समय की ज्वलंत समस्या है। वस्तुत: आज टेलीविजन व्यावसायिक हो गया है। कहानियाँ तो सभी अच्छी हैं, पर मालती जोशी की 'अ-समय' और रमेश दुबे की 'बर्फ तो शहर में' मन को छू गईं। नवान्न के अन्तर्गत स्मिता झा की छोटी-छोटी दोनों कविताएँ बहुत अच्छी लगीं। ज्ञान चतुर्वेदी तो अनोखे हैं ही। अपने हर व्यंग्य-लेख में सदैव नये।

डी. पंसारी (कांकेर) : काफी दिनों बाद नया ज्ञानोदय के जून 06 में 'यात्रा' 'कौशल्या दी', 'छाया संसार', 'अपनी अपनी मुक्ति' और 'हलाहल' जैसी हृदयस्पर्शी कहानियाँ एक साथ पढ़ने को मिलीं। विवेचना के अन्तर्गत प्रकाशित आलेख 'नई सदी के सवाल और प्रसाद के नाटक' तथ्यपूर्ण और ज्ञानवर्धनक है। रचनाकारों के साथ-साथ आप को भी बधाई!

ध्रुव तांती (बिहार) : ज्ञानोदय का जुलाई 06 अंक मिला। सर्वप्रथम इस अंक के संपादकीय ने मुझे झकझोर दिया और मैं सहमत हूँ कि 125 वर्ष पूर्व भारतेन्दु जी ने 'अँधेर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नगरी चौपट राजा' नाटक लिखा था, उसकी प्रासंगिकता आज भी ज्यों-की-ज्यों है। मात्र सत्ता का हस्तान्तरण हुआ है, बाकी कुर्सी-तख्ती पहले जैसी ही है। साहित्य में चौर्यकर्म और वह भी प्रतिष्ठित साहित्यकारों के द्वारा हमारी मानसिकता को दर्शाता है। अंक की कहानी 'सुरसत्ती' एक प्रेरणादायक कहानी है। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा जी की काव्य-कथा 'गोदामघर' और 'जिन्दगी एक लड़की की' आज की हकीकत दर्शाती है। आज भी नारी अबला ही है। कुमार विनोद का व्यंग्य आलेख सामान्य लगा। कथ्य पुराना है। अंक की लघुकथा 'बदबू' हृदय को छूती है। अन्य रचनाएँ भी पठनीय हैं। सम्पादकीय के लिए आपको साधुवाद!

राजेश कुमार (हाथरस) : 'नया ज्ञानोदय' का जून 06 का अंक मिला। इस अंक के संपादकीय को बार-बार पढ़ा, क्योंकि महादेवी वर्मा के बारे में संपादक का सारगर्भित चिन्तन नई दृष्टि प्रदान करता है। पूरे हिन्दी जगत में महादेवी जी करुणा और विरह की अधिष्ठात्री मानी जाती हैं, लेकिन संपादक की प्रज्ञा ने तर्क और प्रमाण के द्वारा कुछ नया दिया है। संपादकीय के अलावा बुद्धिनाथ मिश्र की कविताएँ लोक-चेतना तथा तज्जन्य अर्थवत्ता को रेखांकित करती हैं। किसानी जीवन के प्रति अनुराग उनकी कविता का प्राण-तत्त्व है। श्री मिश्र के पास प्रगतिशील दृष्टि है, इसीलिए उनमें वैज्ञानिकता का समावेश है। विष्णु प्रभाकर का विष्णुकान्त शास्त्री पर संस्मरण भी उल्लेखनीय है।

शैलांचली (गजरौला) : नया ज्ञानोदय जून 06 पढ़ा। ज्ञानप्रकाश विवेक ने 'यात्रा' कहानी में एक ऐसी घटना का जिक्र किया है जिसे सामान्यत: टाल दिया जाता है या किसी की संवेदनों का उपहास बनाया जाता है। कथांत सुन्दर व सहजमैत्री भाव में प्रस्तुत किया जाना ही कहानी का चरम पक्ष भी है। पंचायत में इंटरनेट पर हिन्दी की दशा-दिशा पर सारगर्भित चर्चा हुई है। विष्णुकांत शास्त्री जी पर संस्मरण लेख लिख कर विष्णु प्रभाकरजी ने शास्त्री जी के व्यक्तित्व के कुछ अनछुए पहलुओं को उद्घाटित किया है, साथ ही उन्हें श्रद्धसुमन भी अर्पित किया है।

शिवनाथ (मोहाली) : अगस्त 06 का 'नया ज्ञानोदय' हाथ लगा। आपके संपादकीय पर नज़र डाली। बहुत अच्छा लगा। खासकर मुंबई बमकाण्ड की प्रतिक्रिया पर आपकी टिप्पणियों की तो जितनी प्रशंसा की जाए, कम है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारतीय ज्ञानपीठ

नये प्रकाशन

हिन्दी के निर्माता (विवेचन) : कुमुद शर्मा

इसमें हिन्दी के सौ दिवंगत प्रतिनिधि रचनाकारों का सचित्र विवेचन है। ये केवल हिन्दी की सृजनशीलता के निर्माता ही नहीं, हिन्दी में नवोदय लाने वाले लेखक भी हैं, जिन्होंने साहित्य और उसकी चेतना को नयी सक्रियता दी है। इनमें ऐसे विशिष्ट रचनाकार भी हैं, जिन्होंने हिन्दीतर-भाषी होते हुए भी, लेखन के विविध धरातलों पर युगीन सत्य से उपजा महान साहित्य उपलब्ध कराया; ऐसे पत्रकार भी हैं जिन्होंने राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्परा के बीच हिन्दी की जीवन्त और प्रखर पत्रकारिता का इतिहास रचा।

पृष्ठ : 416, मूल्य : 310 रु.

कवि परम्परा—तुलसी से त्रिलोचन (आलोचना) : प्रभाकर श्रोत्रिय

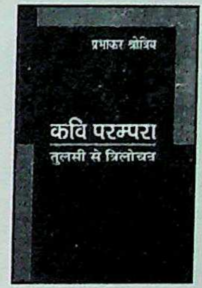

प्रख्यात समालोचक डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय की 'कवि परम्परा' में शामिल 21 कवि भक्ति-युग से नयी कविता युग तक का लम्बा काल-विस्तार समेटे हैं। अलग-अलग युग के, अलग-अलग धारा के व्यक्तित्ववान कवियों के 'शब्दार्थ' की पहचान करते हुए आलोचक ने एक ऐसा जीवन्त, रंगारंग संसार रचा है, जिससे न तो पुराना कवि 'कल' का लगता है, न आज का कवि अगले और पिछले 'कल' से कटा हुआ, अकेला।

पृष्ठ : 264, मूल्य : 195 रु.

सिने संसार और पत्रकारिता : रामकृष्ण

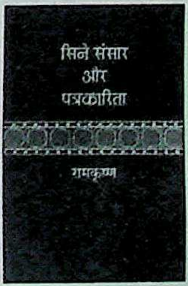

सिने संसार और पत्रकारिता में लेखक ने फिल्म जगत के उन चरित्रों को जीवित-जाग्रत रूप में उपस्थित करने का प्रयत्न किया है जिनका अपने जमाने में असाधारण महत्त्व था। मात्र फिल्म जगत ही नहीं, देश की अन्यान्य विधाओं का श्रेष्ठिवर्ग भी रामकृष्ण की स्मृतिरेखाओं से अछूता नहीं रह पाया है। आचार्य नरेन्द्रदेव, सम्पूर्णानन्द, वल्लभभाई पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, कृष्ण मेनन और फ़ीरोज गाँधी जैसे राजनेताओं और समाजवेत्ताओं के अतिरिक्त पुस्तक में अमृतलाल नागर, धर्मवीर भारती और अक्षयकुमार जैन जैसे मसिजीवियों के अन्तरंग संस्मरण भी हैं।

पृष्ठ : 196, मूल्य : 150 रु.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

माटी कहे कुम्हार से (उपन्यास) : मिथिलेश्वर

झोपड़पट्टियों में हाशिए के जीवन की तल्ख सच्चाई से प्रारंभ यह उपन्यास इक्कीसवीं शताब्दी के भारतीय गांवों की बेबाक पड़ताल करते हुए शहर में पहुँच शहरी जीवन एवं शहरी समाज की पर्तें उधेड़ उनकी प्रखर अन्तरकथा प्रस्तुत करता है। इस रूप में यह उपन्यास भारतीय जीवन, समाज एवं राजनीति की महागाथा बन जाता है-इस उपन्यास का कैनवास इतना विस्तृत एवं व्यापक है कि इसे भारतीय जीवन का महाकाव्यात्मक आख्यान भी कहा जा सकता है।

पृष्ठ : 516, मूल्य : 385 रु.

अब तक छप्पन (व्यंग्य-संग्रह) : यशवंत व्यास

यशवंत व्यास को नयी पीढ़ी के रचनाकारों में भाषा और शिल्प के स्तर पर अद्‌भुत ताजगी के लिए जाना जाता है। हास्य की हा-हाकारी परम्परा से उलट, यशवंत के व्यंग्य में तीव्र वेदना का स्वर है। 'अब तक छप्पन' के व्यंग्य दिलचस्प अन्दाज तथा विश्वसनीय प्रहार-क्षमता से आपको उस जगह खड़ा करते हैं जहाँ से आप सच को सच की तरह ही देख सकें।

पृष्ठ : 252, मूल्य : 190 रु.

कन्धे पर बैठा था शाप (नाटक-त्रयी) : मीरा कांत

मीरा कांत की नाट्य-त्रयी—'कन्धे पर बैठा था शाप' उन छूटे हुए, अव्यक्त पात्रों एवं स्थितियों की अभिव्यक्ति है जो या तो साहित्यिक मुख्यधारा का अंग न बन सकीं या फिर उसकी सरहद पर ही रहीं। इस नाट्य-त्रयी का पहला नाटक है 'कन्धे पर बैठा था शाप' जो कालिदास के अन्तिम दिनों, अन्तिम उच्चरित शब्दों, अन्तिम पद्य-रचना, आदि प्रेम-प्रसंग आदि के माध्यम से स्त्री-विमर्श का एक नया वातायन खोलता है। दूसरा नाटक 'मेघ-प्रश्न' कालिदास विरचित 'मेघदूतम्' के कथा-तत्त्व के अन्तिम सिरे को कल्पना की पोरों से उठाकर एक भिन्न व सर्वथा नयी वीथि की ओर बढ़ाने का सुन्दर प्रयास है। तीसरा नाटक 'काली बर्फ़' विस्थापन और डायस्पोरा के दर्द से बुने कश्मीर के समसामयिक यथार्थ को स्वर देता है।

पृष्ठ : 164, मूल्य : 140 रु.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नील दर्पण

प्रख्यात बांग्ला नाटककार दीनबन्धु मित्र रचित 'नील दर्पण' एक नाट्यकृति है, जो अपने समय का एक सशक्त ऐतिहासिक दस्तावेज़ भी है, जिसके 1860 में प्रकाशित होने पर बंगाली समाज और अँग्रेज शासक दोनों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। एक ओर बंगाली समाज ने इसका स्वागत किया तो दूसरी ओर अँग्रेज शासक इससे तिलमिला उठे। चर्च मिशनरी सोसायटी के पादरी रेवरेण्ड जेम्स लॉग ने 'नील दर्पण' का अँग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया तो अँग्रेज सरकार ने उन्हें एक माह की जेल की सज़ा सुनायी। अँग्रेज सरकार द्वारा रेवरेण्ड जेम्स लॉग पर चलाया गया मुकदमा ऐतिहासिक और रोमांचक है। नेमिचन्द्र जैन के 'नील दर्पण' के रूपान्तर के साथ ही उस मुकदमे का पूरा विवरण पाठकों को दमन और विद्रोह का दस्तावेज़ी परिचय देगा।

पृष्ठ : 164, मूल्य : 130 रु.

जैनधर्म में विज्ञान : सम्पादक-डॉ. नारायण लाल कछारा

जैनधर्म-दर्शन में विज्ञान सम्बन्धी आलेख। जैनदर्शन की वैज्ञानिकता को लेकर अर्से से चर्चाएँ होती रही हैं परन्तु धर्म-दर्शन में निहित विज्ञान को प्रमाणित करना कुछ कठिन ही होता है। प्रस्तुत पुस्तक में अनेक प्रमाण और तर्कों से इसकी वैज्ञानिकता को सिद्ध करने का प्रयास है। इसमें अपने-अपने विषय में पारंगत विद्वानों ने जैन धर्म-दर्शन के विविध विषयों एवं सिद्धान्तों का भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान तथा गणित आदि की दृष्टि से गम्भीर अध्ययन किया है। शोधार्थियों तथा स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए अत्यन्त उपयोगी।

पृष्ठ : 252, मूल्य : 150 रु.

कविता मनुष्यों के लिए (कविता-संग्रह) : मंगेश पाडगाँवकर

मराठी के शीर्षस्थ कवि मंगेश पाडगाँवकर के कविता-संग्रह 'की इकसठ कविताओं का रूपान्तर है। पाडगाँवकर ने अपनी इन कविताओं में व्यक्ति और उनसे सम्बद्ध चराचर जगत के विभिन्न रूपों एवं भावावस्थाओं को वाणी दी है। कविता जीवन, परिवेश और समय से तथा समाज और निचले तबके की वेदना से अपना भावात्मक रिश्ता जोड़ती है। उसमें कहीं विलक्षण ढंग की नाट्यात्मकता है तो कहीं व्यंग्य के साथ एक अजीब प्रकार का हास्य भी।

पृष्ठ : 120, मूल्य : 95 रु.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेखकों के पते

Dr. K.K. Srivastava : 372, Ridgacre Road, Qointon, Birmingham, B32 1QN, United Kingdom
Ram Krishna : 67, Ulverscroft Road, Coventry, CV3 5EY, United Kingdom
Titiksha Shah : 17, Queenspark Road, Harborne, Birmingham, B32 2LB, United Kingdom
Shail Agrawal : 1a, Blackroot Road, Sutton Coldfield, B74 2QH, United Kingdom
Pran Sharma : 3 Crakston close, Coventry, CV2 5EB, United Kingdom
उषा महाजन : 8146, सेक्टर-बी-XI, नेल्सन मंडेला मार्ग, वसंत कुंज, नई दिल्ली-70
गंगा प्रसाद विमल : 112, साउथ पार्क अपार्टमेंट्स, कालकाजी, नई दिल्ली-19
उमाकांत खुबालकर : 915/सेक्टर-12, टाइप-4, आर.के.पुरम, नई दिल्ली-22
शीला इन्द्र : जी-57, गिरिकुंज हाउसिंग सोसायटी, सेक्टर 8 बी, सी.बी.डी., बेलापुर, नवी मुंबई-400 614
काशी नायक : बंगला नंबर-4, नौगाँव (बुन्देलखण्ड), जिला : छतरपुर-471 201 (म.प्र.)
आरती झा : द्वारा मोती कुमार ठाकुर, डिप्टी मैनेजर, यूटीआई बैंक, ओ-15; ग्रीन हाउस, अशोक मार्ग, सी-स्कीम, जयपुर-302001
सत्य नारायण : डी ब्लॉक, कदमकुआँ, पटना-3
कैलाश पचौरी : शारदा सदन, पोस्ट:बैरसिया, भोपाल-463106 (म.प्र.)
अम्बिका दत्त : बी-2, 2 न्यू कॉलोनी, गुमानपुरा, कोटा-324007 (राजस्थान)
रंजना श्रीवास्तव : श्रीपल्ली, गली नंबर 2, पोस्ट : सिलीगुड़ी बाजार, सिलीगुड़ी-734005
जहीर कुरैशी : समीर कॉटेज, बी-21, सूर्यनगर, शब्द प्रताप आश्रम के पास, ग्वालियर-474012 (म.प्र.)
रामकुमार आत्रेय : 864-ए-112, आजादनगर, कुरुक्षेत्र-136119
प्रेम कुमार : 17-ए, कृष्णाधाम कॉलोनी, आगरा रोड, अलीगढ़
लालबहादुर ओझा : 66 एफ, सेक्टर-8, जसोला विहार, नई दिल्ली-110 025
जानकी /नमिता/ शीरीन : द्वारा विभा रानी, 302/ए, धीरज रेसिडेंसी, ओशिवरा बस डिपो के सामने, गोरेगाँव (पश्चिम), मुंबई-400104
हीरालाल नागर : बी-174/41, गली नंबर 3, सादतपुर विस्तार, नागार्जुन नगर, दिल्ली-94
जीवन सिंह ठाकुर : 422, अलकापुरी, देवास-455001 (म.प्र.)
सुरजीत : सी-34, सुदर्शन पार्क, नई दिल्ली-15
पंकज मालवीय : विभागाध्यक्ष, रूसी भाषा विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़-160014
लता हिराणी : ए/83, गोयल पार्क अपार्टमेंट, वस्त्रापुर, अहमदाबाद-380015
मीनाक्षी जोशी : अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जे. एम. पटेल कॉलेज, भण्डारा-441904 (महाराष्ट्र)
आरसी चौहान : चरौवां, बलिया-221718 (उ.प्र.)
ज्ञान चतुर्वेदी : ए-40, अलकापुरी, भोपाल-462003
जयवर्धन : 17/एच 234, वसुन्धरा, गाजियाबाद-201 012 (उ.प्र.)
श्यामसुंदर दुबे : श्री चंडीजी वार्ड, हटा (दमोह), पिन-470 775 (म.प्र.)
रोहिणी अग्रवाल : 258, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, रोहतक-124 001 (हरियाणा)
अच्युतानंद मिश्र : 9/36ए, डबल स्टोरी, थर्ड फ्लोर, विजय नगर, दिल्ली-9
संदीप राशिनकर : 11-बी, राजेन्द्र नगर, इन्दौर-452 012
राजेन्द्र कुमार कनौजिया : अस्थि शल्य आर्थोपेडिक्स विभाग, पी.जी. एम.ई.आर., सेक्टर-12, चंडीगढ़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रकृति की सुरक्षा, आपकी सुरक्षा

रजनी वसुन्धरा एन्कलेव में रहती थी। विनम्र, शिक्षित और व्यवहारकुशल रजनी एक स्वयंसेवी संस्था की फैलोशिप पर पर्यावरण संरक्षण के उपायों पर शोध कर रही थी। एक दिन लंच पर रजनी ने अपनी कुछ खास सहेलियों को बुलाया। लंच के दौरान सभी औरतें नगर निगम के निकम्मेपन और काहिली को कोसती रहीं।

सभी औरतों की शिकायतें सुनने के बाद रजनी ने कहा—''सबसे पहले मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ। आप सबों के पास हमेशा नगर निगम के खिलाफ शिकायत रहती है कि नगर निगम ये नहीं करता, वो नहीं करता...पर आपने कभी यह सोचा है कि आप अपने आसपास के वातावरण को सुधारने या उसे बिगड़ने से बचाने के लिए क्या कर सकते हैं? क्या आपकी कोई जिम्मेदारी नहीं बनती?''

रजनी ने आगे कहा—''इसी सन्दर्भ में मैं आप सबों लोगों से एक सहयोग चाहती हूँ। आप सब आज और अभी से छोटा-सा योगदान दें। अपने घर में बायो-डिग्रेडेबल जैसे रसोईघर में बचा हुआ बासी खाना, फल-सब्जी के छिलके, चायपत्ती इत्यादि चीजों को अलग रखें और इस कूड़े के इस्तेमाल से फायदा उठाने के लिए पी.सी.आर.ए. का सहयोग लें। प्रकृति और पर्यावरण का हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ता है। प्रकृति सुरक्षित नहीं रहे तो हम भी सुरक्षित नहीं रह सकते।''

अंत में रजनी ने मुस्कराते हुए कहा—''सौ बातों की एक बात; प्रकृति की सुरक्षा, आपकी सुरक्षा।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शीघ्र प्रकाश्य

विशेषांक
'हाशिये पर भविष्य'

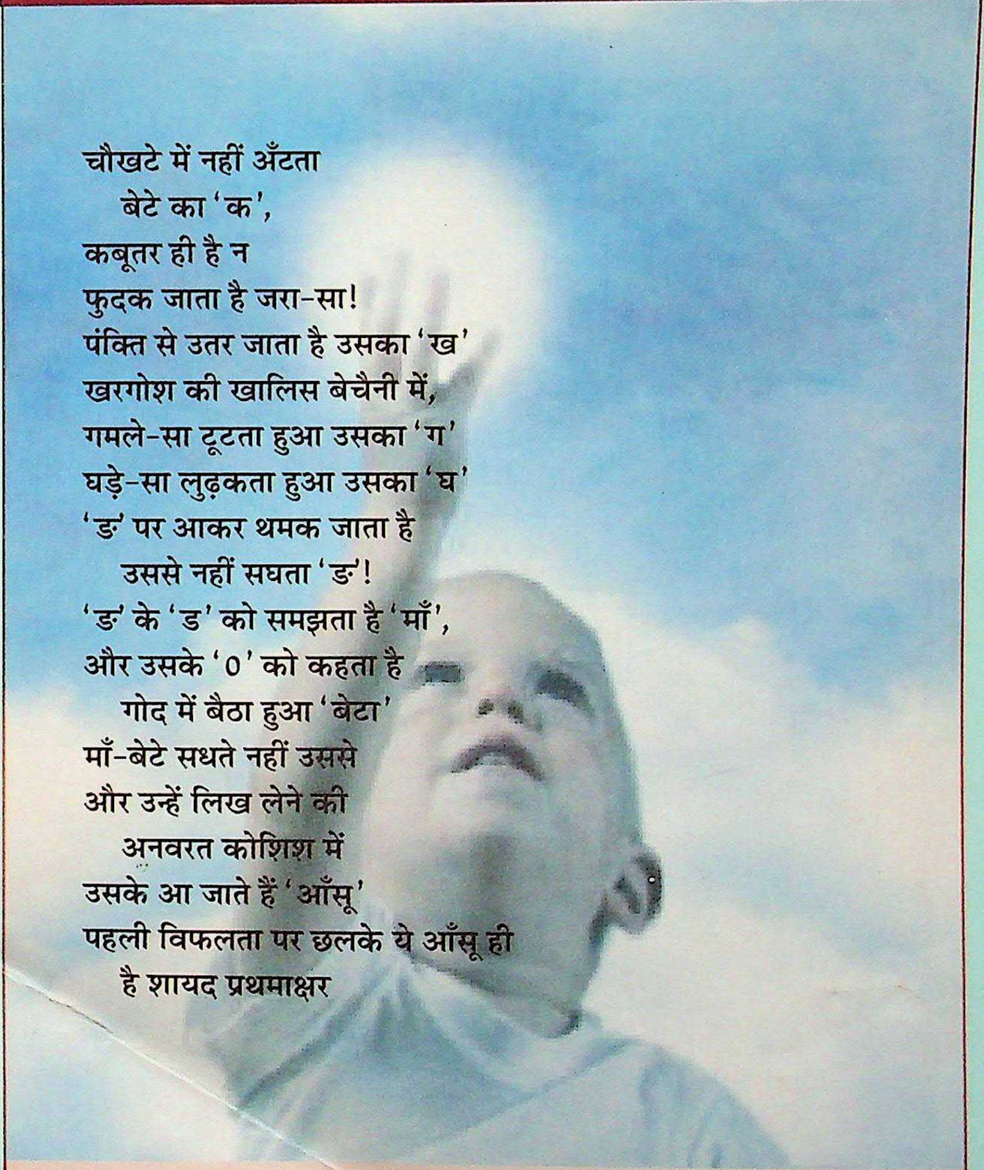

चौखटे में नहीं अँटता
बेटे का 'क',
कबूतर ही है न
फुदक जाता है जरा-सा!
पंक्ति से उतर जाता है उसका 'ख'
खरगोश की खालिस बेचैनी में,
गमले-सा टूटता हुआ उसका 'ग'
घड़े-सा लुढ़कता हुआ उसका 'घ'
'ङ' पर आकर थमक जाता है
उससे नहीं सधता 'ङ'!
'ङ' के 'ड' को समझता है 'माँ',
और उसके '0' को कहता है
गोद में बैठा हुआ 'बेटा'
माँ-बेटे सधते नहीं उससे
और उन्हें लिख लेने की
अनवरत कोशिश में
उसके आ जाते हैं 'आँसू'
पहली विफलता पर छलके ये आँसू ही
है शायद प्रथमाक्षर

❖ एजेण्ट कृपया प्रतियाँ सुरक्षित कर लें।
❖ नया ज्ञानोदय के सदस्यों को यह अंक सदस्यता राशि में ही उपलब्ध होगा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

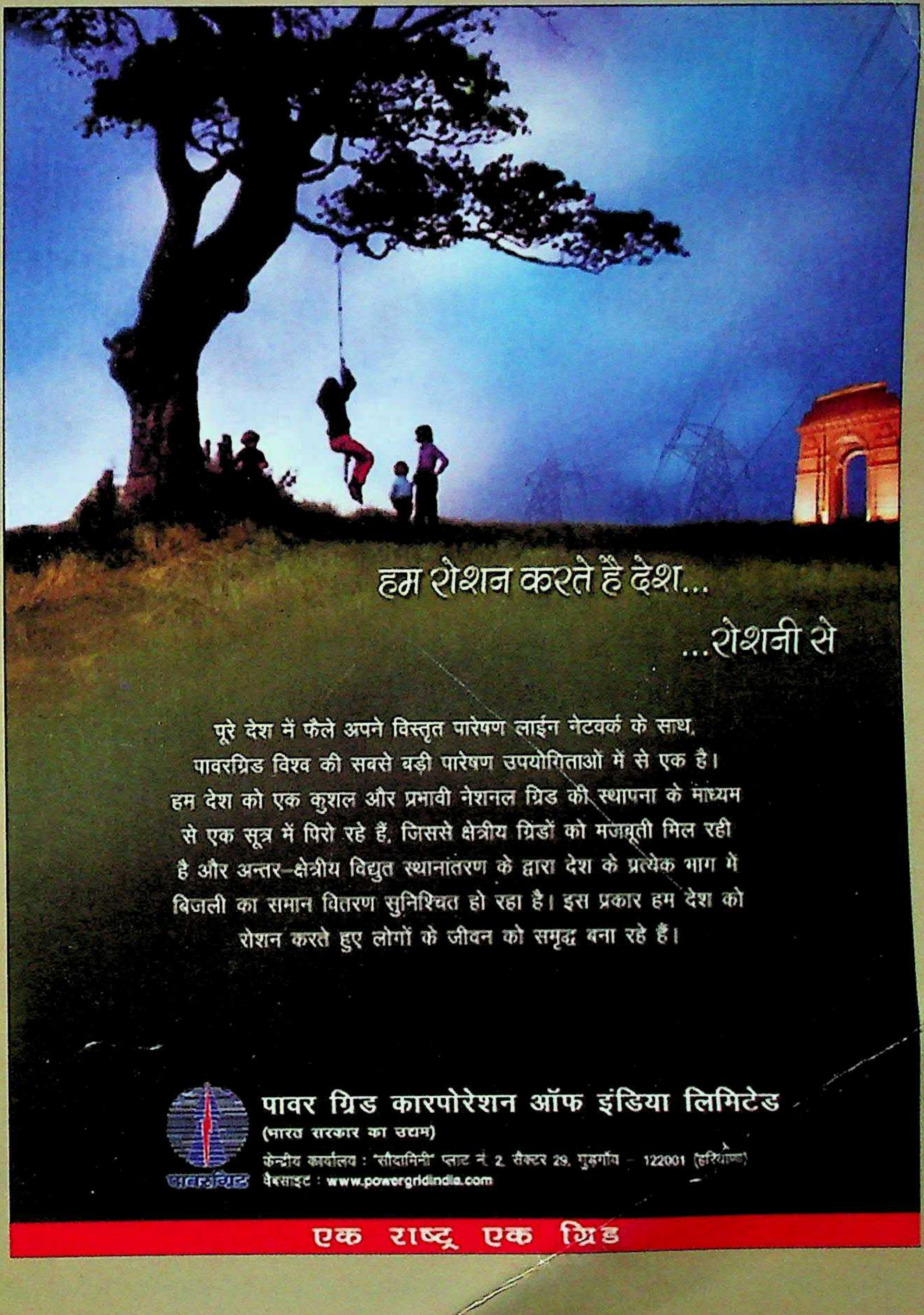

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Regd. No. RNI : DEL-Hin / 2003 / 9468
Postal Regd. No. DL (S) 17-3089 / 2006 - 07 - 2008
Pre-paid Lincence No. U [SE]-63/2006-08

नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन लिमिटेड

की नई पहचान...

एन टी पी सी लिमिटेड

हमारे संकल्प...

आने वाले कल की एन टी पी सी होगी एक पूर्ण एकीकृत विद्युत कम्पनी – सम्पूर्ण ऊर्जा श्रृंखला के सभी पहलुओं में सक्रिय

और अधिक विद्युत उत्पादन के बारे में नई सोच
- 2017 तक ताप, जल तथा गैर-परम्परागत विद्युत क्षेत्र में 66,000 मेगावाट की क्षमता।
- भारत सरकार के विद्युत सुधार एवं विद्युत विकास कार्यक्रमों में ग्रामीण विद्युतीकरण, ए पी डी आर पी और ए जी तथा एस पी के अधीन उत्कृष्टता के लिए भागीदारी के रूप में सहयोग और योगदान।

विश्वस्तरीय बनने की सोच
- भारत के लिए नई और अनुकूल ऊर्जा प्रोद्योगिकियां।
- पावर ट्रेडिंग की गतिविधियों का विस्तार
- विद्युत उत्पादन और परामर्श क्षेत्र में विश्वव्यापी गतिविधियाँ।

प्रचालनात्मक सुरक्षा के क्षेत्र में नई पहल
- कैप्टिव कोयला खानें, गैस और ऑयल ब्लाक का अधिग्रहण। कोयला वाशरीज़ की स्थापना।
- नैचरॅल गैस/एल एन जी परियोजनाओं में भागीदारी।

जनहित और पर्यावरण के लिए अनुकूलता
- भारत के उत्कृष्ट नियोजकों में स्थान।
- पर्यावरण संरक्षण उपायों में वृद्धि।
- सामाजिक कल्याण क्षेत्र में दूरदृष्टि के साथ सक्रिय भागीदारी।

Ideas Inc.

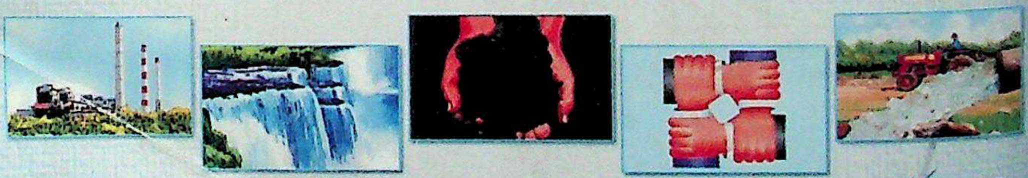

एन टी पी सी लिमिटेड
(भारत सरकार का उद्यम)

30 एनटीपीसी NTPC 1975-2005
लोक प्रगति की शक्ति

प्रकाशक : अखिलेश जैन द्वारा भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110 003 के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित
मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स 1/11848, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032
संपादक : प्रभाकर श्रोत्रिय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant